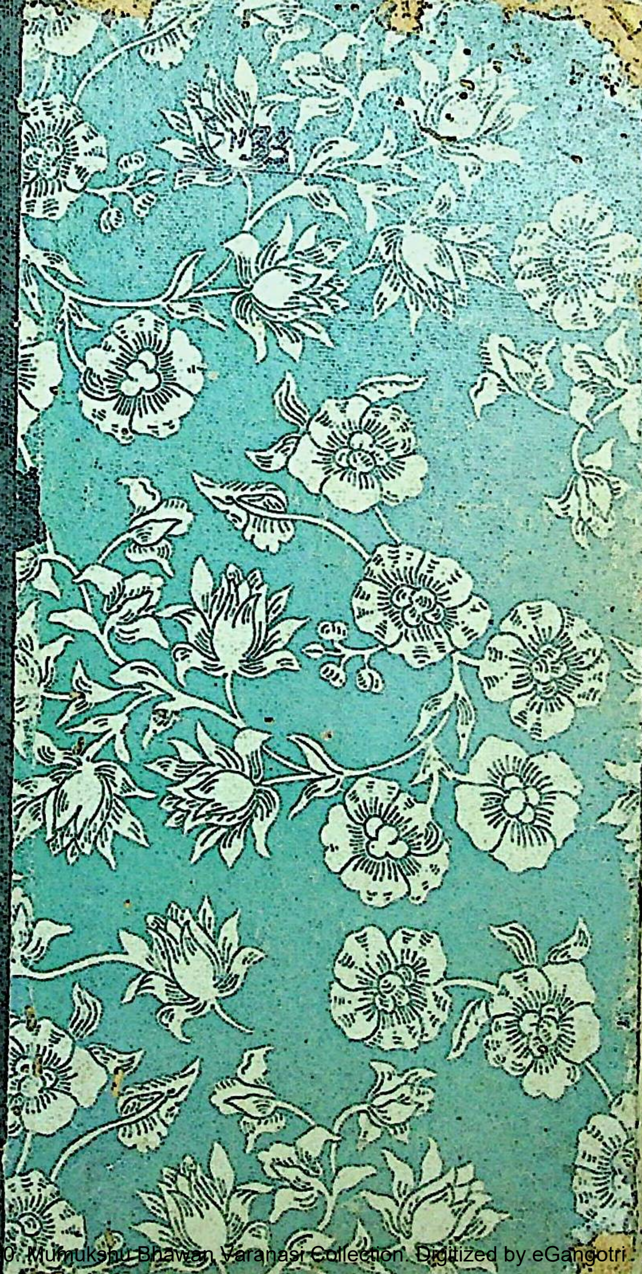


श्री

# विचारसागर

## साधुश्री निश्चलदासजी कृत.

पंडितसें शुद्धकरवायके सर्व मुमुक्षुजनकेहितार्थ

मुंबईमें

**हरिप्रसाद भगीरथ,**

**गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,**

**जनार्दन महादेव गुर्जर,**

इन्होंनें

छपवायके प्रसिद्ध किया.

---

**पहिली आवृत्ति**

---

दोहा.

ब्रह्मरूप अहि ब्रह्मवित्, ताकी बानी वेद;
भाषा अथवा संसकृत, करत भेद भ्रम छेद.

---


गणपत कृष्णाजीके छापखानेके मालू.र आत्माराम कान्होबा

ओअेन छपाय

विक्रम संवत १९०[illegible] १८८५

# श्रीविचारसागरकी

## अनुक्रमणिका.

प्रथमस्तरंगः १

### अनुबंधसामान्य निरूपन.

## द्वितीयस्तरंगः २

# अनुबंध विशेष निरूपन.



## तृतीयस्तरंगः

# गुरुसिष्यलछन.

चतुर्थस्तरंगः

पंचमस्तरंगः

षष्टमस्तरंगः

सप्तमस्तरंगः

श्रीगणेशाय नमः

# अथ श्रीविचार सागर प्रारंभः

प्रथमस्तरंगः १

## अथ अनुबंधसामान्य निरूपनं.

### अथ वस्तुनिर्देसरूप मंगल.

दोहा.

जो सुख नित्य प्रकास विभु, नाम रूप आधार;
मति न लखै जिहिं मतिलखै, सो मैं सुद्ध अपार. १
अब्धि अपार स्वरूप मम, लहरी विष्णु महेस;
विधि रवि चंदा वरुन यम, सक्ति धनेस गनेस. २
जा कृपालु सर्वज्ञको, हिय धारत मुनि ध्यान;
ताको होत उपाधितें, मोमैं मिथ्या भान. ३
है जिहिं जानै विन जगत, मनहु जेवरी साप;
नसै भुजग जग जिहिं लहै, सोऽहं आपे आप. ४
बोध चाहि जाकों सुकृति, भजत राम निष्काम;
सो मेरो है आतमा, काकूं करुं प्रनाम. ५
भर्यो वेद सिद्धांतजल, जामैं अतिगंभीर;

अस विचारसागर कहुं, पेखि मुदित व्है धीर. ६
सूत्र भाष्य वार्तिक प्रभृति, ग्रंथ बहुत सुरबानि॰
तथापि मैं भाषा करूं, लखि मति मंद अजानि. ७

टीका:—यद्यपि सूत्र, भाष्य, वार्तिकसैं प्रभृति, कहिये आदिलेके सुरबानि, कहिये संस्कृतग्रंथ बहुत हैं, तथापि संस्कृतग्रंथनसैं मंदबुद्धिपुरुषनकूं बोध होवै नहीं; औ भाषाग्रंथनसैं मंदबुद्धिपुरुषनकूं बी बोध होवै है; यातैं भाषाग्रंथका आरंभ निष्फल नहीं, किंतु संस्कृतग्रंथनके विचारनैविषै जिनकीबुद्धि समर्थ नहीं है, तिनके निमित्त ग्रंथका आरंभ सफलहै. ७

## दोहा.

कविजनकृत भाषा बहुत, ग्रंथ जगतविख्यात;
बिन विचारसागर लखै, नहिं संदेह नसात. ८

टीका:—यद्यपि भाषाग्रंथ बहुत हैं, तथापि विचारसागरविना औरभाषाग्रंथनसैं, आत्मवस्तुविषै संदेह दूरि होवै नहीं. याकेविषै यह हेतु है; कितनै तौ श्रवन करिके भाषाग्रंथ रचै हैं, जैसे पंचभाषा हैं; तिनकी प्रक्रिया काहू अंसमैं तौ सास्त्रके अनुसार है; औ जो श्रवन किया अर्थ यथार्थ ग्रहन नहीं हुवा, तिसअंसमैं सास्त्रसैं विरुद्ध है; यातैं श्रोताकृत ग्रंथसैं संदेहरहित बोध होवै नहीं. और कोई भाषाग्रंथ किंचित् सास्त्र पढिके रचै हैं; जैसे आत्मबोध है. तिनसैं बी संदेहरहित बोध होवै नहीं. काहेतैं, तिनमैं वेदांतकी प्रक्रिया संपूर्ण नहीं है. औ विचारसागर ग्रंथमैं संपूर्न प्रक्रिया है, औ

वेदांतसास्त्रके अनुसार है; काहूस्थानमैं बी विरुद्ध नहीं है. औ आत्मज्ञानमैं उपयोगी जो पदार्थ हैं, तिनका निरूपन विस्तारसैं किया है; यातैं और भाषाग्रंथनके समान यह ग्रंथ नहीं है, किंतु सर्व भाषाग्रंथनमैं यह ग्रंथ उत्तम है. ८

चौपाई.

नहीं अनुबंध पिछानै जौलौं,
व्है न प्रवृत्त सुघरनर तौलौं;
जानि जिनै यह सुनै प्रबंधा,
कहूं व यातैं ते अनुबंधा. ९

टीका.—अधिकारी, संबंध, विषय, प्रयोजनका नाम अनुबंध है. अधिकारीआदिक ग्रंथके अनुबंध जानै बिना सुघर कहिये विवेकीपुरुषकी ग्रंथमैं प्रवृत्ति होवै नहीं. यातैं जिन अनुबंधनकूं जानिके प्रबंध कहिये ग्रंथनकूं सुनै, तिन अनुबंधनकूं व कहिये अब कहूं हूं. ९

सोरठा.

अधिकारी संबंध, विषय प्रयोजन मेलि चव;
कहतसुकवि अनुबंध, तिनमैंअधिकारीसुनहु १०

दोहा.

मल विछेप जाके नहीं, किंतु एक अज्ञान;
व्है चवसाधन सहित नर, सो अधिकृत मतिमान. ११

टीका.—अंतःकरणविषै तीनदोष होवै हैः—एक तौ मल होवै है, दूसरा विछेप होवै है, औ तीसरा आंवर्न होवै है; निष्कामकर्मसें अंतःकरनका मलदोष दूरि होवै है; उपासनासें विछेपदोष दूरि होवै है, ज्ञानसें आवर्नदोष दूरि होवै है. जा पुरुषनै निष्कामकर्म, औ उपासनाकरिके मल औ विछेपदोष दूरि किये हैं; औ एक अज्ञान कहिये स्वरूपका आवर्न जाके चित्तविषै होवै, औ च्यारिसाधनसंयुक्त होवै, सो पुरुष अधिकृत कहिये अधिकारी है. ११

# अथ च्यारिसाधन नाम बर्नन.

## दोहा.

प्रथम विवेक विराग पुनि, समादि षट्संपत्ति;
कही चतुर्थ मुमुछुता, ये चवसाधन सत्ति. १२

# अथ विवेक लछन.

## दोहा.

अविनासी आतम अचल, जग तातैं प्रतिकूल;
ऐसो ज्ञान विवेक है, सब साधनको मूल. १३

टीकाः—आत्मा, अविनासी कहिये नासरहित है, औ अचल कहिये क्रियारहित है. औ जगत् आत्मातैं प्रतिकूल कहिये विपरीतस्वभाववाला है, विनासी है, औ चल है या ज्ञानका नाम विवेक है. यह विवेकही सर्वसाधनका मूल है काहेतैं प्रथम विवेक होवै, तौ वैरागसें आदिलेके

उत्तरसाधन होवै हैं. औ विवेक नहीं होवै तौ उत्तरसाधन होवै नहीं. यातें वैराग, समादि षट्संपत्ति, मुमुछुता; इनका विवेक हेतु है. १३

## अथ वैराग लछन.

### दोहा.

ब्रह्मलोक लौं भोग जो, चहै सबनको त्याग;
वेद अर्थ ज्ञाता मुनी, कहत ताहि वैराग. १४

## अथ समादि षट् नाम.

### दोहा.

सम दम श्रद्धा तीसरी, समाधान उपराम;
छठी तितिछा जानिये, भिन्न भिन्न यह नाम. १५

## अथ सम दम लछन.

### दोहा.

मन विषयनतें रोकनों, सम तिंहि कहत सुधीर;
इंद्रियगनको रोकनों, दम भाखत बुध वीर. १६

## अथ श्रद्धा समाधान लछन.

### दोहा.

सत्य वेद गुरु वाक्य हैं, श्रद्धा अस विस्वास;
समाधान ताकूं कहत, मन विछेपको नास. १७

## अथ उपराम लछन.

### चोपाई.

साधनसहित कर्म सब त्यागै,
लखि विख सम विषयनतैं भागै;
दृग नारी लखि व्है जिय ग्लाना,
यह लछन उपराम बखाना. १८

## अथ तितिछा लछन.

### दोहा.

आतप सीत छुधा तृषा, इनको सहनस्वभाव;
ताहि तितिछा कहत हैं, कोविद मुनिवर राव. १९
समादि षट्संपत्तिको, भाखत साधन एक;
इमनव नहिं साधन भनै, किंतु च्यारिसविवेक २०

टीका:—समादि षट्की जो संपत्ति कहिये प्राप्ति, सो एकसाधन करिके गिनिये हैं. यातैं नवसाधन नहीं. किंतु सविवेक कहिये विवेकीजन च्यारीसाधन कहै हैं. २०

## अथ मुमुछुता लछन.

### दोहा.

ब्रह्मप्राप्ति अरु बंधकी, हानि मोछको रूप;
ताकी चाह मुमुछुता, भाखत मुनिवर भूप. २१

टीकाः—ब्रह्मकी प्राप्ति औ अनर्थकी निवृत्ति, मोछका स्वरूप है. ताकी इच्छाका नाम मुमुछुता है. मुमुछुता औ मुमुछुत्व पर्यायसब्द हैं. २१

दोहा.

ये चवसाधन ज्ञानके, श्रवनादिक त्रय मेलि;
तत्पद त्वंपद अर्थको, सोधन अष्टम भेलि. २२

टीकाः—विवेकादिक च्यारी, श्रवण, मनन, निदिध्यासन, ये तीनि; तत्पदके अर्थका औ त्वंपदके अर्थका सोधन; ये अष्ट ज्ञानके साधन हैं. २२

दोहा.

अंतरंग ये आठ हैं, यज्ञादिक बहिरंग;
अंतरंग धारै तजै, बहिरंगनको संग. २३

टीकाः—पूर्वदोहेमैं कहे विवेकादिक आठ अंतरंगसाधन कहिये हैं; औ यज्ञादि कर्म बहिरंगसाधन कहिये हैं. तिनमैं बहिरंगनकूं जिज्ञासु त्यागै, औ अंतरंगकूं धारै. जिनका श्रवनमैं अथवा ज्ञानमैं प्रत्यछफल होवै सो अंतरंगसाधन कहिये है. विवेकादिक च्यारिका श्रवनमैं उपयोग है. काहेतें, विवेकादिक विना बहिर्मुखकूं श्रवन बनै नहीं. तैसे श्रवन, मनन निदिध्यासनका ज्ञानमैं उपयोग है; श्रवनादिक विना ज्ञान होवै नहीं. तैसे तत्पदका अर्थ औ त्वंपदका अर्थ जानै विना भी अभेदज्ञान होवै नहीं. इसरीतिसे विवेकादिक च्यारिसाधनोंका श्रवनमैं उपयोग है. औ श्रवनादिक च्यारिसा-

धनोंका ज्ञानमें उपयोग है. यातें आठ अंतरंगसाधन है.

जाका ज्ञानमें अथवा श्रवनमें प्रत्यक्षफल होवै नहीं; किंतु, अंतःकरनकी सुद्धि जाका फल होवै; सो ज्ञानका वहिरंगसाधन कहिये है. ऐसें यज्ञादिक कर्म हैं. यद्यपि यज्ञादिक कर्म संसारके साधन हैं, तिनतें अंतःकरनकी सुद्धि बी कहना संभवै नहीं; तथापि सकामपुरुषकूं संसारके हेतु हैं, औ निष्कामकूं अंतःकरनकी सुद्धिके हेतु हैं. इसरीतिसें निष्कामपुरुषके अंतःकरनकी सुद्धिद्वारा ज्ञानके हेतु हैं. यातें वहिरंगसाधन कहिये हैं. औ विवेकादिक अंतरंगसाधन कहिये हैं. वहिरंग नाम दूरिका है, औ अंतरंग नाम समीपका है. यज्ञादिक कर्म औ तिनके साधन स्त्री, धन, पुत्रादिकनकूं त्यागै; सो ज्ञानका अधिकारी है. ज्ञानके अधिकारीमें यज्ञादिक संभवै नहीं, यातें दूरि हैं.

विवेकादिक ज्ञानके अधिकारीमें संभवै हैं,यातें समीप हैं. तिनमें बी इतना भेद है:-विवेकादिकनका श्रवनमें उपयोग है,औ श्रवनादिकनका ज्ञानमें उपयोग है,यातें विवेकादिकनकी अपेक्षातें श्रवनादिक अंतरंग हैं. तिनकी अपेक्षातें विवेकादिक वहिरंग हैं. यद्यपि विवेकादिक बी ज्ञानके अंतरंगसाधन ही सर्वग्रंथनमें कहे हैं, वहिरंग नहीं कहे;तथापि विवेकादिकनका ज्ञानके साधन श्रवनमें प्रत्यक्षफल हैं. औ श्रवनादिनकी न्याई विवेकादिक जिज्ञासुकूं उपादेय हैं. यज्ञादिकनकी न्याई जिज्ञासुकूं हेय नहीं, यातें अंतरंग कहे हैं. औ यज्ञादिकनकी अपेक्षातें बी अंतरंग हैं, यातें बी अंतरंग साधनोंमें कहे हैं.

औ विचारसैं देखिये तौ ज्ञानके मुख्यअंतरंगसाधन तत्त्वमसिआदिक महावाक्य हैं, श्रवणादिक बी नहीं. काहेतैं युक्तिसैं वेदांतवाक्यनका तात्पर्यनिश्चय, श्रवन कहिये है. जीवब्रह्मके अभेदकी साधक औ भेदकी बाधक युक्तियोंसैं अद्वितीयब्रह्मका चिंतन, मनन कहिये है. अनात्माकारवृत्तिका व्यवधानरहित ब्रह्माकारवृत्तिकी स्थिति, निदिध्यासन कहिये हैं. निदिध्यासनकी परिपाकअवस्थाकूंही समाधि कहेहैं. यातैं समाधिका बी निदिध्यासनमैं अंतरभावहै पृथक्साधन नहीं. ये श्रवन मनन निदिध्यासन ज्ञानकेसाछातसाधन, नहीं, किंतु, बुद्धिके दोष जो असंभावना, औ विपरीतभावना, ताके नासक हैं. संसयकूं असंभावना कहे हैं. विपर्ययकूं विपरीतभावना कहे हैं.

श्रवनसैं प्रमानका संदेह दूरि होवै है, औ मननसैं प्रमेयका संदेह दूरि होवै है. वेदांतवाक्य अद्वितीयब्रह्मके प्रतिपादक हैं, अथवा अन्यअर्थके प्रतिपादक हैं? ऐसा प्रमाणमैं संदेह होवै, सो श्रवनसैं दूरि होवै है. औ जीवब्रह्मका अभेद सत्य है, अथवा भेद सत्य है? ऐसा प्रमेयमैं संदेह होवै, सो मननसैं दूरि होवै है. देहादिक सत्य हैं; औ जीवब्रह्मका भेद सत्य है, ऐसैं ज्ञानकूं विपरीतभावना कहे हैं. ताहीकूं विभ्रजे कहे हैं; ताकूं निदिध्यासन दूरि करै है. इसरीतितैं श्रवनादिक तीनूं, असंभावना औ विपरीतभावनाके नासक हैं. औ असंभावना औ विपरीतभावना ज्ञानके प्रतिबंधक हैं. यातैं ज्ञानका जो प्रतिबंधक, ताके नासद्वारा श्रवनादिक ज्ञानके हेतु कहिये हैं; साछातहेतु नहीं.

ज्ञानके साछातसाधन श्रोत्रसंबंधि वेदांतवाक्य हैं. सो वेदांतवाक्य दोप्रकारके हैंः—एक अवांतरवाक्य है, एक महावाक्य है. परमात्माके अथवा जीवके स्वरूपका बोधक जो वाक्य, सो अवांतरवाक्य कहिये है. जीवपरमात्मकी एकताबोधक वाक्य, महावाक्य कहिये है. अवांतरवाक्यसें परोछज्ञान होवै है, महावाक्यसें अपरोछज्ञान होवै है. " ब्रह्म है " इस ज्ञानकूं परोछज्ञान कहै हैं. " ब्रह्म मैं हूं " इस ज्ञानकूं अपरोछज्ञान कहै हैं. " त्वं ब्रह्म " ऐसा आचार्यनै उच्चारन किया जो वाक्य, ताका श्रोताके कर्नसें संवंध होतेही " मैं ब्रह्म हूं " ऐसा अपरोछज्ञान श्रोताकूं होवै है. औ श्रोताके कर्नसें वाक्यका संवंध हुएविना ज्ञान होवै नहीं, यातैं श्रोत्रसंवंधी वाक्यही ज्ञानका हेतु है. श्रोत्रसंबंधि अवांतरवाक्य परोछज्ञानका हेतु है. औ श्रोत्रसंवंधि महावाक्य अपरोछज्ञानका हेतु है. महावाक्यसें सर्वकूं अपरोछही ज्ञान होवै है ! परोछ नहीं होता.

औ एकदेसीका यह मत हैः— श्रवन, मनन, निदि ध्यासनसहित वाक्यसें अपरोछज्ञान होवै है. केवल वाक्यतैं परोछज्ञान होवै है; अपरोछ नहीं. जो केवल वाक्यतैंही अपरोछज्ञान होवै, तौ श्रवन मनन निदिध्यासन व्यर्थ होवैंगे ! यद्यपि सिद्धांतमतमैं केवलवाक्यतैं अपरोछज्ञान होवैहै; औ श्रवनादिकनतैं असंभावना विपरीतभावनाका नास होवै है ; यातैं श्रवनादिक व्यर्थ नहीं, तथापि जौ वस्तुका अपरोछज्ञान होवै, ताके विषै असंभावना विपरीतभावना काहूकूं वी

होवै नहीं. यातैं केवल वाक्यतें अपरोछज्ञानवादीके सिद्धांतमैं "तत्वमसि" आदिक वाक्यनतैं अपरोछज्ञान ब्रह्मका हुवेतैं पाछे असंभावना विपरीतभावना संभवै नहीं. यातैं श्रवनादिक साधन व्यर्थ होवैंगे! औ केवल वाक्यतें परोछज्ञान होवै है, श्रवन मनन निदिध्यासन कियेतैं अपरोछज्ञान होवै है. या मतमैं श्रवनादिक व्यर्थ नहीं. यह बहुतग्रंथकारोंका मत है, तथापि यह मत समीचीन नहीं. काहेतैं:—

शब्दका यह स्वभाव है:—जो वस्तु व्यवहित होवै, ताका शब्दसैं परोछही ज्ञान होवै है. किसीप्रकारतैं व्यवहितवस्तुका शब्दसैं अपरोछज्ञान होवै नहीं. जैसैं व्यवहितस्वर्गका औ इंद्रादिक देवनका, सास्त्ररूपी सब्दतैं परोछही ज्ञान होवै है. औ जो वस्तु अव्यवहित होवै, ताका सब्दसैं अपरोछज्ञान औ परोछज्ञान दोनू होवै हैं. जहां अव्यवहितवस्तुकूं सब्द अस्तिरूपतैं बोधन करै,तहां अव्यवहितका बी परोछज्ञान होवै है; जैसै "दसम पुरुष है." इसरीतिसैं अस्तिरूपतैं बोधन किया जो अव्यवहितदसम' ताका सब्दसैं परोछही ज्ञान हुवा है. औ जहां अव्यवहितवस्तुकूं "यह है" इसरीतिसैं सब्द बोधन करै,तहां अव्यवहितका सब्दसैं अपरोछज्ञानही होवै है, परोछ नहीं. जैसै "दसमा तूं है" इसरीतिसैं सब्दनै बोधन किया जो दसमा, ताका अपरोछज्ञानही हुवा है, तैसै ब्रह्म सर्वका आत्मा होनेतैं अत्यंतअव्यवहित है; ताकूं अवांतरवाक्य अस्तिरूपतैं बोधन करै है, यातैं अव्यवहितब्रह्मका बी अवांतरवाक्यतैं परोछज्ञान होवै है. औ "दसमा तूं है"

इस वाक्यकी न्याई श्रोताका आत्मरूप करिके ब्रह्मकूं महावाक्य बोधन करै है, यातें महावाक्यतें अव्यवहितब्रह्मका परोछज्ञान संभवै नहीं, किंतु अपरोछज्ञानहीं होवै है.

और जो कह्या:— "आ वस्तुका अपरोछज्ञान होवै ताकेविषै असंभावना विपरीतभावना होवै नहीं, यातें श्रवनादिक विफल होवेंगे." सो संका बनै नहीं. काहेतें, जैसें राजाकूं भर्तुका नेत्रसें अपरोछज्ञान हुवेतें बी विपरीतभावना दूरि हुई नहीं; तैसें महावाक्यतें ब्रह्मका अपरोछज्ञान होवै है. परंतु जाकी बुद्धिमें असंभावना विपरीतभावनादोष होवै, ताका दोषरूप कलंकसहित ज्ञान फलका हेतु नहीं; दोषकी निवृत्तिवास्ते श्रवनादिक करै. जाकी बुद्धिमें दोष नहीं, सो न करै. इसरीतिसें ज्ञानके साधन महावाक्य हैं; श्रवनादिक नहीं. परंतु ज्ञानका प्रतिबंधक जो दोष हैं; ताके नासक हैं. यातें श्रवनादिक ज्ञानके हेतु कहिये हैं. श्रवनादिकनके हेतु विवेकादिक हैं; यातें विवेकादिक ज्ञानके साधन कहिये हैं. विवेकादिक च्यारिसाधनसंयुक्त जो पुरुष है, सो अधिकारी है. २३

# अथ संबंध वर्नन

## दोहा.

प्रतिपादक प्रतिपाद्यता, ग्रंथ ब्रह्म संबंध;
प्राप्य प्रापकता कहत, फल अधिकृतको फंद २४

टीकाः— ग्रंथका औ विषयका प्रतिपाद्य प्रतिपादकभाव—

संबंध है. ग्रंथ प्रतिपादक है, औ विषय प्रतिपाद्य है. जो प्रतिपादन करनैवाला होवै, सो प्रतिपादक कहिये है. जो प्रतिपादन करनेकूं योग्य होवै, सो प्रतिपाद्य कहिये है. अधिकारीका औ फलका प्राप्यप्रापकभाव संबंध है. फल प्राप्य है, औ अधिकारी प्रापक है. जो वस्तु प्राप्त होवै, सो प्राप्य कहिये है. जाकूं प्राप्त होवै, सो प्रापक कहिये है. अधिकारिका औ विचारका कर्तृकर्त्तव्यभावसंबंध है. अधिकारी कर्त्ता है, औ विचार कर्त्तव्य है. जो करनैवाला होवै, सो कर्त्ता कहिये है, औ करनैयोग्य होवै, सो कर्त्तव्य कहिये है. ग्रंथका औ ज्ञानका जन्यजनकभावसंवंध है. विचारद्वारा ग्रंथ ज्ञानका जनक है; औ ज्ञान जन्य है. जो उत्पत्ति करनैवाला होवै, सो जनक कहिये है; जाकी उत्पत्ति होवै, सो जन्य कहिये है इससैं आदिलेके औरबी संबंधजानि लेनै. २४

# अथ विषय बर्नन.

## दोहा.

जीवब्रह्मकी एकता, कहत विषय जन बुद्धि;
तिनको जे अंतर लहै, ते मतिमंद अबुद्धि. २५

टीका:– जीवब्रह्मकी एकता या ग्रंथका विषय है. जो प्रतिपादन करिये, सो विषय कहिये है, या ग्रंथविषे जीवब्रह्मकी एकता प्रतिपादन करिये है. यातें सो एकता ग्रंथका विषय है. सो एकता सर्व वेदके वचन प्रतिपादन करै है. यातें जीवब्रह्मका भेद कहै हैं, ते पुरुष सठ हैं; औ वेदके विरोधी है. २५

# अथ प्रयोजन वर्नन.

## दोहा.

परमानंद स्वरूपकी, प्राप्ति प्रयोजन जानि;
जगत समूल अनर्थ पुनि, है ताकी अतिहानि २६

टीकाः— प्रपंचका कारन जो अज्ञान औ प्रपंच, जन्ममरनरूपी दुःखका हेतु है; यातें अनर्थ कहिये है. ता अनर्थकी निवृत्ति औ परमानंदकी प्राप्ति, मोछ कहिये है, सो ग्रंथका परमप्रयोजन है. औ अवांतरप्रयोजन ज्ञान है. जाविषै पुरुषकी अभिलाषा होवै, सो परमप्रयोजन कहिये है; औ ताकूं पुरुषार्थ बी कहिये है सो अभिलाषा दुःखकी निवृत्तिविषै औ सुखकी प्राप्तिविषै सर्वपुरुषनकी होवै है; सोई मोछका स्वरूप है. यातें परमप्रयोजन मोछ है; औ ज्ञान नहीं है. काहेतें सुखकी प्राप्ति औ दुःखकी निवृतिका साधन तौ ज्ञान है, औ सुखकी प्राप्ति वा दुःखकी निवृत्तिरूप ज्ञान नहीं, यातें अवांतरप्रयोजन ज्ञान है. जा वस्तुद्वारा परमप्रयोजनकी प्राप्ति होवै, सो अवांतरप्रयोजन कहियें है; ऐसा ज्ञान है. काहेतें ग्रंथकरिके ज्ञानद्वारा मुक्तिरूप परमप्रयोजनकी प्राप्ति होवै है. यातें ज्ञान अवांतरप्रयोजन है. २६

## संकापूर्वक उत्तरका कवित्त.

जीवको स्वरूप अतिआनंद कहत वेद,
ताकूं सुखप्राप्तिको असंभव बखानिये;

आगे जो अप्राप्तवस्तु ताकी प्राप्ति संभवत,
नित्यप्राप्त वस्तुकी तौ प्राप्ति किम मानिये ?
ऐसी संका लेस आनि कीजै न विस्वास हानि,
गुरुके प्रसादतैं कुतर्क भले भानिये;
करको कंकन खोयो ऐसो भ्रम भयो जिहिं,
ज्ञानतैं मिलत इम प्राप्त प्राप्ति जानिये. २७

टीकाः— पूर्व कह्या था " अनर्थकी निवृत्ति, औ परमानंदकी प्राप्ति ग्रंथका प्रयोजन है. " सो बनै नहीं. काहेतैं सर्ववेद जीवकूं परमानंदस्वरूप वर्नन करै हैं, औ तुम अंगीकार वी करो हो. औ जो वस्तु अप्राप्त होवै, ताकी प्राप्ति संभवै है, सदा प्राप्तवस्तुकी प्राप्ति सर्वथा बनै नहीं. यातैं सदापरमानंदस्वरूप आत्माकूं परमानंदकी प्राप्ति कहना सर्वप्रकार करिके असंभव है; ऐसी कोऊ संका करै है.

ता संकाकूं सुनिके ग्रंथके प्रयोजनमैं विस्वास दूरि नहीं करना. किंतु, आत्मविद्याके उपदेस करनैवाला जो गुरु है, तिनकी कृपातैं संकारूपी जो कुतर्क है. सो दृष्टांतसैं दूरि करि देना. सो दृष्टांत कहिये हैः—जैसैं काहूके हाथमैं कंकन होवै, ताकूं ऐसा भ्रम होई जावै जो " मेरा हाथका कंकन खोया गया. " तब वाकूं किसीके कहैसैं कंकनका ऐसा ज्ञान हो जावै जो " मेरा कंकन हाथमैं है. " तब वह ऐसैं कहै हैः— " मेरा कंकन मिल गया है. " इसरीतिसैं प्राप्त जो कंकन है, ताकी वी प्राप्ति कहिये. है. तैसैं परमानंदस्वरूप आत्माविषैं अविद्याके बलसैं ऐसी भ्रांति होवै हैः—

आत्मा परमानंदस्वरूप नहीं है; किंतु, परमानंदस्वरूप ब्रह्म है. ता ब्रह्मका औ मेरा वियोग होय गया है; उपासना करिके ता ब्रह्मकूं मैं प्राप्त होउंगा." इसरीतिकी भ्रांति बहुत मूर्ख-प्रानियोंकों होई रही है. यद्यपि बहुतपंडित बी ऐसे कहे हैं, तथापि वे मूर्खही हैं. काहेतें. जो जीवब्रह्मका वियोग अंगीकार करै हैं, ते मूर्ख कहिये हैं. तिन पुरुषनकूं उत्तमसंस्कारसैं जो कदाचित ब्रह्मज्ञानीआचार्यसैं वेदांतग्रंथके श्रवनकी प्राप्ति होय जावै, तब सुनेअर्थकूं निश्चयकरिके कहै हैं:—"परमानंद हमारेकूं ग्रंथ औ आचार्यकी कृपासैं प्राप्त भया है." यह उनका कहनेका अभिप्राय है. आत्मा तौ परमआनंदस्वरूप आगे बी था; परंतु "मेरा आत्मा परमआनंदरूप है" इसरीतिसैं भान नहीं होवै था. यातैं अप्राप्तकी न्याई था. आचार्यद्वारा ग्रंथश्रवनसैं परमानंदका बुद्धिविषे भान होवै है. यातैं परमानंदकी प्राप्ति कहै हैं. इसरीतिसैं प्राप्तकी बी प्राप्ति बननेतें, परमानंदकी प्राप्तिरूप ग्रंथका प्रयोजन संभवै है. जैसे प्राप्तकी प्राप्ति ग्रंथका प्रयोजन है, तैसे,

नित्यनिवृत्तिकी निवृत्ति बी प्रयोजन संभवै है. दृष्टांतः—जेवरीविषै सर्प नित्यनिवृत्त है, औ जेवरीके ज्ञानसैं निवृत्त होवै है; तैसैं आत्माविषै संसार नित्यनिवृत्त है, ताकी निवृत्ति आत्माके ज्ञानसैं होवै है, यातें नित्यनिवृत्तकी निवृत्ति, औ नित्यप्राप्तकी प्राप्ति; ग्रंथका प्रयोजन है. २७

कारनसहित जगतकी निवृत्ति, औ परमानंदकी प्राप्ति, ग्रंथका प्रयोजन है; " यह पूर्व कह्या; सो संभवै नहीं. का—

हेतैं, निवृत्ति नाम ध्वंसका है. ध्वंस औ नास दोनों पर्याय सब्द हैं. सो नास अभावरूप हैं. यातैं मोच्छविषै भावरूपता, औ अभावरूपता, दोनों प्रतीत होवै हैं. अनर्थकी निवृत्ति कहनैसैं अभावरूपता प्रतीत होवै है, औ परमानंदकी प्राप्ति कहनैसैं भावरूपता प्रतीत होवै है. सो दोनों एकपदार्थविषै बनै नहीं. काहेतैं, भावरूपता, औ अभावरूपता, दोनों आपसमैं विरोधी हैं जो विरोधीधर्म होवै, सो एककालमैं एक वस्तुविषै रहै नहीं. यातैं ग्रंथका प्रयोजन संभवै नहीं. ऐसी कोऊ संका करै है.

## ता संकाके उत्तरका दोहा

अधिष्ठानतैं भिन्न नहिं, जगत निवृत्ति बखान;
सर्पनिवृत्ती रज्जु जिम, भये रज्जुको ज्ञान. २८

टीका—कारणसहित जगतकी निवृत्ति अधिष्ठानब्रह्मरूप है;यातैं पृथक् नहीं. जैसैं सर्पकी निवृत्ति अधिष्ठानजेवरी रूप है. "सारेकल्पितवस्तुकी निवृत्ति अधिष्ठानरूप होवै है, यातैं प्रथक् नहीं," यह भाष्यकारका सिद्धांत है. यातैं इसं स्थानविषै अनर्थकी निवृत्ति ब्रह्मरूप है. काहेतैं,जो सर्व अनर्थका अधिष्ठान ब्रह्म है, सो ब्रह्म भावरूप है. यातैं अनर्थकीनिवृत्ति भावरूप होनैतैं, ग्रंथका प्रयोजन बनै है. यह वार्त्ता सिद्ध भई. २८

## दोहा.

जो जन प्रथमतरंग यह, पढै ताहि तत्काल;
करहु मुक्त गुरुमूर्ति व्है, दादू दीनदयाल. २९

इति अनुबंध सामान्य निरूपनं नाम प्रथमस्तरंगः समाप्तः

श्रीगणेशाय नमः

# अथ श्रीविचार सागरे

द्वितीयस्तरंगः प्रारंभः २

---

## अथ अनुबंधविशेष निरूपनं.

दोहा.

याके प्रथमतरंगमैं, किय अनुबंध विचार ;
कहूं व द्वितीयतरंगमैं, तिनहीको विस्तार. १

टीकाः— च्यारीसाधनयुक्त अधिकारी कह्या. तिन च्यारी-साधनमैं मुमुछुता गिनी है. मोछकीइच्छाका नाम मुमुछुता है. कारनसहित जगतकी निवृत्ति औ ब्रह्मकी प्राप्ति मोछ कहिये है. ताकेविषैं कारनसहित जगतकी निवृत्तिरूप मोछका अंस, ताकूं कोउ चाहै नहीं, यह वार्त्ताः—

## पूर्वपछी प्रतिपादन करै है.

### अथ अधिकारीखंडन.

दोहा.

मूलसहित जगध्वंसकी, कोउ करत नहिं आस;
किंतु विवेकी चहत हैं, त्रिविधिदुःखनको नास. २

टीकाः— मूलअविद्यासहित जो जगतका ध्वंस, कहिये

निवृत्ति, ताकी आस कहिये इच्छा, कोउपुरुष करै नहीं है किंतु कहियें कहा करै है ? तीनिप्रकारके जो दुःख हैं, तिनका नास विवेकीपुरुष चाहै है. याका यह अभिप्राय है:— दुःख तीनिप्रकारके हैं:— एक तौ अध्यात्मदुःख है, दूसरा अधिभूतदुःख है, औ तीसरा अधिदैवदुःख है. रोगछुधादिकनतें जो दुःख होवै, सो अध्यात्मदुःख कहिये है. चोर व्याघ्र सर्पादिकनतें जो दुःख होवै, सो अधिभूतदुःख कहिये है. यछ राछस प्रेत ग्रहादिक, औ सीत वात आतपतें जो दुःख होवै, सो अधिदैवदुःख कहिये है. इसरीतिसैं तीनभांतिके जो दुःख हैं, तिनके नासकी सर्वपुरुषनकूं इच्छा है. दुःखसैं भिन्न जो पदार्थ हैं, तिनके नासकी विवेकीपुरुष इच्छा करै नहीं. यातैं अज्ञानसहित सकलजगतकी निवृत्तिकी काहूकूं इच्छा बनै नहीं.

औ जो सिद्धांती ऐसै कहै:— "यद्यपी सकलपुरुष दुःखनिवृत्तिकी इछा करै हैं, तथापि अज्ञानसहित सर्वजगतकी निवृत्तिविना दुःखनकी निवृत्ति होवै नहीं. यातैं दुःखनिवृत्तिके निमित्त अज्ञानसहित जगतकी निवृत्तिकूं बी चाहै हैं;" सो बनै नहीं. काहेतें:—

जो आयुर्वेदमैं औषध कहे हैं, तिनतें रोगजन्य दुःखकी निवृत्ति होवै है. औ भोजनसैं छुधाजन्य दुःखकी निवृत्ति होवै है. इसरीतिसैं अपनै अपनै उपायनतें सर्वदुःखनकी निवृत्ति होवैं है. यातैं अज्ञानसहित जगतकी निवृत्ति विना बी दुःखनकी निवृत्ति बनै है. दुःखनकी निवृत्तिके निमित्त अ-

ज्ञानसहित जगतकी निवृत्तिकी चाहना बनै नहीं. "कारन सहित जगतकी निवृत्ति. औ ब्रह्मकी प्राप्ति मोछ कहिये है." ताकेविषै कारनसहित जगतकी निवृत्तिरूप मोछके अंसकी बी इछा काहूकूं बनै नहीं; यह वार्ता प्रथमदोहाविषै कही.

ब्रह्मप्राप्तिरूप मोछके द्वितीयअंसकी बी इच्छा काहूकूं बनै नहीं; यह वार्ताः—

## पूर्वपछी कहै है.

### दोहा.

किय अनुभव जा वस्तुको, ताकी इच्छा होइ;
ब्रह्म नहीं अनुभूत इम, चहै न ताकूं कोइ. ३

टीकाः—जा वस्तुका अनुभव कहिये ज्ञान होय, ता वस्तुकी प्राप्तिकी इछा होवै है. जा वस्तुका ज्ञान होवै नहीं ताकी प्राप्तिकी इछा बी होवै नहीं. जैसे अन्यदेसके अनंत पदार्थ अज्ञात हैं तिनकी प्राप्तिकी इछा काहूपुरुषकूं होवै नहीं, औ अधिकारीपुरुषकूं ब्रह्मका ज्ञान है नहीं, औ जाकूं ब्रह्मका ज्ञान है सो अधिकारी नहीं, किंतु मुक्त है, ताकूं ब्रह्मप्राप्तिकी इछा बनै नहीं. यातें वेदांतश्रवनतें पूर्व अज्ञात जो ब्रह्म, ताकी प्राप्तिकी इछा बनै नहीं. इसरीतिसें अज्ञानसहित जगतकी निवृत्ति औ ब्रह्मकी प्राप्तिरूप जो मोछ, ताकी इछा काहूकूं बनै नहीं. यातें मुमुछु कोउ है नहीं. ३

अन्यरीतिसें अधिकारीका अभाव,

## पूर्वपछी प्रतिपादन करै है.

### दोहा.

चहत विषयसुख सकल जन, नहीं मोछको पंथ;
अधिकारी यातैं नहीं, पढै सुनै जो ग्रंथ.४

टीका:— सर्वपुरुष विषयसुखकूं चाहै है, और जो कोई सकलविषयनका त्यागकरिके तपविषै आरूढ है, सो बी परलोकके उत्तमभोगनकी इच्छाकरिके नानाक्लेश संहारै हैं. यातैं इसलोकका; अथवा परलोकका विषयसुख सर्व चाहै हैं. सो विषयसुख मोछविषै है नहीं; यातैं मोछका पंथ कहिये साधन, ताकूं कोई पुरुष चाहै नहीं. इसरीतिसैं मोछकी इच्छारूप मुमुछुता बनै नहीं, औ सकलपुरुषनकूं विषयसुखकी इच्छा होवै है, यातैं वैराग्य, सम, दम, उपरति बी काहूविषै बनै नहीं. यातैं चतुष्टयसाधनसहित अधिकारीका अभाव होनेतैं ग्रंथका आरंभ निष्फल है. ४

## अथ विषयखंडन पूर्वपछ.

### दोहा.

जीवब्रह्मकी एकता, कह्यो विषय सो कूर;
क्लेसरहित विभु ब्रह्म इक, जीव क्लेसको मूर. ५

टीका:— पूर्व कह्या जो "जीवब्रह्मकी एकता या ग्रंथका विषय है" सो संभवै नहीं. काहेतैं, ब्रह्म तौ अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेस, इन पंचक्लेसनतैं रहित है औ

विभु कहिये व्यापक है, एक है, सजातीयभेदरहित है. काहेतैं, ब्रह्मके सजातीय औरब्रह्म है नहीं, औ जीवविषै सर्वक्लेश हैं; औ परिच्छिन्न हैं, औ जीव नाना हैं. काहेतैं जितनै सरीर हैं, उतनै जीव हैं. जो सर्वसरीरविषै जीव एक होवै, तौ एकसरीरमैं सुख अथवा दुःख होनैतैं सर्वसरीरविषै सुख औ दुःख हुवा चाहिये.

औ जो वेदांती कहै हैं, "सुखसैं आदिलेके अंतःकरनके धर्म हैं, सो अंतःकरन नाना हैं, यातैं एकके सुखीदुःखी होनैतैं सर्व सुखीदुःखी नहीं होवै हैं. औ साक्षी सुखदुःखतैं रहित है एक है औ सर्वक्लेसतैं रहित है औ ताकी ब्रह्मके साथ एकता बनै है" सो वार्ता बनै नहीं. काहेतैं:—

जो कर्त्ताभोक्ता जीव है, तिसतैं भिन्न साक्षी वंध्यापुत्रके समान है. औ जो साक्षी अंगीकार बी करो, सो बी एक बनै नहीं; नानासाक्षी माननै होवैंगे. काहेतैं यह वेदांतका सिद्धांत है:— "अंतःकरन औ सुखदुःखसैं आदिलेके अंतःकरनके धर्म, ये इंद्रिय औ अंतःकरनके विषय नहीं, किंतु साक्षीके विषय हैं. काहेतैं, इंद्रिय तौ पंचीकृतभूतनकूं विषय करै हैं. यामैं इतना भेद है:— नेत्रइंद्रिय तौ रूपवान जो वस्तु है, ताके रूपकूं, औ रूपके आश्रयकूं, दोनूंवांकूं विषय करै है; जैसैं नीलपीतादिक घटका रूप, औ तिस रूपके आश्रय घटकूं, नेत्रइंद्रिय विषय करै है. औ त्वचाइंद्रिय बी स्पर्शकूं, औ ताके आश्रयकूं, दोनूंवांकूं विषय करै है. औ

रना, घ्रान, श्रवन; ये तीनि तौ रस; गंध, शब्दमात्रकूं विषय करै है; तिनके आश्रयकूं विषय करै नहीं. यातैं इन तीनूवांसैं तौ अंतःकरनका ज्ञान बनै नहीं. औ नेत्रसैं तथा त्वचासैं अंतःकरनका ज्ञान बनै नहीं, काहेतैं, पंचीकृतभूत अथवा पंचीकृतभूतनका कार्य; जो रूपवान अथवा स्पर्शवान होवै, सो नेत्र औ त्वचाका विषय होवै है. अंतःकरन अपंचीकृतभूतनका कार्य है, यातैं नेत्र औ त्वचाका बी विषय नहीं. इसी कारनतैं अपंचीकृतभूतनका कार्य नेत्रइंद्रिय बी नेत्रका विषय नहीं है. औ बाह्यवस्तु इंद्रियका विषय होवै है; औ अंतःकरन इंद्रियकी अपेक्षातैं अंतर है, यातैं बी इंद्रियनका विषय नहीं.

औ अंतःकरनकी वृत्तिका बी अंतःकरन विषय नहीं. काहेतैं; अंतःकरन वृत्तिका आश्रय है; यातैं अंतःकरन अपनी वृत्तिका विषय बनै नहीं. जैसै अग्नि दाहका आश्रय है; सो दाहका विषय नहीं होवै है; किंतु अग्निसैं भिन्न जो काष्टसैं आदिलेके वस्तु हैं, सो दाहका विषय होवै हैं. तैसै अंतःकरनसैं भिन्न जो वस्तु हैं, सो अंतःकरनजन्य वृत्तिके विषय हैं; औ अंतःकरन नहीं.

तैसै अंतःकरनके धर्म बी अंतःकरनकी वृत्तिके विषय नहीं; काहेतैं, अंतःकरनकूं विषय करनैवास्तै जो अंतःकरनकी वृत्ति होवै, तौ अंतःकरनके धर्म जो सुखादिक हैं, तिनकूं बी विषय करै. सो अंतःकरनकूं विषय करनैवाली वृत्ति तौ अंतःकरनके सन्मुख होवै नहीं, यातैं अंतःकरनके धर्म

विभु कहिये व्यापक है, एक है, सजातीयभेदरहित है. काहेतें, ब्रह्मके सजातीय औरब्रह्म है नहीं, औ जीवविषै सर्वक्लेश हैं; औ परिच्छिन्न हैं, औ जीव नाना हैं. काहेतें जितने सरीर हैं, उतने जीव हैं. जो सर्वसरीरविषै जीव एक होवै, तौ एकसरीरमैं सुख अथवा दुःख होनेतें सर्वसरीरविषै सुख औ दुःख हुवा चाहिये.

औ जो वेदांती कहै हैं, "सुखसैं आदिलेके अंतःकरनके धर्म हैं, सो अंतःकरन नाना हैं, यातें एकके सुखीदुःखी होनेतें सर्व सुखीदुःखी नहीं होवै हैं. औ साछी सुखदुःखतें रहित है एक है औ सर्वक्लेसतें रहित है औ ताकी ब्रह्मके साथ एकता बनै है" सो वार्ता बनै नहीं. काहेतें:—

जो कर्त्ताभोक्ता जीव है, तिसतें भिन्न साछी वंध्यापुत्रके समान है. औ जो साछी अंगीकार वी करो, सो वी एक बनै नहीं; नानासाछी माननें होवैंगे. काहेतें यह वेदांतका सिद्धांत है:— "अंतःकरन औ सुखदुःखसैं आदिलेके अंतःकरनके धर्म, ये इंद्रिय औ अंतःकरनके विषय नहीं, किंतु साछीके विषय हैं. काहेतें, इंद्रिय तौ पंचीकृतभूतनकूं विषय करै हैं. यामैं इतना भेद है:— नेत्रइंद्रिय तौ रूपवान जो वस्तु है, ताके रूपकूं, औ रूपके आश्रयकूं, दोनूंवांकूं विषय करै है; जैसें नीलपीतादिक घटका रूप, औ तिस रूपके आश्रय घटकूं, नेत्रइंद्रिय विषय करै है. औ त्वचाइंद्रिय वी स्पर्शकूं, औ ताके आश्रयकूं, दोनूंवांकूं विषय करै है. औ

रना, घ्रान, श्रवन; ये तीनि तौ रस, गंध, शब्दमात्रकूं विषय करै हैं; तिनके आश्रयकूं विषय करै नहीं. यातैं इन तीनू-वांसैं तौ अंतःकरनका ज्ञान बनै नहीं. औ नेत्रसैं तथा त्वचासैं अंतःकरनका ज्ञान बनै नहीं, काहेतैं, पंचीकृतभूत अथवा पंचीकृतभूतनका कार्य, जो रूपवान अथवा स्पर्स-वान होवै, सो नेत्र औ त्वचाका विषय होवै है. अंतःकरन अपंचीकृतभूतनका कार्य है, यातैं नेत्र औ त्वचाका बी विषय नहीं. इसी कारनतैं अपंचीकृतभूतनका कार्य नेत्रइं-द्रिय बी नेत्रका विषय नहीं है. औ बाह्यवस्तु इंद्रियका विषय होवै है;.औ अंतःकरन इंद्रियकी अपेक्षातैं अंतर है, यातैं बी इंद्रियनका विषय नहीं.

औ अंतःकरनकी वृत्तिका बी अंतःकरन विषय नहीं. काहेतैं, अंतःकरन वृत्तिका आश्रय है; यातैं अंतःकरन अप-नी वृत्तिका विषय बनै नहीं. जैसै अग्नि दाहका आश्रय है; सो दाहका विषय नहीं होवै है; किंतु अग्निसैं भिन्न जो काष्टसैं आदिलेके वस्तु हैं, सो दाहका विषय होवै हैं. तैसै अंतःकरनसैं भिन्न जो वस्तु हैं, सो अंतःकरनजन्य वृत्तिके विषय हैं; औ अंतःकरन नहीं.

तैसै अंतःकरनके धर्म बी अंतःकरनकी वृत्तिके विषय नहीं; काहेतैं, अंतःकरनकूं विषय करनैवास्तै जो अंतःकरन-की वृत्ति होवै, तौ अंतःकरनके धर्म जो सुखादिक हैं, ति-नकूं बी विषय करै. सो अंतःकरनकूं विषय करनैवाली वृत्ति तौ अंतःकरनके सन्मुख होवै नहीं, यातैं अंतःकरनके धर्म

बी अंतःकरनकी वृत्तिके विषय नहीं. औ यह नियम है: जो वृत्तिके आश्रयसैं किंचित् दूरिवस्तु होवै, सो वृत्तिका विषय होवै है. जो वस्तु वृत्तिके आश्रयसैं अत्यंतसमीप होवै, सो वृत्तिका विषय होवै नहीं. जैसें नेत्रकी वृत्तिका आश्रय जो नेत्र, ताके अत्यंतसमीप अंजन, नेत्रकी वृत्तिका विषय नहीं. तैसें अंतःकरनकी वृत्तिका आश्रय जो अंतःकरन, ताके अत्यंतसमीप जो सुखसैं आदिलेके धर्म, सो अंतःकरनकी वृत्तिके विषय बनै नहीं. इसरीतिसैं धर्मसहित अंतःकरनका इंद्रियतैं अथवा अपनेतैं भान बनै नहीं; किंतु साक्षीके विषय हैं.

सो साक्षी एक अंगीकार करैं, तौ जैसें एकअंतःकरनके सुखदुःखका साक्षीसैं भान होवै है, तैसें सबके सुखदुःखका भान हुवा चाहिये. यातैं साक्षी नाना हैं जब नाना साक्षी अंगीकार करिये, तब दोष नहीं. काहेतैं, जा साक्षीकी उपाधि अंतःकरन है, ता साक्षीसैं अपनी उपाधिके धर्मका भान होवै है. यातैं सर्वके सुखदुःखका भान होवै नहीं. इसरीतीसैं नाना जो साक्षी, तिनूंकी एकब्रह्मके साथ एकता बनै नहीं.

## अथ प्रयोजनखंडन पूर्वपछ.

### दोहा.

बंधनिवृत्ती ज्ञानतैं, बनै न विन अभ्यास;
सामग्री ताकी नहीं, तजो ज्ञानकी आस. ६

टीकाः— "अहंकारसैं आदिलेके जो अनात्मवस्तु है, सो बंध कहिये है." सो बंध जो अध्यासरूप होवै, तौ ज्ञानतैं निवृत्त होवै, औ अध्यासरूप नहीं होवै, तौ ज्ञानतैं निवृत्त होवै नहीं. काहेतैं ज्ञानका यह स्वभाव हैः— जा वस्तुका ज्ञान होवै, ताकेविषै अध्यास औ अज्ञान, तिनकूं दूरि करै है; जैसैं जेवरीका ज्ञान, जेवरीविषै सर्पअध्यासकूं; औ जेवरीके अज्ञानकूं दूरि करै है. भ्रांतिज्ञानका विषय जो मिथ्यावस्तु औ भ्रांतिज्ञान, ताका नाम अध्यास है. जाकेविषै जो वस्तु मिथ्या नहीं है, किंतु सत्य है; ताकी ज्ञानसैं निवृत्ति होवै नहीं. तैसैं आत्मा विषै अहंकारसैं आदिलेके बंध जो अध्यास कहिये मिथ्या होवै, तौ ज्ञानसैं निवृत्ति होवै. सो आत्माविषै मिथ्याबंधकी सामग्री है नहीं, औ बंध प्रतीति होवै है; यातैं बंध सत्य है. ता सत्यबंधकी ज्ञानसैं निवृत्तिकी आसा निष्फल है.

# अथ अध्याससामग्री निरूपनं

## दोहा.

सत्यवस्तुके ज्ञानतैं, संसकार इक जान;
त्रिविधदोप अज्ञान पुनि, सामग्री पहिचान.. ७

टीकाः— सत्यवस्तुके ज्ञानजन्य संस्कार, औ तीनप्रकारके दोष; प्रमाताका दोष, प्रमानका दोष, प्रमेयका दोष, औ अधिष्ठानके विशेषरूपका अज्ञान; इतनी अध्यासकी सामग्री है. या विना अध्यास होवै नहीं. जैसैं सीपीमैं रू-

पेका, औ जेवरीमें सर्पका अध्यास होवै है; सो जा पुरुषनै सत्यरूपा औ सर्प देख्या है, ताकूं होवै है, औ जाकूं सत्य-रूपेका औ सर्पका ज्ञान नहीं, ताकूं होवै नहीं. यातें सत्य-वस्तुके ज्ञानके संस्कार अध्यासके हेतु हैं. औ सीपीमें स-र्पका, जेवरीमैं रूपेका, अध्यास होवै नहीं, यातें प्रमेयविषै सादृश्यदोष अध्यासका हेतु है. इसरीतिसें प्रमाताविषै लोभ भयसें आदिलेके, औ नेत्रादिक प्रमानविषै पित्तकामलसें आदिलेके जो दोष, सो अध्यासके हेतु हैं. औ सीपीका "इदं" रूपकरिके सामान्यज्ञान होवै, औ "यह सीपी है" ऐसा विशेषज्ञान नहीं होवै, जब अध्यास होवै है. "सीपी है" ऐसा विशेषरूपकरिके ज्ञान होवै, जब अध्यास होवै नहीं. औ सामान्यरूपकरिके ज्ञान नहीं होवै, तौ बी अ-ध्यास होवै नहीं. यातें अधिष्ठानका विशेषरूपकरिके अ-ज्ञान; औ सामान्यरूपकरिके ज्ञान, अध्यासका हेतु है. इ-तनी अध्यासकी सामग्री है. इनमैं कोईएक नहीं होवै तौ बी अध्यास होवै नहीं. जैसें कुलाल, चक्र, दंड, मृत्तिका, घटकी सामग्री है. कोईएक नहीं होवै तौ घट होवै नहीं. तैसें अध्यास बी सारीसामग्रीसें होवै है.

औ बंधके अध्यासमैं एक बी कारन है नहीं. बंध कहूं सत्य होवै, तौ ताके ज्ञानजन्य संस्कारतें आत्माविषै मिथ्याबंध प्रतीत होवै; सो सिद्धांतमैं आत्मासें भिन्न कोई सत्यवस्तु है नहीं; यातें सत्यबंधके ज्ञानजन्य संस्कारका अभाव होनेतें, आत्माविषै बंधका अध्यास बनै नहीं.

तैसे आत्माका औ बंधका सादृश्य बी है नहीं. उलटा तम प्रकासकी न्याई विपरीतस्वभाव है. आत्मा प्रत्यक् है; औ बंध पराक है. प्रत्यक् नाम अंतरका है, औ पराक नाम बाह्यका है. आत्मा विषयी है, औ बंध विषय है. जो प्रकाश करनैवाला होवै, सो विषयी कहिये है. जाका प्रकास करिये सो विषय कहिये है. प्रत्यक्विषै पराकका, तथा पराकविषै प्रत्यक्का अध्यास होवै नहीं. जैसै पुत्रादिकनकी अपेक्षातैं देह प्रत्यक् है, ताके विषै पुत्रादिकनका, औ पुत्रादिकविषै देहका अध्यास होवै नहीं. औ विषयमैं विषयीका, तथा विषयीमैं विषयका, अध्यास होवै नहीं. जैसै विषय जो घटादिक तिनविषै विषयी दीपकका, औ दीपकविषै घटादिकनका अध्यास होवै नहीं. तैसै सादृश्यके अभाव होनैतैं प्रत्यक्विषयी जो आत्मा, ताविषै पराकविषयरूप बंधका अध्यास बनै नहीं. प्रत्यक्का औ पराकका विरोध है विषयका औ विषयीका विरोध है; सादृश्य नहीं. यातैं बंधका अध्यास आत्माविषै बनै नहीं.

तैसै प्रमाताके दोषका, औ प्रमानके दोषका बी अभाव है. काहेतैं, प्रमातासैं आदिलेके सर्वप्रपंच अध्यासरूप है; सोई बंध है. यह वेदांतका सिद्धांत है. इसरीतिसैं बंधके अध्याससैं पूर्व प्रमाता प्रमानका स्वरूप असिद्ध है. औ ताका दोष बी असिद्ध है. यातैं बंधका अध्यास बनै नहीं.

औ अधिष्ठानका विसेषरूप करिके अज्ञान बी बनै नहीं. काहेतैं, जो बंधका अधिष्ठान ब्रह्म है, सो स्वयंप्रकास

ज्ञानरूप है. ता स्वयंप्रकास ज्ञानरूप ब्रह्मविषै सूर्यविषै तमकी न्याई अज्ञान बनै नहीं. जैसै प्रकासमान सूर्यसें तमका विरोध है; तैसै चेतनप्रकास औ तमरूप अज्ञानका परस्पर विरोध है. औ अधिष्ठानका अज्ञान अंगीकार करैं, तौ बी बंधका अध्यास बनै नहीं. काहेतें अत्यंतअज्ञातविषै; तथा अत्यंतज्ञातविषै अध्यास होवै नहीं. किंतु विशेषरूपसें अज्ञात, औ सामान्यरूपसें ज्ञातविषै होवै है. औ ब्रह्म सामान्यविसेषभावसें रहित है, निर्विसेष है; यह सिद्धांत है. यातें विसेषरूपसें अज्ञात, औ सामान्यरूपसें ज्ञात, ब्रह्म बनैं नहीं. औ अध्यासके लोभसें ब्रह्मविषै सामान्यविसेषभाव अंगीकार करौगे; तौ सिद्धांतका त्याग होवैगा. इसरीतिसें निर्विसेष जो प्रकासरूप ब्रह्म, ताका विसेषरूपसें अज्ञान, औ सामान्यरूपसें ज्ञानका अभाव होनेतें ताकेविषै अध्यास बनै नहीं यातें ब्रह्मविषै बंध अध्यासरूप है, यह कहना बनै नहीं; किंतु बंध सत्य है. ता सत्यबंधकी ज्ञानसें निवृत्तिका असंभव है. यातें ज्ञानद्वारा मोछरूप प्रयोजन ग्रंथका बनै नहीं. औ ज्ञानसें मोछका प्रतिपादक जो सिद्धांत सो समीचीन नहीं. किंतु कर्मसें मोछ होवै है. यह वार्त्ता एकभविकवादकी रीतिसें प्रतिपादन करै है.

## दोहा.

सत्यबंधकी ज्ञानतैं, नहीं निवृत्ति सयुक्त;
नित्य कर्म संतत करै, भयो चहै जो मुक्त. ८

टीकाः— सत्यबंधकी ज्ञानसैं निवृत्ति माननी, सयुक्त कहिये युक्तिसहित नहीं; किंतु अयुक्त है. यातैं जो पुरुष मुक्त हुवा चाहै, सो संतत कहिये निरंतर नित्य कर्म करै. याका यह अभिप्राय हैः—

कर्म दो प्रकारका है; एक विहित है, औ एक निसिद्ध है. पुरुषकी प्रवृत्तिके निमित्त जाका स्वरूप वेदनै बोधन किया है, सो विहितकर्म कहिये है. औ पुरुषकी निवृत्ति जासौं बोधन करी है, सो निसिद्धकर्म कहिये है. औ स्वभावसिद्ध जो क्रिया है, सो कर्म नहीं. काहेतैं, जो वेदनै प्रवृत्ति अथवा निवृत्तिके निमित्त बोधन किया है, सो कर्म कहिये है. उदासीनक्रिया कर्म नहीं. यातैं दोप्रकारका कर्म है; तीनप्रकारका नहीं.

विहितकर्म चारप्रकारका हैः—एक नित्य है, औ नैमित्तिक है, काम्य है, औ प्रायश्चित्त है. पापनासके निमित्त विधान किया जो कर्म, सो प्रायश्चित्त कहिये है. जैसे प्रमादसैं द्रव्यके ग्रहनजन्य जो यतिकूं पाप, ताके नासके निमित्त द्रव्यका त्याग, औ तीनिउपवास हैं. फलके निमित्त विधान किया जो कर्म, सो काम्य कहिये है. जैसे वृष्टिकामकूं कारीरीयाग है, औ स्वर्गकामकूं अग्निहोत्र सोमयागसैं आदिलेके हैं. जा कर्मके नहीं कियेसैं पाप होवै; औ कियेसैं पुन्यपापरूप फल होवै नहीं औ सदा जाका विधान नहीं, किंतु किसीनिमित्तकूं लेके विधान किया होवै, सो कर्म नैमित्तिक कहिये है; जैसे ग्रहनश्राद्ध है; औ अवस्थावद्ध, जा-

तिवृद्ध, आश्रमवृद्ध, विद्यावृद्ध, धर्मवृद्ध, ज्ञानवृद्धपुरुषके आगमनतैं उत्थानरूप कर्म है. विद्यासब्दसैं सास्त्रज्ञानका ग्रहन है; औ ज्ञानसब्दसैं अपरोछविद्याका ग्रहन है. पूर्वपूर्वसैं उत्तरउत्तर उत्तम हैं. जाके नहीं कियेसैं पाप होवै, कियेसैं फल होवै नहीं; औ सदा जाका विधान होवै, सो नित्यकर्म कहिये है; जैसैं स्नानसंध्यादिक हैं. इसरीतीसैं च्यारिप्रकारका विहित, औ निषिद्ध मिलिके पांचप्रकारका कर्म है.

मोछकी इछावान काम्य औ निसिद्धकर्म करै नहीं. काहेतैं, काम्यकर्मसैं उत्तमलोककूं जावै है, औ निसिद्धसैं नीचलोककूं जावै है. यातैं दोनूंको त्याग करै, औ नित्यकर्म सदा करै, औ नैमित्तिकका जब निमित्त होवै, तब नैमित्तिक बी करै. काहेतैं, नित्यनैमित्तिककर्म नहीं करै तौ पाप होवैगा. ता पापसैं नीचयोनिकूं प्राप्त होवैगा. यातैं पापके रोकनैवास्तै नित्यनैमित्तिककर्म करै. नित्यनैमित्तिककर्मका और फल नहीं, यही फल है. जो तिनके नहीं करनैसैं पाप होवै है, सो तिनके करनैसैं होवै नहीं. यातैं मुमुछु नित्यनैमित्तिककर्म अवस्य करै.

और जो कदाचित प्रमादसैं निषिद्धकर्म होय जावै, तौ ताका दोष दूरि करनैकूं प्रायश्चित्त करै; जो निषिद्धकर्म नहीं किया होवै, तौवी जन्मांतरके जो पाप हैं, तिनके दूरि करनैवास्तै प्रायश्चित्तकर्म करै, परंतु इतना भेद है:—प्रायश्चित्त दो प्रकार है, एक तौ असाधारन है, औ एक साधारन है. जो किसी पापविसेषके दूरि करनैवास्तै सास्त्रनै विधान

किया होवै, सो असाधारनप्रायश्चित्त कहिये है; जैसे पूर्व-कृच्छ्रा उपवास है. औ सर्वपापके दूरि करनैवास्तै सास्त्रनै जो विधान किया कर्म, सो साधारनप्रायश्चित्त कहिये है, जैसें गंगास्नान औ ईश्वरके नामउच्चारन हैं; इसतैं आदिलेके और बी जानि लेनै. इसरीतिसें दोप्रकारके प्रायश्चित्त है. जो ज्ञा-तपाप होवै, तौ तिस पापका नासक जो असाधारनप्रायश्चि-त्त सास्त्रनै बोधन किया है, ताकूं करै. औ जो जन्मांतरके अ-ज्ञातपाप हैं, तिनके दूरि करनैवास्तै साधारनप्रायश्चित्त करै. काहेतैं, असाधारनप्रायश्चितका यह स्वभाव है:—जा पापका नास करनैवास्तै सास्त्रनै जो प्रायश्चित्तविधान किया है, सो पाप प्रायश्चित्तसें दूरि होवै है, और नहीं. औ जन्मांतरके पापका ऐसा ज्ञान है नहीं, जो कौनसा पाप है; किस प्राय-श्चित्तसें दूरि होवैगा, यातें साधारनप्रायश्चित्त करै.

साधारनप्रायश्चित्तसें सर्वपाप दूरि होवै हैं. यद्यपि गंगा-स्नानसें आदिलेके जो साधारनप्रायश्चित्त कहे, सो केवल-प्रायश्चित्तरूप नहीं, किंतु काम्यरूप औ प्रायश्चित्तरूप हैं. काहेतैं "गंगास्नानसें उत्तमलोककी प्राप्ति" सास्त्रमें कही है. तैसे "ईश्वरके नामउच्चारनसें बी उत्तमलोककी प्राप्ति" कही है, यातें काम्यरूप हैं; औ पापके नासक हैं, यातें प्रायश्चि-त्तरूप हैं. जैसे अश्वमेध; ब्रह्महत्यादिक पापका नासक है, औ स्वर्गकी प्राप्तिरूप फलका हेतु है, तैसे गंगास्नानादिक हैं; केवल प्रायश्चित्त नहीं. यातें गंगास्नानादिकनतें उत्तमलो-ककी प्राप्ति होवै है, सो मुमुक्षुकूं वांछित है नहीं. तथापि जा-

कूं उत्तमलोककी वांछा है, ताकूं तौ गंगास्नानादिक, पापनास करिके उत्तमलोककूं प्राप्त करै है. जाकूं लोककी कामना नहीं है, ताके केवल पापहीके नासक हैं, यातैं कामनासहित अनुष्ठान किये काम्यरूप प्रायश्चित्त हैं. लोककामनासैं विना अनुष्ठान किये केवल प्रायश्चित्तरूप हैं. जैसै वेदांतमतमैं; संपूर्नकर्म सकामपुरुषकूं संसारके हेतु हैं, औ निष्कामकूं अंतःकरनकी शुद्धि करिके मोछके हेतु हैं. तैसै एकही गंगास्नान, तथा ईश्वरका नामउच्चारन सकामकूं तौ काम्यरूप प्रायश्चित्त हैं, औ निष्कामकूं केवलप्रायश्चित्तरूप हैं. यातैं मुमुछु साधारनप्रायश्चित्त करै, इसरीतिसैं जन्मांतरके संपूर्नपापका ज्ञानसैं विनाही नास होवै है.

तैसै जन्मांतरके काम्यकर्म वी मुमुछुके वंध्याके समान हैं; फलके हेतु नहीं. काहेतैं, जैसै कर्मके अनुष्ठानकालविषै पुरुषकी इच्छा फलका हेतु वेदांतमतमैं अंगीकार करी है, इच्छासहित अनुष्ठान किये कर्म स्वर्गादिफलके हेतु हैं; औ निष्कामअनुष्ठान किये स्वर्गादिफलके हेतु नहीं; यह वेदांतका सिद्धांत है. तैसै कर्मकी सिद्धिसैं अनंतर वी पुरुषकी इच्छा फलका हेतु है. सो पुरुषकी इच्छा जिस कालमैं पुरुष मुमुछु हुवा तव दूरि होई गई. यातैं जन्मांतरके काम्यकर्म वी फलके हेतु नहीं. जैसै किसी पुरुषनैं धनकी प्राप्तिकी इच्छातैं. धनीपुरुषका आराधन किया होवै, ता धनीके आराधनसैं अनंतर वी जो धनकी इच्छा दूरि होय जावै, तौ धनकी प्राप्तिरूप फल होवै नहीं. तैसै जन्मांतरके काम्य-

कर्मका वी मुमुक्षुकूं इच्छाके अभावतैं फल होवै नहीं. इस-रीतिसैं केवल कर्मसैं मोछ होवै है.

वर्तमानजन्मविषे काम्य औ निषिद्ध किये नहीं, जातैं ऊर्ध्वलोकअधोलोककूं जावै. जन्मांतरके प्रारब्ध जो निषिद्ध औ काम्य, तिनका भोगसैं नास होवै है. नित्य औ नैंमित्तिकके नहीं करनेतैं जो पाप होवै सो तिनके करनैतैं मुमुक्षुकूं होवै नहीं; औ जन्मांतरके संचित जो निषिद्ध हैं; तिनका साधारनप्रायश्चित्तसैं नास होवै है, जन्मांतरका संचितकाम्यकर्म मुमुक्षुकूं इच्छाके अभावतैं फल देवै नहीं. यातैं मुमुक्षु नित्यनैंमित्तिक औ साधारनप्रायश्चित्तरूप कर्म करै. औ वर्तमानजन्मका ज्ञात निषिद्धकर्म होवै, तौ असाधारनप्रायश्चित्त करै; अथवा नित्य औ नैंमित्तिकही करै; प्रायश्चित्त नहीं करै. काहेतैं, जो संचितनिषिद्धकर्म, औ काम्यकर्म, सो मुमुक्षुके नास होय जावैं हैं, जैसै ज्ञानवानके संचितकर्मका नास वेदांतमतमैं अंगीकार किया है; तैसै निषिद्धकाम्यका त्यागकरिके नित्यनैंमित्तिककर्मविषै वर्त्तमान जो मुमुक्षु, ताके संचितकर्मका नास होवै है; अथवा संचित जो काम्य औ निषिद्ध, सो सारे मिलिके एकजन्मका आरंभ करै है. यातैं मुमुक्षुकूं एक जन्म और होवै है; अथवा योगीके कायव्यूहकी न्याई, एकही कालविषै सारेसंचितअनंतसरीरनका आरंभ करै है; तिनतैं मुमुक्षु उत्तरजन्मविषै सर्वका फल भोग लेवै है. अथवा नित्य औ नैंमित्तिककर्मके अनुष्ठानतैं जो क्लेस होवै है, सो जन्मांतरके

संचितनिषिद्धकर्मका फल है. यातैं जन्मांतरका संचितनिषिद्ध औरजन्मका आरंभ करै नहीं. काम्य जो संचित है सो एकजन्म अथवा एककालमैं; अनंतसरीरनका आरंभ करै है. यातैं मुमुछुकूं उत्तरजन्मविषै दुःखका लेस बी होवै नहीं; केवलसुखका भोग होवै है. काहेतैं, जन्मांतरके संचित जो विहितकर्म हैं, तिनतैं सरीर हुवा है. औ संचित जो निषिद्ध हैं, सो नित्यनैमित्तिकके अनुष्ठानके क्लेसतैं पूर्वजन्मविषै भोगि लिये; इसरीतिसैं प्रायश्चित्तसैं विना केवल नित्य औ नैमित्तिककर्मके अनुष्ठानतैं मोछ होवै है! यातैं नैमित्तिककर्मके समय नैमित्तिक अनुष्ठान करै. औ नित्यकर्म संतत अनुष्ठान करै. यामतकूं सास्त्रमैं एकभविकवाद कहै हैं.

यातैं वी बंधकी निवृत्ति ज्ञानद्वारा ग्रंथका प्रयोजन नहीं काहेतैं, जो वस्तु औरसैं होवै नहीं; सो मुख्यप्रयोजन होवै है, जैसै रूपका ज्ञान नेत्रविना औरसैं होवै नहीं; सो रूपज्ञान नेत्रका प्रयोजन है. औ बंधकी निवृत्ति ग्रंथसैं विना कर्मतैं होवै है. यातैं वंधकी निवृत्ति ग्रंथका प्रयोजन नहीं. इसरीतिसैं ग्रंथके अधिकारी, विषय, प्रयोजन वनै नहीं.

अधिकारी आदिकांके अभावतैं संवंध भी वनै नहीं. काहेतैं, विषयके अभावतैं ग्रंथका औ विषयका प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावसंवंध वनै नहीं; अधिकारी औ फलके अभावतैं, तिनका प्राप्यप्रापकभावसंवंध वनै नहीं. अधिकारीके अभावतैं ताका औ विचारका कर्तृकर्तव्यभावसंवंध

बनै नहीं. ज्ञानकूं निष्फलता होनैमैं ग्रंथका औ ज्ञानका जन्यजनकभावसंबंध बनै नहीं. सफलवस्तु जन्य होवै है. पूर्वकही रीतिसैं ज्ञान सफल है नहीं; औ ज्ञानके स्वरूपका बी अभाव है; यातैं बी ज्ञानका औ ग्रंथका संबंध बनै नहीं काहेतैं, जीवब्रह्मके अभेदनिश्चयका नाम सिद्धांतमैं ज्ञान है. सो अभेदनिश्चय बनै नहीं. काहेतैं, जीवब्रह्मका अभेद है नहीं. यह वार्ता विषयके निराकरनमैं पूर्व प्रतिपादन करी है. यातैं अभेदनिश्चयरूप ज्ञान बनै नहीं. इसरीतिसैं अधिकारीआदिक अनुबंधनके अभावतैं ग्रंथका आरंभ बनै नहीं.

## अथ पूर्वपछीक्रमतैं उत्तर.

पूर्वपछीनै प्रथम कह्या " जो मोछकी इच्छा काहूकूं बनै नहीं. काहेतैं, मोछविषै दोअंस हैः—एक तौ कारनसहित जगतकी निवृत्ति मोछका अंस है; औ दूसरा अंस ब्रह्मकी प्राप्तिरूप है. तिनविषै कारनसहित जगतकी निवृत्तिरूप मोछके प्रथमअंसकी इच्छा काहूकूं है नहीं, किंतु तीनप्रकारके दुःखकी निवृत्तिकी इच्छा सर्वपुरुषनकूं है. सो दुःखकी निवृत्ति अपनैअपनै उपायनतैं होय जावै है. यातैं मूलसहित जगतकी निवृत्तिकी इच्छावाला मुमुछु अधिकारी बनै नहीं. " ताका

## समाधान प्रथम कहै है.

### दोहा.

मूलसहित जगहानि बिन, ह्वैन त्रिविधदुःखध्वंस;

यातैं जन चाहत सकल, प्रथम मोछको अंस. ९

टीकाः— मूलं कहियें जगतका कारन जों अज्ञान, औ जगतके नासविना तीनप्रकारके दुःखका औरउपायनतैं ध्वंस कहिये नास होवै नहीं, औ मूलअविद्याके नासतैं सर्वदुःख औ दुःखके कारन रोगादिक, औ रोगादिकनके आश्रय सरीरादिकनका नास होवै है. यातैं त्रिविधदुःखके नासके निमित्त कारनसहित जगतकी निवृत्तिरूप मोछके प्रथमअंसकूं सकलपुरुष चाहै हैं. तात्पर्य यह है; जो सर्वऔषधआदिक उपाय करनैविषै समर्थ हैं; तिनके बी दुःख नियमकरि दूरि होवै नहीं. काहूपुरुषका रोगादिजन्य दुःख औषधादिक उपायनतैं नास होवै हैं, औ काहूके दुःखका औषधआदिक उपायनतैं नास होवै नहीं यातैं औषधआदिक उपायनतैं रोगादिजन्य दुःखकी नियम करिके निवृत्ति होवै नहीं. औ जाके औषधादिक उपायनतैं दुःखकी निवृत्ति होवै है, ताके बी दुःखकी उत्पत्ति फेरि होवै है, यातैं औषधआदिकं उपायनतैं दुःखकी अत्यंतनिवृत्ति होवै नहीं. जाकी निवृत्ति हुई है, ताकी फेरि उत्पत्ति नहीं होवै सो अत्यंतनिवृत्ति कहिये है. औषधआदिक उपायनतैं दुःखकी निवृत्ति नियमकरिके होवै नहीं. औ निवृत्त जो दुःख, ताकी फेरि बी उत्पत्ति होवै है. यातैं अत्यंतनिवृत्ति बी तिन उपायनतैं होवै नहीं. औ दुःखके सकलसाधनका नास होवै, तौ सकलदुःखकी नियमकरिके निवृत्ति होवै. औ दुःखके साधनका नास हुयेतैं फेरि दुःख होवै नहीं. यातैं दुःखकी

निवृत्तिके निमित्त दुःखके साधनकी निवृत्तिकी इच्छा सर्व-कूं होवै है.

सो दुःखका साधन अज्ञान औ ताका कार्य प्रपंच है. यह वार्ता छांदोग्यउपनिषदमैं भूमविद्याविषै प्रसिद्ध है. तहां यह प्रसंग हैः—" एक समय सनत्कुमारके पास नारद प्राप्त हुवा. औ नारदनै कह्याः— " हे भगवन् ! जो आत्मज्ञानी पुरुष है, ताकूं सोक नहीं होवै है. औ मैं सोकसहित हूं, यातैं मैं अज्ञानी हूं. मेरेकूं ऐसा उपदेस करो, जासैं मेरा अ-ज्ञान दूरि होवै. " तब सनत्कुमारनै नारदकूं कह्या, हे नारद! भूमा सोकरहित है; सुखरूप है. औ भूमासैं भिन्न सकल तुच्छ है; औ दुःखका साधन है. " भूमा नाम ब्रह्मका है. इसरीतिसैं ब्रह्मसैं भिन्न जो वस्तु, सो सकलदुःखका साधन कहै हैं. अज्ञान औ ताका कार्य ब्रह्मसैं भिन्न है; यातैं दुः-खका साधन हैं, ताकी निवृत्ति हुयेसैं सर्वदुःखकी नियमक-रिके अत्यंतनिवृत्ति बनै है. यातैं सकलदुःखकी निवृत्तिके निमित्त अज्ञानसहित प्रपंचकी निवृत्तिरूप मोछके प्रथम-अंसकी चाह बनै है.

और जो पूर्वपछीनै कह्या, " जा वस्तुका अनुभव किया होवै, ताकी प्राप्तिकी इच्छा होवै है. ब्रह्मका अनुभव का-हूनै किया है नहीं, यातैं ब्रह्मकी प्राप्तिरूप मोछके द्वितीय-अंसकी इच्छा काहूकूं होवै नहीं, " ताका

## समाधान कहै हैं.

### दोहा.

किय अनुभव सुखको सबहि, ब्रह्म सुन्यो सुखरूप;
ब्रह्मप्राप्ति या हेतुतें, चहत विवेकिभूप. १०

टीकाः—सर्वपुरुषनें सुखका अनुभव किया है, यातें सुखकी इच्छा सर्वकूं है. औ " ब्रह्म नित्य सुखरूप है " ऐसा सतसास्त्रमें सुन्या है. यातें विवेकीभूप कहिये उत्तम विवेकी सुखस्वरूप ब्रह्मकी प्राप्तिकूं चाहै है. १०

### दोहा.

केवलसुखसब जन चहैं, नहीं विषयकी चाह;
अधिकारी यातें बनै, व्है जु विवेकी नाह. ११

टीकाः—पूर्व कह्या जो " सर्वपुरुष विषयजन्य सुख चाहै हैं, सो विषयजन्य सुख मोछविषै प्राप्त होवै नहीं, किंतु जगतमें प्राप्त होवै है, यातें मोछकी इच्छावान अधिकारीके अभावतें ग्रंथका आरंभ निष्फल है. " ताकूं यह पूछै हैः— जो कोई मुमुछु नहीं है? अथवा मुमुछु तौ है, परंतु तिनकी ग्रंथविषै प्रवृत्ति होवै नहीं? जो ऐसै कहैः—" मुमुछु नहीं है, " सो बनै नहीं. काहेतें, सर्वपुरुष सर्वदुःखका नास, औ नित्यसुखकी प्राप्ति चाहै है; सो सर्वदुःखका नास औ सुखकी प्राप्तिरूप मोछ है. यातें सर्वपुरुष मुमुछु है.

और कह्या जो " विषयजन्य सुख चाहै हैं, " सो नहीं. किंतु सुखमात्र चाहै हैं. सो सुख विषयसैं होवै, अथवा विष-

यविना होवै. जो विषयजन्य सुखकूंही चाहै, तौ सुषुप्तिके सुखकी इच्छा नहीं हुई चाहिये. सुषुप्तिका सुख विषयजन्य है नहीं, यातैं सुखमात्रकूं चाहै है, केवल विषयजन्यकूंही नहीं. उलटा आत्मसुखकूं चाहै हैं. विषयजन्यकूं नहीं चाहै हैं. काहेतैं, सर्वपुरुषनकूं न्यून अथवाअधिकविषयसुखप्राप्त बी है, परंतु ऐसी इच्छा सदा रहै हैः—“ हमारेकूं ऐसा सुख प्राप्त होवै, जा सुखका नास कदै होवै नहीं ” ऐसा सुख आत्मस्वरूप मोछ है. यातैं सर्वपुरुष मुमुछु हैं. “ कोउ मुमुछु नहीं ” ऐसा कहना वनै नहीं.

और जो ऐसै कहै, “ मुमुछु तौ हैं, परंतु ग्रंथमैं प्रवृत्ति होवै नहीं ; यातैं ग्रंथका आरंभ निष्फल है. ” ताकूं यह पूछै हैंः—ग्रंथ मोछका साधन नहीं है, यातैं ग्रंथविषै प्रवृत्ति नहीं होवै ? अथवा ग्रंथसैं औरबी कोई साधन है, जाकेविषै प्रवृत्ति होनैतैं ग्रंथविषै प्रवृत्ति होवै नहीं ? अथवा जिन समादिकनतैं ग्रंथमैं अधिकार कह्या, सो समादिमान ज्ञानके योग्य कोई अधिकारी नहीं है, यातैं ग्रंथमैं प्रवृत्ति होवै नहीं ? जो ऐसै कहैः— “ ग्रंथ मोछका साधन नहीं ” सो वार्ता वनै नहीं. काहेतैं, मोछ, ज्ञानतैं नियम करिकै होवै है ; यह वेदका सिद्धांत है. सो ज्ञान श्रवनसैं होवै है.

श्रवन दोप्रकारका हैः—एक तौ वेदांतवाक्यका औ श्रोत्रका संयोगरूप है ; औ दूसरा वेदांतवाक्यका विचाररूप है. ज्ञानका हेतु प्रथमश्रवन है ; दूसरा नहीं. काहेतैं, सब्दजन्य ज्ञानविषै इंद्रियके साथ सब्दका संयोगही सर्वत्र हे-

तु है. यातैं वेदांतवाक्यका औ श्रोत्रका संयोगरूप श्रवन ब्रह्मज्ञानका हेतु है. अवांतरवाक्यका श्रवन परोछज्ञानका हेतु है. औ महावाक्यका श्रवन अपरोछज्ञानका हेतु है. यह वार्ता पूर्व प्रतिपादन करी है. जाकूं ज्ञान हुवेतैं वी असंभावना औ विपरीतभावना होवै, सो दूसराश्रवन औ मननिदिध्यासन करै. वेदांतवाक्यका विचाररूप जो श्रवन, तासूं वेदांतवाक्यविषै असंभावना दूरि होवै है. वेदांतवाक्य ब्रह्मके प्रतिपादक हैं, अथवा और अर्थके प्रतिपादक हैं ? ऐसा संसय वेदांतवाक्यकी असंभावना है, सो तिनके विचारसैं दूरि होवै है. औ मननसैं प्रमेयकी असंभावना दूरि होवै है. जीवब्रह्मकी एकता वेदांतका प्रमेयकहिये है. सो एकता सत्य है ? अथवा जीवब्रह्मका भेद सत्य है ? ऐसा जो संसय, सो प्रमेयकी असंभावना कहिये है, सो मननसैं दूरि होवै है. विपरीतभावना निदिध्यासनतैं दूरि होवै है. इसरीतिसैं प्रथमश्रवन तौ ज्ञानद्वारा मोछका हेतु है, औ विचाररूप श्रवन, औ मनन, औ निदिध्यासन, ये असंभावना औ विपरीतभावनाकी निवृत्तिद्वारा मोछके हेतु हैं. वेदांत नाम उपनिषदका है, सो यद्यपि या ग्रंथतैं भिन्न है, तथापि तिनके समानअर्थवाले भाषावाक्य या ग्रंथमैं हैं. तिनके श्रवनतैं वी ज्ञान होवै है, यह वार्ता आगे प्रतिपादन करैंगे. इसरीतिसैं ज्ञानद्वारा ग्रंथ मोछका हेतु है. औ विचाररूप औ मननरूप यह ग्रंथ है यातैं असंभावनादोषकी निवृत्तिद्वारा मोछका हेतु है; यातैं " ग्रंथसैं मोछ होवै नहीं, " यह केवल हठमात्र है.

और जो ऐसै कहै " ग्रंथसैं मोक्ष तौ होवै है; परंतु औ-रसाधनसैं बी मोक्ष होवै है, यातैं ग्रंथका आरंभ निष्फल है. ताकूं यह पूछै हैं:— सो औरसाधन कौन हैं, जातैं मोक्ष होवै हैं? जो ऐसै कहै:— उपनिषद सूत्रभाष्यसैं आदिलेके संस्कृतग्रंथ जीवब्रह्मकी एकताके प्रतिपादक बहुत हैं, तिनसैं बी ज्ञानद्वारा मोक्ष होवै है, याका भिन्न अधिकारी नहीं. यातैं यह ग्रंथ निष्फल है." सो वार्ता यद्यपि सत्य है, तथापि तिनका अर्थ ग्रहन करनैविषै जाकी बुद्धि समर्थ नहीं है. ऐसा जो मुमुक्षु, ताकूं तिनसैं ज्ञान होवै नहीं. यातैं मंदबुद्धिमुमुक्षुकी तिनविषै प्रवृत्ति होवै नहीं; या ग्रंथविषैही प्रवृत्ति होवैगी.

और जो ऐसैं कहै " ग्रंथसैं मोक्ष बी होवै है; औ संस्कृतग्रंथनसैं मंदबुद्धिकूं बोध बी होवै नहीं. औ मुमुक्षु बी है, तौ बी ग्रंथविषै प्रवृत्ति होवै नहीं. काहेतैं, जो विवेक वैराग्य समादिमान अधिकारी कह्या सो दुर्लभ है. यातैं आपनैविषै साधनका अभाव देखिके ग्रंथमैं प्रवृत्ति होवै नहीं." ताकूं यह पूछै हैं:— बहुतअधिकारी नहीं? अथवा कोई बी नहीं? जो ऐसै कहै:— " बहुतअधिकारी नहीं. " सो तौ हम बी अंगीकार करै हैं. औ जो ऐसै कहै:— " कोई बी ज्ञानके योग्य अधिकारी नहीं. "सो वार्ता बनै नहीं. काहेतैं, अंतःकरणविषै तीनदोष हैं:— एक मल है, औ विक्षेप है, औ स्वरूपका आवरन है. मल नाम पापका है. विक्षेप नाम चंचलताका है; औ आवरन नाम अज्ञानका है. सुभकर्मनैं

मलदोष दूरि होवै है, औ उपासनातैं विछेपदोष दूरि होवै है, ज्ञानतैं आवरनदोष दूरि होवै है. जिनके अंतःकरनविषै मल औ विछेपदोष हैं; सो अधिकारी नहीं बी है; परंतु इसजन्मविषै अथवा पूर्वजन्मविषै सुभकर्म, औ उपासनाके अनुष्ठानतैं जिनके मल औ विछेपदोष नास हुवे हैं, ऐसैं ज्ञानयोग्य अधिकारी हैं; तिनकी ग्रंथमैं प्रवृत्तिवनै है.

और जो ऐसैं पूर्व कह्या " सर्वकूं विषयसुखमैं अलंबुद्धि है, नित्यसुखकूं कोई चाहै नहीं. " सो वनै नहीं. काहेतैं, च्यारिभकारके पुरुष हैं:— पामर, विषयी, जिज्ञासु, मुक्त. इसलोकके निषिद्ध औ विहितभोगनविषै आसक्त जो सास्त्रसंस्काररहित पुरुष, सो पामर कहिये है. सास्त्रके अनुसार, विषयनकूं भोगता हुवा, परलोकके अथवा इसलोकके, भोगनके निमित्त जो कर्म करै, सो विषयी कहिये है.

औ ऐसा पुरुष जिज्ञासु कहिये है:—जा पुरुषकूं उत्तमसंस्कारतैं सतसास्त्रका श्रवन होवै, ता उत्तमकूं ऐसा विवेक होवै हैं:—विषयसुख अनित्य हैं, जितनाकाल विषयसुख होवै है, तव वी कोई दुःख अवस्य रहै है. औ परिनाममैं विनासी सुख, दुःखका हेतु है, औ वर्तमानकालमैं वी नासके भयतैं दुःखका हेतु है. इसरीतिसैं विषयसुख दुःखतैं ग्रस्या हुवा है; यातैं दुःखरूप है. औ दुःखकी निवृत्ति लौकिकउपायतैं होवै नहीं. काहेतैं, जो उपाय करै हैं, तिनके वी सारेदुःख निवृत्त होवैं नहीं. औ निवृत्त हुवे वी फेरि होवैं हैं. औ जितनैकाल सरीर है, तवपर्यंत दुःखकी निवृत्ति संभवै वी

नहीं. काहेतैं, जो सरीर हैं. सो सारे पुन्य औ पापसैं होवै हैं. मनुष्यसरीर तौ मिश्रितकर्मका फल प्रसिद्ध है, औ देवसरीर वी मिश्रित कर्मकाही फल है. जो केवलपुन्यका फल देवसरीर होवै, तौ अपनैसैं अधिक अंन्यदेवकी विभूति देखिके जो देवनकूं ताप होवै है, सो नहीं हुवा चाहिये. सर्वदेवनमैं प्रधान जो इंद्र, ताकूं वी अनेक दैत्यदानवके भयजन्य दुःख सास्त्रमैं कह्या है. जो देवसरीर केवलपुन्यकाहि फल होवै, तौ देवनकूं दुःख नहीं हुवा चाहिये. यातैं देवसरीर वी पुन्य-पाप दोनोंका फल है. औ जो श्रुतिमैं कह्या है:— "देवता पापरहित हैं," ताका यह अभिप्राय है:—कर्मका अधिकार केवल मनुष्यसरीरमैं है, औरमैं नहीं. यातैं देवसरीरमैं किया जो सुभ अथवा असुभ, तिनका फल देवनकूं होवै नहीं. औ देवसरीरमैं पूर्वसरीरमैं किया जो सुभ औ असुभ, तिनका फल तौ देवसरीरमैं वी होवै है. इसरीतिसैं देवसरीर मिश्रितकर्मका फल है.

औ तिर्यक् पसु पछीका सरीर वी मिश्रितकर्मका फल है, काहेतैं, जो तिनकूं प्रसिद्ध दुःख है, सो तौ पापका फल है, औ मैथुनादिकनका सुख है, सो पुन्यका फल है. उदरसैं जो गमन करै, सो तिर्यक् कहिये हैं. पछसैं गमन करै, सो पछी कहिये है. च्यारीपादसैं गमन करै, सो पसु कहिये है. कहूं पसुपछी वी तिर्यक्‌ही कहिये है. इसरीतिसैं सर्वसरीर पुन्य औ पापसैं रचित हैं. कोई सरीर तौ न्यूनपाप औ अधिकपुन्यतैं रचित हैं, जैसे देवसरीर हैं. अपनैअपनै जो पुन्य.

हैं, तिनहींतें सर्वदेवनविषै पाप न्यून है. यातें न्यूनपाप अधिकपुन्यतें रचित देवसरीर कहिये हैं. या अभिप्रायतेंही सास्त्रमैं केवलपुन्यका फल देवसरीर कह्या है; यातें विरोध नहीं. जैसें बहुतब्राह्मनतें ब्राह्मनग्राम कहिये है; तैसें अधिकपुन्यका फल होनेतें देवसरीर केवलपुन्यका फल कहिये हैं. परंतु केवलपुन्यका फल नहीं.

तिर्यक् पसु पछीका सरीर अधिकपाप न्यूनपुन्यसैं रचित हैं. जो उत्तममनुष्य हैं, तिनकी देवनके समान रीति है. औ नीचनकी सर्पादिकनके समान है. इसरीतिसैं सर्वसरीर पुन्यपापरचित है. औ पापका फल दुःख है; यातें सरीर रहै तबपर्यंत दुःखकी निवृत्ति होवै नहीं. सो सरीर, धर्म औ अधर्मका फल हैं. तिनकी निवृत्तिविना सरीरकी निवृत्ति होवै नहीं. काहेतें, वर्त्तमानसरीर दूरि हुयेसैं बी पुन्यपापतें औरसरीर होवैगा. यातें पुन्यपापकी निवृत्तिविना सरीरकी निवृत्ति होवै नहीं. सो पुन्यपाप रागद्वेषके नासविना दूरि होवै नहीं; काहेतें वर्तमानपुन्यपापकी भोगसैं निवृत्ति हुवेसैं बी रागद्वेषतें औरपुन्यपाप होवैंगे. यातें रागद्वेषकी निवृत्तिविना पुन्यपाप दूरि होवै नहीं. सो रागद्वेष अनुकूलज्ञान औ प्रतिकूलज्ञानसैं होवै हैं. जाविषै अनुकूलज्ञान होवै, ताविषै राग होवै है. औ जाविषै प्रतिकूलज्ञान होवै, ताविषै द्वेष होवै है. यातें अनुकूलज्ञान औ प्रतिकूलज्ञानकी निवृत्तिविना रागद्वेषकी निवृत्ति होवै नहीं. सो अनुकूलज्ञान औ प्रतिकूलज्ञान भेदज्ञानसैं होवै है. काहेतें

वस्तुकूं अपनै स्वरूपतें भिन्न जानै, ताकेविषै अनुकूलज्ञान अथवा प्रतिकूलज्ञान होवै है. अपनै स्वरूपमैं अनुकूलज्ञान औ प्रतिकूलज्ञान होवै नहीं. सुखके साधनका नाम अनुकूल है, औ दुःखके साधनका नाम प्रतिकूल है. अपना स्वरूप सुखका अथवा दुःखका साधन नहीं. यद्यपि सुखरूप है तथापि सुखका साधन नहीं. यातैं स्वरूपसैं भिन्न जो वस्तु जान्या है, ताविषै अनुकूलज्ञान औ प्रतिकूलज्ञान होवैहै. इसरीतिसैं पदार्थनविषै अपनैसैं जो भेदज्ञान, सो अनुकूलज्ञान औ प्रतिकूलज्ञानका हेतु है. ता भेदज्ञानकी निवृत्ति विना अनुकूलज्ञान प्रतिकूलज्ञानकी निवृत्ति होवै नहीं. सो भेदज्ञान अविद्याजन्य है. काहेतें, संपूर्णप्रपंच औ ताका ज्ञान स्वरूपके अज्ञानकालमैं हैं; यह संपूर्णवेद अरु सास्त्रका ढंढेरा है. इसरीतिसैं संपूर्णदुःखका हेतु स्वरूपका अज्ञान है, सो स्वरूपका अज्ञान, स्वरूपज्ञानविना दूरि होवै नहीं. काहेतें, जा वस्तुका अज्ञान होवै, सो ताके ज्ञानसैं दूरि होवै है, जैसे रज्जुका अज्ञान, रज्जुके ज्ञानसैं दूरि होवै है; औरसैं नहीं. यातैं स्वरूपका ज्ञानही अज्ञानकी निवृत्तिद्वारा दुःखकी निवृत्तिका हेतु है. औ स्वरूपज्ञानसैं ब्रह्मकी प्राप्ति होवै है. सो ब्रह्म नित्य है, औ आनंदस्वरूप है, दुःखसंबंधसैं रहित है. यातैं स्वरूपज्ञानसैं नित्य औ दुःखके संबंधसैं रहित, जो ब्रह्मस्वरूप आनंद, ताकी प्राप्ति बी होवै है. इसरीतिसैं दुःखकी निवृत्ति औ परमानंदकी प्राप्तिका हेतु स्वरूपज्ञान है. यातैं स्वरूप जाननेकूं योग्य है. ऐसा जाके विवेक

होवै, सो जिज्ञासु कहिये है. स्थूल सूछम कारनसरीरतें भिन्न जो अपना स्वरूप, ताकां ब्रह्मरूप करिके अपरोछज्ञान जाकूं होवै ; सो मुक्त कहिये है.

इसरीतिसैं च्यारिप्रकारके पुरुष हैं. तिनविषै पामर औ विषयीकूं तौ यद्यपि विषयसुखमैंहि अलंबुद्धि है, औ किसी विषयीकूं परमसुखकी इच्छा बी होवै, तब बी ताके जो उपाय नहीं हैं, तिनमैं उपायबुद्धि करिके प्रवृत्त होवै है. काहेतें, उपायका ज्ञान सत्संग औ सत्सास्त्रके श्रवनतें होवै है ; सो ताके है नहीं. यातैं पामर औ विषयीकी सुखप्राप्तिके निमित्त ग्रंथमैं प्रवृत्ति होवै नहीं. दुःखकी निवृत्तिके निमित्त बी दोनो अन्यउपायनमैं प्रवृत्त होवै है, ताके निमित्त बी ग्रंथमैं प्रवृत्ति होवै नहीं. यातैं विषयी औ पामरकी ग्रंथमैं प्रवृत्ति होवै नहीं. औ मुक्तकी प्रवृत्ति बी होवै नहीं. काहेतैं, ज्ञानवान मुक्त कहिये है. सो ज्ञानी कृतकृत्य है. ताकूं कछु कर्तव्य नहीं, यह वार्त्ता आगे प्रतिपादन करैंगे. औ लीलाकरिके मुक्त प्रवृत्त होवै, तौ बी मुक्तकूं ग्रंथमैं प्रवृत्तिसैं कोई प्रयोजन सिद्ध होवै नहीं. यातैं मुक्तके निमित्त बी ग्रंथ नहीं. तथापि जिज्ञासु जो पुरुषहै, ताकूं विषयसुखमैं अलंबुद्धि होवै नहीं. किंतु परमसुखकी ताकूं इच्छा है, औ दुःखकी अत्यंतकरिके निवृत्तिकी इच्छा है, सो परमसुखकी प्राप्ति औ दुःखकी अत्यंतनिवृत्ति, ज्ञानसैं बिना होवै नहीं, ऐसा जाकूं सत्संगसैं विवेक है ; ताकी ग्रंथमैं प्रवृत्ति बनै है. इसरीतिसैं मोछकी इच्छाधान अधिकारी बनै है.

## दोहा.

साछी ब्रह्म स्वरूप इक, नहीं भेदको गंध,
रागद्वेष मतिके धरम, तामैं मानत अंध. १२

टीकाः—पूर्व कह्या जो " जीव रागादिक क्लेससहित है; औ ब्रह्म क्लेसरहित है. यातैं जीवब्रह्मकी एकता ग्रंथका विषय बनै नहीं. " यह वार्ता यद्यपि सत्य है, तथापि रागद्वेषरहित जो साछी है, ताकी ब्रह्मसैं एकता बनै है. और जो पूर्व कह्या " कर्त्ताभोक्तासैं भिन्न साछी वंध्यापुत्रके समान असत है " सो बनै नहीं. काहेतैं, कर्त्ताभोक्ता जो संसारी, ताके विसेषभागका नाम साछी है. जो साछीका निषेध करैं, तौ संसारीके विसेषभागका निषेध होनेतैं, कर्त्ताभोक्ता जो संसारी, ताकाहि निषेध होवैगा. एकही चैतन्यकेविषै साछीभावकी अंतःकरन उपाधि है. औ कर्त्ताभोक्तापनैका विसेषन है. विसेषनसहित विसिष्ट कहिये है. उपाधिवाला उपहित कहिये है. जो वस्तु जितनै देसमैं आप होवै, उसदेसमैं स्थित वस्तुकूं जनावै, औ आप पृथक् रहै, सो उपाधि कहिये है. जैसैं नैयायिकमतमैं कर्नगोलकवृत्ति आकास श्रोत्र कहिये है. सो कर्नगोलक श्रोत्रकी उपाधि है. काहेतैं सो कर्नगोलक जितनै देसमैं आप है; उतनै देसमैं स्थित आकासकूं श्रोत्ररूपकरिके जनावै है; औ आप पृथक् रहै है. यातैं कर्नगोलक श्रोत्रकी उपाधि है तैसैं अंतःकरन बी जितनै देसमैं आप है, उतनै देससैं स्थित चेतनकूं साछी संज्ञा

कस्कि जनावै है ; आप पृथक् रहै है. यातैं अंतःकरन साछीकी उपाधि है. यातैं यह अर्थ सिद्ध हुवांः—अंतःकरन विषै वृत्ति जो चेतनमात्र सो साछी कहिये है.

अपनैसहित वस्तुकूं जो जनावै, सो विसेषन कहिये है. जैसै " कुंडलवाला पुरुष आया है. " या स्थानमैं पुरुषका कुंडल विसेषन है. काहेतैं. अपनैसहित पुरुषका आगमन कुंडल जनावै है, यातैं विसेषन है. " नीलरूपवान घटकूं मैं देखूं हूं. " या स्थानमैं बी नीलरूप घटका विसेषन है. तैसैं अंतःकरन बी कर्त्ताभोक्ता जो जीवचेतन, ताका विसेषन है. काहेतैं, अंतःकरनसहित चेतनकूं कर्त्ताभोक्तारूपकरिके अंतःकरन जनावै है. यातैं संसारीका अंतःकरन विसेषन है, यातैं यह सिद्ध हुवाः—अंतःकरनविषै वृत्ति चेतन औ अंतःकरन, संसारी कहिये है. या अर्थकूं विस्तारसैं आगे कहैंगे.

रागद्वेपादिक क्लेस संसारीविषै हैं, औ साछीविषै नहीं. संसारीका बी जो विसेषन अंतःकरन है, ताकेविषै है, औ विसेष्य जो चैतन्य, ताकेविषै नहीं. काहेतैं, संसारीविषै विसेष्य जो चैतन्यभाग, ताका साछीसैं भेद नहीं. काहेतैं, एकही चैतन्य अंतःकरनसहित संसारी है ; औ अंतःकरनभाग त्यागिके साछी कहिये है. यातैं साछीका औ संसारीके विसेष्यभागका भेदनहीं. जो विसेष्यभागमैं क्लेस अंगीकार करैं, तब साछीमैं बी अंगीकार करनैं होवैंगे. औ "साछी सर्वक्लेसरहित है ; यह वेदका सिद्धांत है. यातैं संसारीके विसेष्यभागमैं क्लेस नहीं, किंतु विसेषनमात्र अंतःकरनमैं हैं.

इस अभिप्रायतैं दोहेके तृतीयपादमैं रागद्वेस बुद्धिके धर्म कहे ; औ जीवके नहीं कहे. इसरीतिसैं अंतःकरनविसिष्टकी ब्रह्मसैं एकता नहीं बी बनै, परंतु अंतःकरनउपहित जो साछी, ताकी ब्रह्मसैं एकता बनै है.

और जो पूर्व कह्या. "साछी नाना हैं, औ ब्रह्म एक है, यातैं नानासाछीकी एकब्रह्मसैं एकता बनै नहीं; औ जो व्यापक एकब्रह्मतैं साछीका अभेद अंगीकार करोगे, तौ साछी बी सर्वसरीरमैं व्यापक एकही होवैगा. यातैं सर्वसरीरके सुखदुःख भान हुवे चाहिये." सो संका बनै नहीं, काहेतैं, यद्यपि ईश्वरसाछी एक है, औ जीवसाछी नाना हैं, औ परिच्छिन्न हैं, तौ बी व्यापक ब्रह्मसैं भिन्न नहीं. जैसै घटाकास नाना हैं, औ परिच्छिन्न हैं, तौ बी महाकाससैं भिन्न नहीं; किंतु महाकासरूपही घटकास हैं. तैसै नाना जो परिच्छिन्न-साछी, सो बी ब्रह्मरूपही हैं.

और जो पूर्व कह्या, "सुखदुःख अंतःकरनकी वृत्तिके विषय नहीं" सो असंगत है. काहेतें, यद्यपि सुखदुःख साछीभास्य हैं, सो साछी नाना हैं; तथापि जब अंतःकरनका परिनाम सुखरूप वा दुःखरूप होवै, ताही समय अंतःकरनकी ज्ञानरूप वृत्ति सुखदुःखकूं विषय करनैवाली होवै है. ता वृत्तिमैं आरूढ साछी तिनकूं प्रकासै है. इसरीतिसैं ग्रंथकारोंनैं सुखदुःख साछीके विषय कहे हैं. वृत्तिविना केवलसाछीके विषय नहीं. यास्थानमैं यह रहस्य है:— आकासमैं घटाकास नाम औ जलका आनयनरूप जो कार्य प्रतीत

होवै है, सो घटरूप उपाधिकी दृष्टिसैं प्रतीत होवै है; घटरूप उपाधिकी दृष्टिविना घटाकास नाम औ जलका आनयनरूप कार्य प्रतीत होवै नहीं; किंतु आकासमात्रही प्रतीत होवै, यातैं घटाकास महाकासरूप है. तैसे चेतनविषै साछी नाम, औ धर्मसहित अंतःकरनका प्रकासरूप कार्य, अंतःकरनरूप उपाधिकी दृष्टिसैं प्रतीत होवै है. औ अंतःकरनरूप उपाधिकी दृष्टिविना साछी नाम औ धर्मसहित अंतःकरनका प्रकासरूप कार्य प्रतीत होवै नहीं. किंतु चैतन्यमात्र ब्रह्मही प्रतीत होवै; यातैं साछी ब्रह्मरूप है. या अभिप्रायतैं दोहेके प्रथमपादमैं साछी एक कह्या. काहेतैं, उपाधिकी दृष्टिविना साछीमैं नानापना औ परिछिन्नभाव प्रतीत होवै नहीं. सो साछी जीवपदका लछ्य है, यह वार्त्ता आगे कहैंगे. इसरीतिसैं जीवब्रह्मकी एकता ग्रंथता विषय बनै है. १२

# अथ कार्य अध्यास निरूपनं

## कवित्व.

सजातीयज्ञान संसकारतैं अध्यास होत,
सत्यज्ञानजन्य संसकारको न नेम है;
दोषको न हेतुता अध्यासविषै देखियत,
पटविषै हेतु जैसै तुरी तंतु वेम है;
आतमा द्विजाती संख पीत सीता कटु भासै,
सीपमैं विरागी रूप देखै विनप्रेम है;

नभ नील रूपवान भासत कटाह तंबू,
जिनके न कोउ पित्त प्रभृति अछेम है. १३

टीकाः— पूर्व कह्या जो "बंध सत्य है, ताकी ज्ञानसैं निवृत्ति होवै नहीं." औ मिथ्यावस्तुकीज्ञानसैं निवृत्ति होवै है. आत्मामैं मिथ्याबंधकी सामग्री है नहीं; यातैं बंध सत्य है. ताकी ज्ञानसैं निवृत्ति होवै नहीं." सो वार्त्ता बनै नहीं. काहेतैं बंध मिथ्या है, ताकी ज्ञानसैं निवृत्ति बनै है.

औ पूर्व कह्या जो "सत्यवस्तुका ज्ञान. संस्कारद्वारा अध्यासका हेतु है. जैसै सत्यसर्पका ज्ञान संस्कारद्वारा सर्पअध्यासका हेतु है; तैसै सत्यबंध होवै तौ सत्यबंधका ज्ञान होवै. सो सिद्धांतमैं अनात्मवस्तु कोई सत्य है नहीं. यातैं सत्यवस्तुका ज्ञान, जो संस्कारद्वारा अध्यासकी सामग्री, ताका अभाव होनेतैं बंध अध्यास नहीं, किंतु सत्य है." सो संका बनै नहीं. काहेतैं, अध्यासविषै संस्कारद्वारा सत्यवस्तुका ज्ञान हेतु नहीं किंतु वस्तुका ज्ञान हेतु है. सो वस्तु सत्य होवै अथवा मिथ्या होवै. जो सत्यवस्तुका ज्ञानही अध्यासविषै हेतु होवै, तौ जा पुरुषनै सत्यलुहारेका वृछ नहीं देख्या होवै, औ बाजीगरका बनाया मिथ्या लुहारेका वृछ बहुतवार देख्या होवै; औ बाजीगरसैं ऐसा सुन्या होवै; जो "यह लुहारेका वृछ है." औ खजूरका वृछ कदे देख्या सुन्या होवै नहीं, ताकूं खजूरका वृछ देखिके लुहारेका अध्यास होवै है; सो नहीं हुवा चाहिये. काहेतैं, सत्यलुहारेका ताकूं ज्ञान है नहीं. औ हमारी रीतिसैं तौ बाजीगरका देख्या जो मिथ्या-

छुहारा ताका ज्ञान है, यातैं अध्यास बनै है. यातैं सजातीयवस्तुके ज्ञानजन्य संस्कारही अध्यासके हेतु हैं. सो संस्कारका जनक ज्ञान, औ ताका विषय मिथ्या होवै, अथवा सत्य होवै, संस्कारद्वारा ज्ञान हेतु है. औ "ज्ञानजन्य संस्कार हेतु है;" या कहनैमें अर्थका भेद नहीं, एकही अर्थ है, काहेतैं संस्कारद्वारा ज्ञान हेतु है. याका अर्थ यह है:—ज्ञान संस्कारका हेतु है औ संस्कार अध्यासका हेतु है, यातैं संस्कारद्वारा ज्ञानकूं हेतुता कहनैतैं वी ज्ञानजन्य संस्कारकूंही अध्यासविषै हेतुता सिद्ध होवै है.

औ केवल वस्तुके ज्ञानकूंही अध्यासविषै हेतु कहैं तौ बनैं नहीं. काहेतैं, यह नियम है:—"जो हेतु होवै सो कार्यसैं अव्यवहितपूर्वकालमैं होवै है." जैसै घटका हेतु दंड है, सो घटसैं अव्यवहितपूर्वकालमैं होवै है. तैसै जो अध्यासका हेतु ज्ञान अंगीकार करैं; सो वी अध्यासतैं अव्यवहितपूर्वकालमैं चाहिये. सो बनै नहीं. काहेतैं, जा पुरुषकूं सर्पका ज्ञान होवै, ताकूं ज्ञानसैं महिनै पीछे वी रज्जुविषै सर्पका अध्यास होवै है, सो नहीं हुवा चाहियें. काहेतैं, जो रज्जुमैं सर्पअध्यासका हेतु सर्पका ज्ञान है, ताका नास होय गया, यातैं अव्यवहितपूर्वकालमैं है नहीं, यद्यपि पूर्वकालमैं तौ है, तथापि अव्यवहितपूर्वकालमैं है नहीं, अंतरायरहितका नाम अव्यवहित है, औ अंतरायसहितका नाम व्यवहित है. औ जो ऐसै कहैं:—कार्यतैं पूर्वकालमैं हेतु चाहिये, व्यवहितपूर्वकालमैं होवै; अथवा अव्यवहितपूर्वकालमैं होवै. औ

"कार्यतें अव्यवहितपूर्वकालमैंही हेतु होवै है." ऐसा नियम अंगीकार करैं तौ " विहितकर्म स्वर्गप्राप्तिका हेतु है, औ निषिद्धकर्म नरकप्राप्तिका हेतु है " यह शास्त्रकी वार्त्ता अप्रमान होय जावैगी. काहेतें; कायिक, वाचिक, मानसक्रियाका नाम कर्म है. सो क्रिया अनुष्ठानकालसैं अनंतरही नास होय जावै है. औ स्वर्गनरक कालांतरमैं होवै हैं. यातें स्वर्गनरकप्राप्तिके अव्यवहितपूर्वकालमैं विहितकर्म औ निषिद्धकर्म हैं नहीं. जैसै व्यवहितपूर्वकालके सुभकर्म, औ असुभकर्म, स्वर्गप्राप्ति औ नरकप्राप्तिके हेतु हैं. तैसै "व्यवहितपूर्वकालमैं जो सर्पका ज्ञान; सो बी रज्जुमैं सर्पअध्यासका हेतु है," सो वार्त्ता बनै नहीं. काहेतें; जैसै नष्टज्ञान औ नष्टकर्मतें अध्यास औ स्वर्गनरककी प्राप्ति अंगीकार करी; तैसै मृत कुलाल औ नष्टदंडसैं बी घट हुवा चाहिये. काहेतें, जैसै रज्जुमैं सर्पआध्यासतें व्यवहितपूर्वकालमैं सर्पका ज्ञान है. औ स्वर्गनरककी प्राप्तितें व्यवहितपूर्वकालमैं सुभअसुभकर्म हैं;तैसै घटतें व्यवहितपूर्वकालमैं नष्टदंड औ मृत कुलालबी हैं, तिनतें बी घट हुवा चाहिये. सो होवै नहीं. यातें:—

व्यवहितपूर्वकालमैं जो वस्तु होवै, सो हेतु नहीं. किंतु अव्यवहितपूर्वकालमैं जो वस्तु होवै, सोई हेतु होवै है. औ सुभअसुभकर्म बी कालांतरभावी. जो स्वर्गनरककी प्राप्ति. ताके हेतु नहीं: किंतु सुभकर्म तौ अपनेतें अव्यवहितउत्तरकालमैं धर्मकी उत्पत्ति करै है. असुभकर्म अधर्मकी उत्पत्ति करै है. सो धर्मअधर्म अंतःकरनविषै रहै हैं, तिनतें कालां-

तरमैं स्वर्ग औ नरककी प्राप्ति होवै है. तासैं अनंतर धर्मअधर्मका नास होवैं है, इस अभिप्रायसैंही सास्त्रमैं सुभकर्म अरु असुभकर्म अपूर्वद्वारा फलके हेतु कहे हैं; साछात नहीं. अपूर्व नाम धर्मअधर्मका है; औ अदृष्ट बी तिनकूं कहै हैं, औ पुन्यपाप बी तिनकूंही कहै हैं. औ कहूं धर्मअधर्मकी जनक जो सुभअसुभक्रिया है, ताकूं बी धर्मअधर्म कहै हैं. जैसै कोई सुभक्रिया करता होवै, ताकूं लोक ऐसा कहै हैः—“ यह धर्म करै है. ” औ असुभक्रिया करनैवालैकूं ऐसा कहै हैः—“ यह अधर्म करै है. ” सो सुभअसुभ क्रिया का नाम धर्मअधर्म नहीं; किंतु सुभअसुभक्रिया धर्मअधर्म की जनक है. यातैं क्रियाकूं धर्मअधर्म कहै हैं, जैसै आयु का वर्धक जो घृत है, ताकूं सास्त्रमैं आयु कहै हैं. इसरीतिसैं अव्यवहितपूर्वकालमैं हेतु होवै है.

औ रज्जुमैं सर्पअध्यासतैं अव्यवहितपूर्वकालमैं सर्पका ज्ञान है नहीं. यातैं सर्पका ज्ञान रज्जुमैं सर्पअध्यासका हेतु नहीं, किंतु सर्पज्ञानजन्य संस्कारही रज्जुमैं सर्पअध्यासका हेतु है; तैसै सीपीमैं रूपअध्यासका हेतु रूपज्ञानजन्य संस्कार है. इसरीतिसैं सारेसंस्कारही अध्यासके हेतु हैं, औ वस्तूका ज्ञान संस्कारका हेतु है. जैसैं सुभअसुभकर्मजन्य धर्मअधर्म अंतःकरनमैं रहै हैं; तैसै वस्तुके ज्ञानजन्य संस्कार बी अंतःकरनमैं रहै हैं. जा पुरुषकूं पूर्व सर्पका ज्ञान नहीं हुवा ताके बी औरवस्तुके ज्ञानजन्य संस्कार तौ हैं; परंतु रज्जुमैं सर्पका अध्यास होवै नहीं. जा वस्तुका अध्यास होवै,

ताके सजातीयवस्तुके ज्ञानका संस्कार अध्यासका हेतु है, विजातीयके ज्ञानके संस्कार हेतु नहीं. सर्पके सजातीय सर्प होवै है; और नहीं. सर्पका जाकूं पूर्व ज्ञान नहीं, अन्यवस्तुका ज्ञान है, ताकूं सजातीयवस्तुके ज्ञानजन्य संस्कार नहीं, यातें रज्जुमें सर्पका अध्यास होवै नहीं. सूछमअवस्थाका नाम संस्कार है. इसरीतिसें अध्यासतें पूर्व जो सजातीयवस्तुका ज्ञान ताके संस्कार अध्यासके हेतु हैं. "औ सत्यवस्तुके ज्ञानके संस्कारही अध्यासके हेतु हैं; मिथ्यावस्तुके ज्ञानके नहीं" यह नियम नहीं. यह वार्त्ता लुहारेके दृष्टांतसें प्रतिपादन करी है. यातें मिथ्या वस्तुके ज्ञानजन्य संस्कारची अध्यासके हेतु हैं.

सो बंधके अध्यासविषै बी बनै है. काहेतें, जो अहंकारसें आदिलेके अनात्मवस्तु, औ ताका ज्ञान बंध कहिये है. "सो अनात्मवस्तु रज्जुके सर्पकी न्याई जब प्रतीत होवै तबही है, औ प्रतीत नहीं होवै तब नहीं." यह हमारा वेदसंमत सिद्धांत है. इस कारनतेंही सुषुप्तिविषै सर्वप्रपंचका अभाव प्रतिपादन किया है. सुषुप्तिमें कोई पदार्थ प्रतीत होवै नहीं. यातें सर्वप्रपंचका सुषुप्तिमें लय होवै है. इसका नाम सास्त्रमें दृष्टिसृष्टिवाद कहै हैं. या अर्थकूं आगे प्रतिपादन करैंगे. इसरीतिसें अनंतअहंकारादिक औ तिनके ज्ञान उत्पन्न होवैं हैं; औ लय होवै हैं. अहंकारादिक औ तिनके ज्ञानकी साथही उत्पत्तिलय होवै हैं. जब अहंकारादिकनकी प्रतीतिकी उत्पत्ति होवै, तब अहंकारादिकनकी उत्पत्ति होवै है. औ प्रतीतिका लय होवै, तब अहंकारादिकन-

का लय होवै है. अहंकारादिक औ तिनके ज्ञानका नाम अ-ध्यास है. यह वार्त्ता अनिर्वचनीयख्यातिके प्रतीपादनमैं कहैंगे. यद्यपि अहंकारसाछीभास्य है, यह वार्त्ता विषयंप्रतिपादनमैं कही है, यातैं अहंकारकी प्रतीति साछीरूप है, ताकी उत्पत्ति औ लय बनै नहीं, तथापि अहंकारका बी वृत्तिसैंही साछी प्रकास करै है; साछात नहीं ताव्रत्तिकी उत्पत्तिलय होवै है. यातैं अहंकारकी प्रतीतिकी उत्पत्तिलय कहिये है. इसरीतिसैं उत्तरउत्तर अहंकारादिक औ तिनके ज्ञानकी जो उत्पत्ति, ताके हेतु पूर्वपूर्व मिथ्या अहंकारादिकनके ज्ञानजन्य संस्कार बनै हैं.

और जो ऐसै कहैं:—"उत्तरउत्तर अहंकारादिकनके अध्यासविषै तौ यद्यपि पूर्वपूर्व अध्यासके संस्कार हेतु बनै हैं; तथापि प्रथम उत्पन्न जो अहंकार, औ ताका ज्ञान, ताके हेतु संस्कार बनै नहीं. काहेतैं, जो ताके पूर्व और अहंकार उत्पन्न हुवा होवै, तौ ताके ज्ञानके संस्कार बी होवैं सो प्रथमअहंकारसैं पूर्व औरअहंकार हुवा नहीं. तैसै "सर्ववस्तुके प्रथमअध्यासके हेतु संस्कार बनै नहीं" यह संका बी सिद्धांतके अज्ञानसैं होवै है. काहेतैं:—यह वेदांतका सिद्धांत है:—एक ब्रह्म, औ ईश्वर, जीव, अविद्या, औ अविद्याका चैतन्यसैं संबंध, औ अनादिवस्तुका भेद, यह षट्वस्तु स्वरूपतैं अनादि हैं.. जा वस्तुकी उत्पत्ति होवै नहीं, सो वस्तु स्वरूपसैं अनादि कहिये. है इनषट्की उत्पत्ति होवै नहीं, यातैं स्वरूपसैं अनादि हैं औ अहंकारादिकनकी तौ श्रुतिमैं उ-

त्पत्ति कही है; यातैं स्वरूपसैं अनादि यद्यपि अहंकारादिक नहीं, तथापि प्रवाहरूपतैं सर्ववस्तु अनादि हैं. सर्ववस्तुका प्रवाह दूरि होवै नहीं. अनादिकालमैं ऐसा समय कोई पूर्व हुवा नहीं, जा समय कोई घट होवै नहीं. यातैं घटका प्रवाह अनादि है. इसरीतिसैं सर्ववस्तूका प्रवाह अनादि है. प्रलयकालमैं बी सुषुप्तिकी न्याई सर्व वस्तु संस्काररूप होयके रहे हैं. यातैं प्रपंचका प्रवाह अनादि होनैतैं, प्रपंच अनादि कहिये है. ऐसा जाकूं ज्ञान नहीं है, ताकूं यह संका होवै है, " जो प्रथमअध्यासके हेतु संस्कार बनै नहीं. " औ सिद्धांतमैं किसी अहंकारादिक वस्तुका अध्यास सर्वसैं प्रथम है नहीं, किंतु अपनेंसैं पूर्वपूर्वअध्यासतैं संपूर्न उत्तर हैं; यातैं संका बनै नहीं. इसरीतिसैं सजातीयके पूर्व ज्ञानजन्य संस्कारसैं अहंकारादिक बंधका अध्यास बनै है; यह प्रथमपादका अर्थ है.

और जो पूर्व कह्या " तीनप्रकारका दोष अध्यासका हेतु है. औ बंधके अध्यासमैं कोई बी दोष बनै नहीं. यातैं बंध सत्य है, " सो संका बनै नहीं. काहेतैं, जो दोषतैं विना अध्यास होवै नहीं; तौ अध्यासका हेतु दोष होवै; जैसे तुरी तंतु वेम पटके हेतु हैं. तुरी तंतु वेम होवैं तौ पट होवै, औ नहीं होवैं तौ पट होवै नहीं, तैसे दोष अध्यासके हेतु नहीं. काहेतैं, सादृश्यदोषविना आत्मामैं जातिका अध्यास होवै है. ब्राह्मनत्वसैं आदिलेके जो जाति हैं सो स्थूलसरीरका धर्म है, आत्माका औ सूछ्मसरीरका धर्म नहीं. काहेतैं,

औरसरीरकूं प्राप्त होवै, तब आत्मा औ सूछमसरीर तौ जो पूर्व सरीरमैं है, सोई रहै है औ जाति औरबी होवै है. यहबी नियम नहीं:—"जो पूर्वसरीरमैं जाति है, सोई उत्तरसरीरमैं होवै है." आत्माका अथवा सूछमसरीरका धर्म जाति होवै, तौ उत्तरसरीरविषै औरजाति नहीं हुई चाहिये. यातैं आत्माका औ सूछमसरीरका धर्म जाति नहीं; किंतु स्थूलसरीरका धर्म है. औ "मैं द्विजाति हूं" इसरीतिसैं ब्राह्मणत्व, छत्रियत्व, वैस्यत्वजातिका आत्मामैं भान होवै है, यातैं आत्मामैं जातिका अध्यास है. जैसैं रज्जुमैं सर्प परमार्थसैं नहीं है, औ भान होवै है; यातैं रज्जुमैं सर्पका अध्यास है. तैसै आत्मामैं जाति नहीं है, औ भान होवै है; यातैं आत्मामैं जातिका अध्यास है. औ आत्माके साथ जातिका सादृश्य नहीं है काहेतैं, आत्मा व्यापक है, औ जाति परिच्छिन्न है. आत्मा प्रत्यक् है, औ जाति पराक है. आत्मा विषयी है, औ जाति विषय है. इसरीतिसैं आत्मामैं विरोधीजातिका वी अध्यास होवै है. द्विजाति नाम त्रिवर्नका है. जैसै आत्माविषै सादृस्यतैं विना जातिका अध्यास होवै है, तैसैं सादृस्यविना अहंकारादिक बंधका अध्यास वी आत्मामैं बनै है. सादृश्यदोष अध्यासका हेतु नहीं. जो सादृस्यदोष अध्यासका हेतु होवै, तौ आत्मामैं जातिका अध्यास नहीं हुवा चाहिये, औ संखमैं पीतताका अध्यास नहीं हुवा चाहिये, औ मिसरीमैं कटुताका अध्यास नहीं हुवा चाहिये. काहेतैं. स्वेत औ पीतका विरोध है; सादृस्य नहीं. तैसै मधुर औ

कटुका विरोध है, सादृस्य नहीं. यातैं अधिष्ठानमैं मिथ्या-वस्तुका सादृस्यदोष अध्यासका हेतु नहीं.

तैसें प्रमाताका, लोभ भयादिक दोष बी अध्यासका हेतु नहीं. काहेतैं, जो लोभरहित वैराग्यवानपुरुष है,ताकूं बी सीपीमैं रूपेका अध्यास होवै है; सो नहीं हुवा चाहिये. यातैं प्रमाताका दोष बी अध्यासका हेतु नहीं औ प्रमानका दोष बी अध्यासका हेतु नहीं. काहेतैं, सर्वपुषरुनकूं रूपरहित जो आकास है, सो नीलरूपवाला प्रतीत होवै है, औ कटाहके तथा तंबूके आकार प्रतीत होवै है. यातैं सर्वकूं आकासमैं नीलरूपका, कटाहका, तथा तंबूका अध्यास है. औ सर्वके नेत्ररूपप्रमानमैं दोष कहना बनै नहीं. यातैं प्रमानका दोष अध्यासका हेतु नहीं. आकासमैं नीलादिकनका जो अध्यास है, ताकेविषे एक प्रमानदोषकाही अभाव नहीं है; किंतु सर्वदोषनका अभाव है; सादृश्य बी नहीं, औ प्रमाताका दोष बी नहीं, जैसें सर्वदोषके अभावतैं बी आकासमैं नीलादिकनका अध्यास होवै है, तैसें आत्माविषै बी बंधका अध्यास दोषविनाही बनै है. यातैं " दोषके अभावतैं बंध अध्यासरूप नहीं " यह संका बनै नहीं. काहेतैं सर्वदोषका अभाव बी है तौ बी आकासमैं नीलादिकनका अध्यास सर्वपुरुषनकूं होवै है, यातैं दोष अध्यासका हेतु नहीं. कवित्वके चतुर्थपादका यह अर्थ है:— जिनके कोई पित्त प्रभृति कहिये पित्तसैं आदिलेके, अछेम कहिये, दोष नहीं है, तिनकूं बी आकाश नीलरूपवान, औ कटाहाकार, औ तं-

बूके आकार भासै है. यातैं प्रमानदोष अध्यासका हेतु नहीं. छेम नाम कुशलका है. ताका विरोधी जो प्रमानदोष सो अछेम कहिये है. ज्ञानका साधन जो इंद्रिय सो प्रमान कहिये है. इसरीतिसैं दोष अध्यासके हेतु नहीं. यातैं बंधके अध्यासमैं दोषकी अपेछा नहीं. औ संछेपसारीरकमैं बंधके अध्याससमय दोष बी प्रतिपादन किये हैं. विस्तारके भयसैं हमनै नहीं लिखे. औ अध्यासके हेतु जो दोष होवैं, तौ दोष निरूपन करते. सो दोष अध्यासके हेतु नहीं हैं, यातैं बी दोषका निरूपन नहीं किया. १३

## अथ कारन अध्यास निरूपनं.

### दोहा.

चित् सामान्य प्रकासतैं, नहीं नसै अज्ञान;
लहै प्रकास सुषुप्तिमैं, चेतनतैं आज्ञान. १४

टीकाः—पूर्व कह्या जो "विसेषरूपसैं अज्ञातवस्तुमैं अध्यास होवै है. औ आत्मा स्वयंप्रकास है, ताकेविषै अज्ञान बनै नहीं. काहेतैं, तमका औ प्रकासका परस्पर विरोध है. यातैं जैसैं अत्यंतप्रकासमैं स्थित रज्जुमैं सर्पका अध्यास होवै नहीं; तैसै स्वयंप्रकास आत्मामैं बंधका अध्यास बनै नहीं." सो संका बी बनै नहीं. काहेतैं, यद्यपि आत्मा प्रकासरूप है; तथापि आत्माका स्वरूपप्रकास, अज्ञानका विरोधी नहीं. जो आत्मस्वरूपप्रकास अज्ञानका विरोधी होवै तौ सुषुप्तिमैं प्रकासरूप आत्माविषै अज्ञान प्रतीत होवै हैं, सो नहीं हुवा

चाहिये. घोरनिद्रासैं जाग्या जो पुरुष है, ताकूं ऐसा ज्ञान होवै हैः– "मैं सुखसैं सोया औ कछु वी नहीं जानता हुवा." या ज्ञानका सुख औ अज्ञान विषय है. सो सुख औ अज्ञानका जो जागृतमैं ज्ञान है, सो प्रत्यछरूप नहीं. काहेतैं, जा ज्ञानका विषय सन्मुख होवै, सो ज्ञान प्रत्यछरूप होवै है. औ जागृतकालमैं सुख औ अज्ञान है नहीं. यातैं जागृतमैं सुख औ अज्ञानका ज्ञान प्रत्यछरूप नहीं; किंतु स्मृतिरूप है. सो स्मृति अज्ञातवस्तुकी होवै नहीं, किंतु ज्ञातवस्तुकी होवै है. यातैं सुषुप्तिमैं सुख औ अज्ञानका ज्ञान है; सो सुषुप्तिका ज्ञान अंतःकरन औ इंद्रियजन्य तौ है नहीं. काहेतैं, सुषुप्तिमैं अंतःकरन औ इंद्रियका अभाव है. यातैं सुषुप्तिमैं. आत्मस्वरूपही ज्ञान है. ज्ञान औ प्रकासका एकंही अर्थ है, इसरीतिसैं सुषुप्तिमैं आत्मा प्रकासरूप है. ता प्रकासरूप आत्मासैं स्वरूपसुख औ अज्ञानकी प्रतीति होवै है. जो आत्मस्वरूपप्रकास, अज्ञानका विरोधी होवै, तौ सुषुप्तिमैं अज्ञानकी प्रतीति नहीं हुई चाहिये. यातैं आत्मा प्रकासरूप तौ है, परंतु आत्माका स्वरूप प्रकास, अज्ञानका विरोधी नहीं. उलटा आत्माका स्वरूप प्रकास, अज्ञानका साधक है. इस अभिप्रायतैंही वेदांतसास्त्रमैं कह्या हैः—"सामान्यचैतन्य अज्ञानका विरोधी नहीं;" किंतु विशेषचैतन्यही अज्ञानका विरोधी है. व्यापक जो चैतन्य है, सो सामान्यचैतन्य कहिये है. औ वृत्तिमैं स्थित जो चैतन्य, सो विसेषचैतन्य कहिये है. जैसैं काष्ठमैं स्थित जो सामा-

न्यअग्नि है, सो अंधकारका विरोधी नहीं; औ मथनसैं प्रगट किया जो अग्नि है, सो वत्तीमैं स्थित होयके अंधकारका विरोधी है. तैसै व्यापकचैतन्य अज्ञानका विरोधी नहीं बी है, परंतु वेदांतके विचारसैं अंतःकरनकी जो ब्रह्माकारवृत्ति हुई है, ताकेविषै स्थित चैतन्य अज्ञानका विरोधी है. इसरीतिसैं केवलचैतन्य अज्ञानका विरोधी नहीं; किंतु वृत्तिसहित चैतन्य अज्ञानका विरोधी है. अथवा चैतन्यसहित वृत्ति अज्ञानकी विरोधी है.

प्रथमपक्षमैं तौ अज्ञानके नासका हेतु चैतन्य है; औ वृत्ति सहायक है. दूसरेपक्षमैं अज्ञानके नासका हेतु वृत्ति है; औ चैतन्य सहायक है. यह अवछेदवादकी रीति है. औ आभासवादमैं तौ सामान्यचैतन्यकी न्याई विसेषचैतन्य बी अज्ञानका विरोधी नहीं, किंतु वृत्तिसहित आभास अथवा आभाससहित वृत्ति अज्ञानका विरोधी है. इसरीतिसैं प्रकासरूप चैतन्य अज्ञानका विरोधी नहीं. यातैं चैतन्यके आश्रित अज्ञान है. ता अज्ञानसैं आवृत जो आत्मा, ताकेविषै बंधका अध्यास बनै है.

और पूर्व कह्या जो "सामान्यरूपतैं ज्ञात, औ विसेषरूपतैं अज्ञातवस्तुमैं अध्यास होवै है. औ आत्मामैं सामान्यविसेषभाव है नहीं. यातैं निर्विसेषआत्मा ज्ञात औ अज्ञात बनै नहीं. ताकेविषै अध्यासका असंभव है." सो वार्ता बी बनै नहीं. काहेतैं, "आत्मा है," यह सर्वकूं प्रतीति होवै है. आत्मा नाम अपने स्वरूपका है. "मैं नहीं हूं" यह किसी-

कूं प्रतीति होवै नहीं. किंतु " मैं हूं " यह प्रतीति सर्वकूं होवै है. यातैं सतरूप करिके आत्मा सर्वकूं भान होवै है. औ "चैतन्य आनंद व्यापक नित्यसुद्ध नित्यमुक्तरूप आत्मा है;" यह सर्वकूं प्रतीति होवै नहीं. यातैं चैतन्य आनंद व्यापक नित्यशुद्ध नित्यमुक्तरूपतैं आत्मा अज्ञात है, औ सतरूप करिके ज्ञात है; यह वार्त्ता अनुभवसिद्ध है. सो अनुभवसिद्धवार्त्ता युक्तिसैं दूरि होवै नहीं. सर्वकूं प्रतीत जो होवै है आत्माका सतरूप, सो तौ सामान्यरूप है. औ केवल ज्ञानीकूं जो प्रतीत होवै चेतनआनंदादिक, सो विसेषरूप है. जो अधिककालमैं अधिकदेसमैं होवै सो सामान्यरूप कहिये है. औ न्यूनदेसमैं न्यूनकालमैं होवै, सो विसेषरूप कहिये है. यद्यपि आत्माका स्वरूपही चेतनआनंदादिक है, यातैं सतकी न्याई चेतन आनंदादिक सर्वत्रव्यापक है. सतकी अपेछातैं चेतनआनंदादिकनकूं, न्यूनदेसमैं औ चेतनआनंदादिकनकी अपेछातैं सतरूपकूं अधिकदेसमैं कहना बनै नहीं. यातैं सतरूप आत्माका सामान्यअंस है, औ चेतनआनंदादिक विसेषअंस है, यह कहना बी बनै नहीं. तथापि सतकी प्रतीति सर्वकूं अविद्याकालमैं बी होवै है, औ " चेतन आनंदरूप आत्मा है " यह प्रतीति सर्वकूं अविद्याकालमैं होवै नहीं, केवल ज्ञानीकूंही होवै है. अविद्याकालमैं चेतन, आनंद, मुक्तता, सुद्धता बी है; परंतु प्रतीति होवै नहीं. यातैं अनहुयेके समान है. इस अभिप्रायतैं चैतन्यआनंदादिक न्यूनकालवृत्ति कहिये है औ सतरूप अधिककालवृत्ति क-

हिये है. इसरीतिसैं सतरूपका औ चेतनआनंदादिकनका सामान्यविसेषभाव नहीं बी है, परंतु अल्पकाल औ अधिककालमैं प्रतीति होनेतैं सामान्यविसेषभावकी न्याई है. या कारनतैं आत्माका सतरूप सामान्यअंस कहिये है औ चेतनआनंदादिक विसेषअंस कहिये है.

औ आत्मा निर्विसेष है, या सिद्धांतकी बी हानी नहीं. जो आत्मामैं सामान्यविसेषभाव अंगीकार करैं, तौ " निर्विसेष आत्मा है " या सिद्धांतकी हानी होवै. सो सामान्यविसेषभाव अंगीकार किया नहीं, किंतु अविद्यासैं सामान्यविसेषकी न्याई प्रतीति होवै है; यातैं सामान्यविसेषभाव कहे हैं. इसरीतिसैं सत्यरूप करिके ज्ञात, औ चेतन, आनंद, नित्यसुद्ध, नित्यमुक्त, ब्रह्मरूप करिके अज्ञात, आत्माविषै बंधका अध्यास बनै है. अध्यासरूप बंधकी ज्ञानसैं निवृत्ति बी बनै है, यातैं ग्रंथका प्रयोजन संभवै है.

और पूर्व कह्या जो " निसिद्धकाम्यकर्मका त्यागकरिके नित्यनैमित्तिकप्रायश्चित्तकर्म करै; यातैं निसिद्धकर्मके अभावतैं नीचलोककूं प्राप्त होवै नहीं; औ काम्यकर्मके अभावतैं उत्तमलोककूं प्राप्त होवै नहीं. औ नित्यनैमित्तिककर्मके नहीं करनेतैं जो पाप होवै, सो तिनके करनैतैं होवै नहीं. औ इसजन्मविषै अथवा अन्यजन्मविषै पूर्व करे जो पाप हैं, तिनका साधारन औ असाधारनप्रायश्चित्तसैं नास होवै है. औ पूर्व करे जो काम्यकर्म हैं, तिनके फलकी इच्छाके अभावतैं मुमुक्षुकूं तिनका फल होवै नहीं. या-

तैं मुमुछुकूं ज्ञानसैं विनाहीं जन्मका अभावरूप मोछ होवै है." सो बनै नहीं. काहेतैं,

नित्यनैमित्तिककर्मका बी स्वर्गरूप फल है, यह वार्त्ता भाष्यकारनै युक्ति औ प्रमानसैं प्रतिपादन करी है. यातैं नित्यनैमित्तिककर्मसैं उत्तमलोककूं प्राप्त होवैगा; जन्मका अभाव बनै नहीं. औ नित्यनैमित्तिककर्मका जो फल अंगीकार नहीं करैं, तौ नित्यनैमित्तिककर्मका बोधक जो वेद है, सो निष्फल होवैगा. काहेतैं, जो नित्यनैमित्तिककर्मके नहीं करनैतैं पाप होवै, तौ ता पापकी अनुत्पत्ति तिनका फल बनै. सो नित्यनैमित्तिककर्मके नहीं करनैतैं पाप होवै नहीं. काहेतैं, जो नित्यनैमित्तिककर्मका नहीं करना सो अभावरूप है, औ पाप भावरूप है. अभावसैं भावकी उत्पत्ति होवै नहीं. यातैं नित्यनैमित्तिककर्मके नहीं करनैतैं पाप होवै है; यह कहना बनै नहीं. जो नित्यनैमित्तिककर्मके नहीं करनैतैं पापकी उत्पत्ति अंगीकार करैं, तौ "अभावतैं भावकी उत्पत्ति होवै नहीं" यह दूसरेअध्यायमैं भगवाननै कह्या है; तासैं विरोध होवैगा. यातैं नित्यनैमित्तिककर्मके अभावतैं भावरूप पापकी उत्पत्ति बनै नहीं. इसरीतीसैं नित्यनैमित्तिककर्मका पापकी अनुत्पत्ति फल नहीं; किंतु नित्यनैमित्तिककर्मसैं विना बी पापकी अनुत्पत्ति सिद्ध है. यातैं नित्यनैमित्तिककर्मका जो स्वर्गरूप फल अंगीकार नहीं करैं, तौ कर्म निष्फल होवैंगे. औ निष्फल जो नित्यनैमित्तिककर्म हैं, तिनका बोधक वेद बी निष्फल होवैगा. यातैं नित्यनैमित्तिक कर्मसैं बी स्वर्गफल होवै है.

औ " जन्मांतरके जो काम्यकर्म हैं, तिनका इच्छाके अभावतैं फल होवै नहीं, सो वार्त्ता वी बनै नहीं. काहेतैं, कर्मरूपी बीजसैं दोअंकुर उत्पन्न होवैं हैं. एक तौ वासना, औ दूसरा अदृष्ट. धर्मअधर्मका नाम अदृष्ट है. सुभकर्मसैं तौ सुभवासना औ धर्मरूप अंकुर होवै है; औ असुभकर्मसैं असुभवासना औ अधर्मरूप अंकुर होवै है. सुभवासनासैं तौ आगे सुभकर्ममें प्रवृत्ति होवै है. औ धर्मसैं सुखका भोग होवै है. इसरीतिसैं असुभवासनासैं असुभकर्ममें प्रवृत्ति होवै है, औ अधर्मसैं दुःखका भोग होवै है. इसरीतिसैं वासनारूप औ अदृष्टरूप अंकूर कर्मरूपी बीजसैं होवै है. तिनविषै " वासनारूप अंकुरका तौ उपायसैं नास होवै है. औ अदृष्टरूप अंकुरका फलकी उत्पत्तिसैं विना किसीप्रकार सैंवा नास होवै नहीं. " यह सास्त्रका निर्नय है. असुभकर्मसैं उत्पन्न हुवा जो असुभवासनारूप अंकुर है, ताका तौ सत्संग आदिक उपायतैं नास होवै है. औ सुभकर्मसैं उत्पन्न जो हुई सुभवासना, ताका कुसंगआदिकनतैं नास होवै है. सास्त्रमैं जितना पुरुषार्थ कह्या है; तासैं प्रवृत्तिकी हेतु जो वासना ताकाही नास होवै है. यातैं पुरुषार्थ वी सफल है. औ भोगका हेतु जो अदृष्ट ताका नास होवै नहीं, यातैं " फल दिये विना कर्मकी निवृत्ति होवै नहीं " यह वार्त्ता जो सास्त्रमैं कही है, तासैं वी विरोध नहीं. इसरीतिसैं अज्ञानीकूं फलभोगविना कर्मकी निवृत्ति बनै नहीं; औ ज्ञानीकूं तौ भोगसैं विना वी कर्मकी निवृत्ति बनै है. काहेतैं, कर्म औ

कर्त्ता तथा फल परमार्थसैं तौ है नहीं; किंतु अविद्यासैं कल्पित है. ता अविद्याका ज्ञान विरोधी है. यातें अविद्याकल्पित जो कर्मादिक है, तिनका वी ज्ञानसैं नास होवै है. जैसे स्वप्नविषै निद्रासैं जो पदार्थ प्रतीत होवै है, तिनका जागृतविषै निद्राकी निवृत्तिसैं अभाव होवै है. तैसे अविद्यारूप निद्रासैं प्रतीत जो होवै हैं कर्म कर्त्ता फल; तिनका वी ज्ञानदसारूप जागृतविषै अविद्याकी निवृत्तिसैं अभाव होवै है, औ ज्ञानविना अभाव होवै नहीं. औ इच्छाके अभावतें जो कर्मका फल भोग होवै नहीं, तौ ईश्वरका संकल्प मिथ्या होवैगा. काहेतें, "फल भोगविना अज्ञानीके कर्मकी निवृत्ति होवै नहीं." यह ईश्वरका संकल्प है. जो इच्छाके अभावतें करे कर्मका फल होवै नहीं, तौ ईश्वरका संकल्प मिथ्याही होवैगा. औ "सत्यसंकल्प ईश्वर है," यह वार्त्ता सास्त्रमैं प्रसिद्ध हैं. यातें "इछाके अभावतें पूर्व करे काम्यकर्मका फल होवै नहीं" यह वार्त्ता विरुद्ध है. जो इछाके अभावतैंही काम्यकर्मफल नहीं होवै, तौ असुभकर्मका फल किसीकूं वी नहीं हुवा चाहिये. काहेतें असुभकर्मका फल दुःख है; ताकी किसीकूं वी इच्छा है नहीं. यातें ज्ञानविना कर्मके फलका अभाव होवै नहीं.

और जो पूर्व कह्या, "जैसे कर्मके अनुष्ठानकालमैं जो इ[illegible]रहित पुरुष है, ताकूं कर्मका फल वेदांतमतमैं अंगीकार नहीं कर्‍या; तैसे कर्मके अनुष्ठानसैं अनंतर वी जो पुरुषकी इच्छा दूरि होये जावै, तौ कर्मका फल होवै नहीं." सो

वार्त्ता बी वेदांतमतकूं नहीं जानिके कही है काहेतैं, फलकी इच्छासहित जो कर्म करै, अथवा फलकी इछा रहित जो कर्म करै है, तिनकूंकर्मका फलभोग तौ निश्चय होवै है. परंतु इछारहित कर्मसैं अंतःकरन शुद्ध होवै है; औ इछासहित जो कर्म करै है, ताकूं केवल भोग तौ होवैं है; परंतु अंतःकरन सुद्ध होवै नहीं. जो इछारहित कर्म करनेतैं सुद्ध अंतःकरन होयके श्रवनतैं ज्ञान होय जावै, ताकूं तौ कर्मका फल होवै नहीं: औ "जानै कर्म तौ फलकी इछारहित किये हैं, परंतु श्रवनके अभावतैं, अथवा किसी अन्यनिमित्ततैं ज्ञान होवै नहीं. ताकूं तौ इछारहित कर्मके फलका भोग दूरि होवै नहीं." यह वेदांतका सिद्धांत है. यातैं ज्ञानसैं विना कर्मका फलभोग दूरि होवै नहीं.

और पूर्व कह्या जो "प्रायश्चित्तसैं संपूर्नअसुभकर्मनका नास होवै है" सो वार्त्ता बी बनै नहीं. काहेतैं अनंतकल्पके जो असुभकर्म हैं, तिनका एकजन्मविषै प्रायश्चित्त बनै नहीं औ गंगास्नान औ ईश्वरका नामउच्चारनसैं आदिलेके सर्वपापके नासक जो साधारनप्रायश्चित्त कहे हैं सो बी ज्ञानकेही साधन हैं, यातैं सर्वपापके नासक कहे है. यातैं ज्ञानसैंही सर्वपापका नास होवै है.

और पूर्व कह्या जो "नित्यनैमित्तिककर्म करनेतैं जो क्लेस होवै है, सो पूर्वसंचितनिसिद्धकर्मका फल है. यातैं संचित निसिद्धकर्मका फल और होवै नहीं." सो वार्त्ता बी बनै नहीं. काहेतैं, अनंतप्रकारके संचितनिसिद्ध जो कर्म हैं, ति-

नका फल बी अनंतप्रकारका दुःख है. केवल कर्मके अनुष्ठानका क्लेसही तिनका फल बनै नहीं.

और पूर्व कह्या जो " संपूर्नसंचितकाम्यकर्मतैं एकही सरीर होवै है. " सो वार्त्ता बी बनै नहीं. काहेतैं, संचितकाम्यकर्म अनंत हैं. तिनका एकजन्म विषै भोग बनै नहीं. औ एकपुरुषकूं एककालमैं नानासरीरसैं जो भोग कह्या, सो बी सिद्धयोगीविना औरकूं बनै नहीं. औ " सिद्धयोगीकूं बी और तौ संपूर्न सामर्थ्य होवै है; परंतु ज्ञानबिना मोछ तौ होवै नहीं. " यह वेदका सिद्धांत है; इसरीतिसैं काम्यकर्म औ निषिद्धकर्मकूं त्यागिके जो केवल नित्यनैमित्तिककर्म अज्ञानीकरै, ताकूं नित्यनैमित्तिककर्मका फल भोगनैके वास्ते; औ पूर्व जो सुभअसुभकर्म करे हैं, तिनका फल भोगनै वास्ते, अनंतसरीर होवैंगे; मोछ होवै नहीं. यातैं ज्ञानद्वारा बंधकी निवृत्ति ग्रंथका प्रयोजन बनै है. जैसे स्वप्नविषै जो मिथ्यापदार्थ प्रतीत होवै हैं, तिनकी जागृतबिना निवृत्ति होवै नहीं. तैसे बंध बी मिथ्या प्रतीत होवै है. ताकी बी ज्ञानरूप जागृतबिना निवृत्ति होवै नहीं.

इसरीतिसैं ग्रंथके अधिकारी विषय प्रयोजन संभवै हैं. औ अधिकारीआदिकनके संभवतैं संबंध बी संभवै है. यातैं ग्रंथका आरंभ बनै है.

दोहा.

दादू दीनदयाल जू, सत सुख परमप्रकास;
जामैं मतिकी गति नहीं, सोई निश्चलदास. १५

इति अनुबंधविसेष निरूपनं नाम द्वितीयस्तरंगः समाप्तः २

श्रीगणेशाय नमः

# अथ श्रीविचारसागरे

तृतीयस्तरंगः प्रारंभः ३

## अथ श्रीगुरु सिष्य लछन.

## गुरुभक्ति फलप्रकार निरूपनं.

### दोहा.

पेख च्यारिअनुबंधयुत, पुढै सुनै यह ग्रंथ;
ज्ञानसहित गुरुसें जु नर, लहै मोछको पंथ. १

टीका:—च्यारिअनुबंधसहित ग्रंथकूं जानिके ज्ञानसहित गुरुसैं जो पुरुष पढै, अथवा एकाग्रचित्तकरिके सुनै, सो पुरुष मोछका पंथ जो ज्ञान है; ताकूं प्राप्त होवै. १

### दोहा.

अनयासहि मति भूमिमैं, ज्ञान चिमन आबाद;
व्है इहिं कारन कहतहूं, गुरूसिष्यसंवाद. २

टीका:—गुरुसिष्यके संवादसें अर्थनिरुपन करनैतैं श्रोताकूं बोध सुखसैं होवै है. इस कारनतैं गुरुशिष्यके संवादसैं ग्रंथका आरंभ करिये है.

## अथ श्रीगुरुलछन.

### चौपाई.

वेदअर्थकूं भलै पिछानैं,

आतम ब्रह्मरूप इक जानै;
भेद पंचकी बुद्धि नसावै,
अद्वय अमल ब्रह्म दरसावै. ३
भव मिथ्या मृगतृषा समाना,
अनुभव इम भाखत नहीं आना;
सो गुरु दे अद्भुतउपदेसा,
छेदक सिखा न लुंचित केसा. ४

टीकाः— "वेदके अर्थकूं भलि प्रकारसें पिछानै" यह कहनैसें अधीतवेद आचार्य होवै है; यह कह्या. औ जीवब्रह्मकी एकता निश्चयकरिके जानै यातैं, आत्मज्ञानविषै जाकी स्थिति होवै, सो आचार्य होवै है; यह कह्या. जो वेद पढ्या होवै, औ ज्ञानविषै जाकी निष्ठा न होवै सो आचार्य नहीं है. औ ज्ञानविषै जाकी निष्ठा होवै, औ वेद नहीं पढ्या, सो बी आप तौ मुक्त है, परंतु उपदेश करनैयोग्य आचार्य नहीं है. काहेतें, वाकूं जिज्ञासुकी संका मेटनैकी युक्ति नहीं आवे है. जाके चित्तविषै संका उठै नहीं, ऐसा जो उत्तमसंस्कारवाला जिज्ञासु है, ताके तौ उपदेस करनैविषै समर्थ है बी, परंतु सर्वके उपदेस करनेयोग्य नहीं; यातैं आचार्य नहीं. किंतु अधीतवेद होवै, औ ज्ञानविषै जाकी निष्ठा होवै, सो आचार्य कहिये है. औ शिष्यकी बुद्धिमैं भान जो होवै पंचप्रकारका भेद, ताकूं नानायुक्तिसैं दूरि करनै विषै समर्थ होवैः—१ जीव ईसका भेद, २ जीवनका परस्पर भेद, ३ जीव

जडका भेद, ४ इस जडका भेद, ५ जडजडका भेद; यह पंचप्रकारका भेद हैं, ताकूं खंडन करै. काहेतें भेद भयका हेतु है. यातें भेदका निराकरन अवस्य कर्तव्य है. भेदका निराकरनकरिके अद्वय औ अमल कहिये अविद्यादि मल रहित जो ब्रह्म ताकूं दरसावै, कहिये आत्मरूप करिके साछातकार करवावै. औ सर्वसंसारकूं मिथ्यारूप करिके उपदेस करै. सो अद्भुतउपदेस देनैवाला आचार्य कहिये है. औ केवल आप मुंडन कराइके सिष्यकी सिखा छेदनमात्र करनैवाला; अथवा औरकोऊसंप्रदायके चिन्हमात्रसें अंकित करनैवाला; आचार्य नहीं कहिये है.

## दोहा.

करत मोछं भवग्राहतें, दे असि निज उपदेस;
सो दैसिक बुध जन कहत, नहिं कृत गैरिकवेस. ५

अर्थ स्पष्ट. ५

## दोहा.

दैसिकके लच्छन कहे, श्रुति मुनि वच अनुसार;
सो लच्छन हैं सिष्यके, व्है जिनतें अधिकार. ६

टीकाः—सास्त्रके अनुसार दैसिक कहिये गुरु, ताके लछन कहे, औ जिन साधनसें पंथमें अधिकार होवै सोसाधे सिष्यके लछन है. याका यह अभिप्राय हैः— जो अधिकारीके लछन पूर्व कहे, सोई लछन सिष्यके जानि लेनै. ६

# अथ गुरुभक्तिका फल बर्नन.

## दोहा.

ईश्वरतैं गुरुमैं अधिक, धारैं भक्ति सुजान;
बिन गुरुभक्ति प्रवीनहू, लहै न आतमज्ञान. ७

टीकाः—गुरुमैं ईश्वरसैं अधिक भक्ति करै. काहेतें, जो सर्वसास्त्रमैं प्रवीन बी पुरुष होवै, सो बी गुरुके उपदेसविना ज्ञानकूं प्राप्त होवै नहीं. ७

जो पूर्वदोहेमैं बात कही सोई दृष्टांतसैं प्रतिपादन करै हैं:—

## दोहा.

वेद उदधि विनगुरु लखै, लागै लौन समान;
बादर गुरुमुख द्वार व्है, अमृतसैं अधिकान. ८

टीकाः—वेदरूपी उदधि कहिये जो समुद्र है, सो गुरुविना लौनके समान छार है. जैसैं छारसमुद्रमैं पैठिके वाके जलकूं जो पान करै, सो केवल छारताकूं अनुभव करै है; औ तासूं क्लेसकूं प्राप्त होवै है. तैसैं गुरुविना जो वेदके अर्थकूं विचारै है, सो भेदरूपी छारकूं अनुभवकरिके जन्ममरनरूपी खेदकूं प्राप्त होवै है. इसी कारनसैं रामानुज औ मध्वसैं आदिलेके, जो नानापुरुष हुए हैं, तिनोंनै वेदके अर्थका विचार बी किया है; परंतु गुरुद्वारा नहीं किया, यातैं भेद विषे निश्चयकरिके जन्ममरनरूपी खेदकूंही प्राप्त भये. मु-

क्तिरूप आनंद उनकूं प्राप्त नहीं भया. यद्यपि रामानुजआदि जो भये हैं, तिनोंनै बी वेद अपनैअपनै गुरुसैंही पढिके विचाऱ्या है; औ विचारिके व्याख्यान किया है; तथापि जिनके पास उनूंनै वेद पढ्या सो गुरु नहीं; काहेतें, " जो जीवब्रह्मकी एकताका उपदेस करै सो गुरु होवै है. " यह पूर्व गुरुलछनके प्रसंगमैं कहि आये. औ उनके जो पाठक हुवे हैं, सो जीवब्रह्मका भेद उपदेस देनैवाले हुवे हैं, यातैं उनकेविषै जो गुरुशब्दका प्रयोग करै है; सो अर्हतके समान करै है. जैसैं अर्हतके सिष्य अर्हतकूं गुरु कहै हैं, परंतु अर्हत, गुरुपदका विषय नहीं है. तैसैं भेदवादीपुरुषनके जो सिष्य हैं, सो अपनै पाठकांकूं गुरु कहै हैं. परंतु सो गुरु नहीं हैं. यातैं रामानुजसैं आदिलेके जो भेदवादी हुवे हैं, तिनोंनै गुरुद्वारा विचार नहीं किया, इसकारनतैं भेदमैं अभिनिवेसकरिके जन्ममरनरूपी क्लेसकूंही प्राप्त भये. तैसैं और बी जो कोऊ पूर्वलछनयुक्त गुरुसैं विना आपही वेदके अर्थका विचार करै, अथवा भेदवादीपुरुषसैं पढिके विचारै, सो बी भेदरूपी छारकूं अनुभवकरिके जन्ममरनरूपी क्लेसकूंही अनुभव करै है. यह दोहेके पूर्वार्धका अर्थ है. औ वादररूपी ब्रह्मवितगुरुके मुखद्वारा जो सुनिकेविचारै, ताकूं अमृतसैं बी अधिकआनंदका हेतु वेद होवै है. जैसैं समुद्रका जल स्वरूपसैं छार है, औ वादरद्वारा मधुर होवै है; तैसैं वेदका अर्थ ब्रह्मज्ञानी गुरुद्वारा आनंदका हेतु है. ८

पूर्वदोहेमैं यह वात कही जो " गुरुसैं पढ्या जो वेदका

अर्थ है," ताके विचारसैं मुक्तिरूपी फल प्राप्त होवै है; तासों गुरु ज्ञानी होवै, अथवा अज्ञानी होवै, ऐसा विसेष नहीं कह्या; सो अब कहै हैं. "यद्यपि ज्ञानहीन गुरु नहीं," यह पूर्व कही आये, तथापि पूर्व कही वार्त्ताकूं दृष्टांतसैं प्रतिपादन करै हैं:—

## दोहा.

**दृतिपुट घट सम अज्ञजन, मेघसमान सुजान;**
**पढै वेद इहि हेतुतैं, ज्ञानीपैं तजि आन. ९**

टीका:—अज्ञ कहिये अज्ञानी जो जन हैं, सो दृतिपुट कहिये मसक औ चरसआदि जो चर्मपात्र, अथवा घटद्वारा ग्रहन किया जो समुद्रका जल, सो विलछनस्वादका हेतु नहीं है. तैसैं अज्ञानीपुरुषद्वारा ग्रहन जो किया वेदरूपी समुद्रका अर्थरूपी जल, सो विलछनआनंदका हेतु नहीं. यातैं अज्ञानीपाठक चर्मपात्र औ घटके समान है. औ सुजान कहिये ज्ञानी, मेघके समान है. यह वार्त्ता पूर्व प्रतीपादन करी है. यातैं चर्मपात्र औ घटकैं समान जो अज्ञानीपाठक हैं, ताकूं त्यागिके मेघसमान जो ज्ञानी ताहीसूं वेदका अर्थ पढै अथवा सुनै. ९

"ज्ञानवानके पास वेद पढै." या कहनेतैं यह संका होवै है:— जो वेदकी श्रुति है, तिनहीद्वारा जीवब्रह्मका स्वरूप विचारनेतैं ज्ञान होवै है; अन्यसंस्कृतग्रंथनसैं औ भाषाग्रंथनसैं ज्ञान होवै नहीं. यातैं भाषाग्रंथका आरंभ निष्फल होवैगा.

## ताकै समाधानका दोहा.

**ब्रह्मरूप अहि ब्रह्मवित, ताकी वानी वेद;**
**भाषा अथवा संसकृत, करत भेदभ्रम छेद. १०**

टीका:—“ ब्रह्मवेत्ता जो पुरुष है सो ब्रह्मरूपहै. ” यह वार्त्ता श्रुतिविषे प्रसिद्ध है. यातें ताकी वानी वेदरूप है. सो भाषारूप होवै, अथवा संस्कृतरूप होवै; सर्वथा भेदभ्रमका छेद करे है. और जो कहे हैं:—“ वेदके वचनविना ज्ञान होवै नहीं,” सो नियम नहीं. जैसै आयुर्वेदमैं कहे जो रोग, औ तिनके निदान, औ औषध, तिन संपूर्नका अन्यसंस्कृतग्रंथनसैं, औ भाषा फारसी ग्रंथनसैं, ज्ञान होय जावै है. तैसै सर्वका आत्मा जो ब्रह्म, ताका ज्ञान वी भाषादिक ग्रंथनसैं होवै है. इसवास्तै सर्वज्ञ जो रिषी औ मुनि हुवे हैं, तिनोंने स्मृति, औ पुरान, औ इतिहासग्रंथनमैं ब्रह्मविद्याके प्रकरन कहे हैं; जो वेदसैं विना ज्ञान न होवै, तौ वे संपूर्नप्रकरन निष्फल होय जावैंगे. यातैं आत्माके स्वरूपका प्रतिपादक जो वाक्य है, तासूं ज्ञान होवै है; सो वेदका होवै, अथवा अन्य होवै. यातैं भाषाग्रंथसैं वी ज्ञान होवै है, यह वार्त्ता सिद्ध हुई. १०

### दोहा.

**वानी जाकी वेद सम, कीजै ताकी सेव;**
**व्है प्रसन्न जब सेवतैं, तब जानै निज भेव. ११**

टीका:—जा ब्रह्मवेत्ताकी वानी कहिये वचन वेदके समान

है, ता ब्रह्मवेत्ताआचार्यकी जिज्ञासु सेवा करै. काहेतें, सेवातें जब आचार्य प्रसन्न होवै, तब निजभेव कहिये अपना स्वरूप जानै. यहं कहनेतें यह वार्त्ता जनाई:—जो आचार्यकी सेवा है, सो ईश्वरकी सेवासें बी अधिक है; काहेतें, जो ईश्वरकी सेवा है,सो तौ अदृष्टफलका हेतु है, औ आचार्यकी सेवा है, सो अदृष्टफल औ दृष्टफल दोनूका हेतु है. जो वस्तु धर्मअधर्मकी उत्पत्तिद्वारा फलका हेतु होवै, सो अदृष्टफलका हेतु कहिये है. औ जो वस्तु धर्मअधर्मकी उत्पत्तिसें विना साछातफलका हेतु होवै, सो दृष्टफलका हेतु कहिये है. ईश्वरकी जो सेवा है सो धर्मकी उत्पत्तिद्वारा अंतःकरनकी सुद्धिरूप फलका हेतु है. यातें ईश्वरकी सेवा अदृष्टफलका हेतु है. औ आचार्यकी सेवा धर्मकी अपेछाविना आचार्यकीप्रसन्नता करिके उपदेसरूप फलका हेतु है; यातें दृष्टफलका हेतु है; औ धर्मकी उत्पत्तिद्वारा अंतःकरनकी सुद्धिरूप फलका हेतु है. यातें अदृष्टफलका बी हेतु है. इसरीतिसें आचार्यकी सेवा ईश्वरकी सेवासें बी उत्तम है, यातें जिज्ञासु सर्वप्रकारसें ब्रह्मवेत्ता आचार्यकी सेवा करै. ११

## अथ आचार्यसेवाप्रकार.

### सोरठा.

है जबही गुरुसंग, करै दंडजिम दंडवत;
धारै उत्तमअंग, पावन पादसरोज रज. १२

टीका:—जब गुरु प्राप्त होवै, तब दंडकी न्याई साष्टांग

प्रनाम करै. औ पावन कहिये पवित्र जो हैं पादरूपी सरोजकमल तिनकी रज जो धूरि, ताकूं उत्तमअंग कहिये मस्तक ऊपर धारै. १२

चौपाई.

गुरु समीप पुनि करिये वासा,
जो अति उत्कट व्है जिज्ञासा;
तन मन धन वच अर्पी देवै,
जो चाहै हिय बंधन छेवै. १३

अर्थ स्पष्ट. १३

## अथ तन अर्पन प्रकार.

चौपाई.

तनकरि बहु सेवा विस्तारै,
आज्ञा गुरुकी कबहू न टारै;

## अथ मन अर्पन प्रकार.

मनमें प्रेम रामसम राखै,
व्है प्रसन्न गुरु इम अभिलाखै, १४
दोषदृष्टि स्वपनै नहिं आनै,
हरि हर ब्रह्म गंग रवि जानै;
गुरु मूरतिको हियमें ध्याना,
धारै जो चाहै कल्याना. १५

# अथ धन अर्पन प्रकार.

## चौपाई.

पत्नी पुत्र भूमि पसु दासी,
दास द्रव्य ग्रह व्रीहि विनासी;
धनपद इन सबहिनकूं भाखै,
व्है गुरुसरन दूरि तिहि नाखै. १६

## सोरठा.

धन अर्पनको भेव, एक कह्यो सुन दूसरो;
व्है ग्रहस्थ गुरुदेव, याज्ञवल्क्य सम देह तिहिं. १७

टीकाः—पत्निसैं आदिलेके व्रीहि कहिये धान्यपर्यंत सारे धन कहिये हैं. तिन सर्वकूं त्यागिके, त्यागी जो गुरु है, ताके सरनै होवै; यह धनअर्पन कहिये है. काहेतैं, गुरु त्यागी है, सो आप तौ अंगीकार करै नहीं. परंतु तिन गुरुकी प्राप्ति वास्ते धनका त्याग किया है. यातैं ऐसा जो त्याग है, सो बी गुरुंकूंही अर्पन कहिये है.

औ गृहस्थ जो गुरु होवै, तिनकूं समय चढाई देवै. यह दूसरेप्रकारका धन अर्पन कहिये है.

## यामै कोउ संका करै है:—

जो ब्रह्मविद्याके आचार्य गृहस्थ नहीं होवै है.

# सो संका बनै नहीं.

काहेतें, याज्ञवल्क्य औ उद्दालकसें आदिलेके ब्रह्मविद्याके आचार्य गृहस्थही वेदविषै बहुत सुनै जावै है. यातें गृहस्थ वी आचार्य संभवै है. १७

## अथ बानी अर्पनविषै छंद.

भाखत गुनगन गुरुके बानी सुद्ध;
दोष न कबहु अर्पन करि इम बुद्ध. १८

### सोरठा.

जो चाहै कल्यान, तन मन धन वच अरपि इम;
बसै बहुत गुरुस्थान, भिच्छातें जीवन करै. १९

टीकाः—जो पुरुष अपना कल्यान चाहै, सो पूर्वरीतिसें तनआदि अर्पनकरिके आप बहुतकाल गुरु जहां होवै, ता स्थानविषै, वा समीपमें वास करै. औ आप भिछातें जीवन कहिये प्रान धारन करै. १९

### चौपाई.

सो भिछा धरि देसिक आगै,
निज भोजनकूं नहीं पुनि मागै;
जो गुरु देइ तु जाठर डारै,
नहीं दूजेदिनवृत्ति संभारै. २०

टीकाः—जो भिछाका अन्न सिष्य ल्यावै, सो आपही भो-

जन नहीं करी लेवै. किंतु देसिक जो गुरु है, तिनके आगे ध-रि. देवै औ भिछा गुरुके आगे धरिके अपने भोजनकूं गुरुसैं मागैं नहीं. औ एकदिनमैं दूसरीवार भिछा ग्राममैं बी मागै नहीं. किंतु गुरु जो कृपा करिके देवै, तौ भोजन करै. औ गुरु जो सिष्यकी श्रद्धाकी परिछाके निमित्त नहीं देवै, तौ दूसरेदिन वृत्ति जो भिछा ताकूं संभारै. २०

## दोहा.

पुनि गुरुके आगे धरै, भिछा सिष्य सुजान;
निर्वेदन जियमैं करै, जो निजचहै कल्यान. २१

टीका:– निर्वेद नाम ग्लानिका है. अन्य अर्थ स्पष्ट. २१

## चौपाई.

इम व्यवहृत अवसर जब पेखै,
मुख प्रसन्न गुरु सन्मुख लेखै;
विनती करै दोउकर जोरी,
गुरु आज्ञातें प्रस्न वहोरी. २२

टीका:– इसरीतिका व्यवहार करते जब गुरुका अवकास देखै, औ प्रसन्न मुखसैं गुरु जब आपनै सन्मुख देखै, तब हाथ जोरिके गुरुकी स्तुति करैं, औ वीनति करैः– हे भगवन्! "मैं पूछ्या चाहूं हूं." तब गुरु आज्ञा करै तौ प्रश्न करै.

औ कदाचित् जन्मांतरके उत्तमकर्मतैं गुरु कृपाकरिके सिष्यकूं तनअर्पनआदि सेवासैं बिनाही उपदेश करी देवै,

तौवि सुद्ध अधिकारीका कल्यान होय जावै है. काहेतैं, गुरुसेवाके दो फल हैं:—एक तौ गुरुकी प्रसन्नता, औ दूसरा अंतःकरनकी सुद्धि, सो दोनूं वाके सिद्ध हैं. २२

## दोहा.

तन मन धन वानी अरपि, जिहिं सेवत चित लाय;
सकलरूप सो आप है, दादू सदा सहाय. २३

इति गुरुसिष्यलच्छन, गुरुभक्तिफलप्रकार
निरूपनं नाम तृतीयस्तरंगः समाप्तः ३

श्रीगणेशाय नमः

# अथ श्रीविचारसागरे.

चतुर्थस्तरंगः प्रारंभः ४

## अथ उत्तमाधिकारी उपदेस निरूपनं.

दोहा.

गुरु सिषके संवादकी, कहूं व गाथ नवीन;
पेखि जाहि जिज्ञासु जन, होत विचारप्रवीन. १
तीनिसहोदर बाल सुभ, चक्रवती संतान;
सुभसंततिपितु तिहिं नमै, स्वर्ग पताल जहान. २

## तीनौबाल नाम.

तत्त्वदृष्टि इक नाम अहि, दूजो कहत अदृष्ट;
तर्कदृष्टि पुनि तीसरो, उत्तम मध्य कनिष्ट. ३

चौपाई.

वालपनो सब खेलत खोयो,
तरुण पाय पुनि मदन विगोयो;
धारि नारि गृह मार प्रकासी,
भोग लहै तिहुं सब सुखरासी. ४

दोहा.

स्वर्ग भूमि पातालके, भोगहि सर्व समाज;
सुभसंतति निज तेजबल, करत राजके काज. ५
लहि अवसरइकतिहिं पिता,निजहियरच्यौविचा
र;सुखस्वरूप अज आतमा,तासूंभिन्न असार.६
इहिं कारन तजि राज यह, जानूं आतमरूप;
स्वर्ग भूमि पातालके, तिहुं पुत्रह करि भूप. ७

चौपाई.

अस विचार सुभसंतति कीना,
मंत्रि पेखि तिहुं पुत्र प्रवीना;
देसइकंत समीप बुलाये,
निज विरागके वचन सुनाये. ८
भाख्यो पुनि यह राज संभारहु,
इक पताल इक स्वर्ग सिधारहु;
अपर वसहु कासीभुवि स्वामी,
रहत जहां सिव अंतरजामी. ९
जिहि मरतहि सुनि सिव उपदेसा,
अनथासहि तिहिं लोक प्रवेसा;
गंग अंग मनु कीर्त्ति प्रकासै,
उत्तरवाहनि अधिक उजासै. १०

दोहा.

करहु राज इम भिन्नतिहुं,पालहु निज निज देस;
बिन बिभाग भ्रातानको,भूमि काजव्है क्लेस. ११.

राजसमाज तजौं सब मैं अब,
जानि हिये दुख ताहि असारा;
और तु लोक दुखी अपनै दुख,
मैं भुगत्यो जग क्लेस अपारा;
जे भगवान प्रधान अजान.
समान दरिद्रन ते जन सारा;
हेतु विचार हिये जगके भग,
त्यागि लखूं निजरूप सुखारा. १२
वाक्य अनंत कहे इम तात,
सुने तिहुभ्रात सु बुद्धिनिधाना;
बैठि इकंत विचार अपार,
भनै पुनि आपसमांहि सुजाना;
दे दुखमूल समाज हमैं यह,
आप भयो चह ब्रह्म समाना;
सो जन नागर बुद्धिकसागर,
आगर दुःख तजै जु जहाना. १३

दोहा.

यातैं तजि दुखमूल यह, राज करौ निज काज;
करि विचार इम गेहतैं, निकस्यो भ्रातसमाज. १४
तिहुं खोजत सद्गुरु चले, धारि मोछ हिय काम;
अर्थसहित किय तातको, सुभसंतति यहनाम. १५
खोजत खोजत देस बहु, सुरसरि तीर इकंत;
तरु पल्लव साखा सघन, वन तामैं इक संत. १६
बैठ्यो बट विटपहिं तरै, भद्रामुद्रा धारि;
जीवब्रह्मकी एकता, उपदेसत गुन टारि. १७
दोषरहित एकाग्रचित, सिष्यसंघ परिवार;
लखि देसिक उपदेस हिय, बहुधा करत विचार. १८
मनहु संभु कैलासमैं, उपदेसत सनकादि;
पेखि ताहि तिहिं लहि सरन, करी दंडवत आदि. १९
कियो वास षटमास पुनि, सिष्यरीति अनुसार;
करी अधिक गुरुसेव तिहुं, मोछकाम हिय धार. २०
ह्वै प्रसन्न श्रीगुरु तबै, ते पूछै मृदुवानि;
किहिं कारन तुम तात तिहु, वसहु कौनकह आनि. २१

तत्त्वदृष्टि तव लखि हिये, निज अनुजनकी सैन;
कहै उभयकर जोरि निज अभिप्रायके वैन. २२

## तत्त्वदृष्टिरुवाच.

भो भगवन हम भ्रात तिहु, सुभसंतति संतान;
लख्यो चहैं बहु भेव हिय, दीन नवीन अजान. २३
जो आज्ञा व्है रावरी, तौ व्है पूछि प्रवीन;
आप दया निधि कल्पतरु, हम अति दुखित अ-
धीन २४

## श्रीगुरुरुवाच.

### सोरठा.

सुनहु सिष्य मम भ्रात, जो पूछहु तुम सो कहुं;
लहो हिये कुसलात, संसय कोउ ना रहै. २५

### दोहा.

गुरुकी लखी दयालुता, सिष्य हिये भौ चैन.
काज सिद्ध निज मानि हिय, भाखे सविनय वै-
न. २६

## तत्त्वदृष्टिरुवाच.

### चौपाई.

भो भगवन तुम कृपानिधाना,

हौं सर्वज्ञ महेस समाना;
हम अजान मति कछू न जानैं,
जन्मादिक संसृति भय मानै. २७
कर्म उपासन कीने भारी,
और अधिक जगपासी डारी;
आप उपाय कहौ गुरुदेवा,
व्है जातैं भवदुखको छेवा. २८
पुनि चाहत हम परमानंदा,
ताको कहो उपाय सुछंदा;
जब कृपा करी कहि हौ ताता,
तब व्है है हमरे कुसलाता. २९

टीकाः— हे भगवन्! आप कृपानिधान हो; औ सदासिवके समान आप सर्वज्ञ हो. औ हे भगवन्! हम जन्ममरनसैं आदिलेके जो दुःखरूप संसार है, तासैं डरैं हैं; ताकी निवृत्तिका आप उपाय कहो, औ परमानंदकी प्राप्तिका उपाय कहौ. औ हे गुरो! उपासना औ कर्मके अनंतअनुष्ठान करे बी, परंतु उनसैं हमारेकूं वांछितफल प्राप्त भया नहीं. औ उलटा संसार उनसैं वधता गया. यातैं आप और उपाय बतावौ, जा करिके हम कृतार्थ होवैं. २९

दोहा. आ-

मोछ काम गुरु सिप्य लखि, ताको साधन ज्ञान;

वेदउक्त भाषन लगे, जीवब्रह्म भिद भान. ३०

टीकाः— दुःखकी निवृत्ति औ परमानंदकी प्राप्तिकूं मोछ कहै हैं. ताकी कामना सिष्यके हृदयमैं देखिके, ताका साधन जो वेदउक्त ज्ञान है, सो कहते भये. यद्यपि ज्ञानका स्वरूप अनेकसास्त्रनविषै भिन्न भिन्न वर्नन किया है, तथापि जीवब्रह्मकी भिद कहिये भेद, ताकूं दूरि करनैवाला जो ज्ञान है, सोई वेदमैं मोछका साधन कह्या है; यातैं ताहीकूं कहै हैं. ३०

## श्रीगुरुरुवाच.

### दोहा.

परमानंद मिलाप तूं, जो सिष चहै सुजान;
जन्मादिक दुःख नास पुंनि, भ्रांतिजन्यतिहिं मान. ३१
परमानंद स्वरूप तूं, नहीं तोमैं दुःख लेस; अज
अविनासी ब्रह्मचित्, जिन आनैं हिय लेस. ३२

टीकाः—हे सिष्य ! परमानंदकी प्राप्तिविषै, औ जन्ममरनसैं आदिलेके जो दुःखरूप संसार है, ताकी निवृत्तिविषै जो तेरेकूं इच्छा भई है, ता इच्छाकी भ्रांतिसैं उत्पत्ति हुई है; तूं ऐसे जान. काहेतैं, तूं आप परमआनंदस्वरूप है; यातैं ताकी प्राप्तिकी इच्छा बनै नहीं. जो वस्तु अप्राप्त होवै, ताकी इच्छा बनै है. औ अपना जो स्वरूप है, सो सदा-प्राप्त है. ताकी प्राप्तिविषै जो इच्छा, सो भ्रांतिविना बनै नहीं.

औ जन्मसैं आदिलेके जो संसार है, सो जो कदाचित् होवै, तौ वाकी निवृत्तिविषै इच्छा बनै. सो जन्मादिक संसारका लेस बी तेरविषै नहीं है. यातैं अनहुये दुःखकी निवृत्तिविषै बी इच्छा भ्रांतिविना बनै नहीं. औ हे सिष्य ! जन्म औ नास करिके रहित जो चेतनरूप ब्रह्म है, सो तूं है. यातैं अपनै हृदयविषै जन्मादिक खेद मति मान. ३२

# तत्त्वदृष्टिरुवाच.

## दोहा.

विषय संग क्यूं भान व्है, जो मैं आनंदरूप;
अब उत्तर याको कहौ, श्रीगुरु मुनिवरभूप. ३३

टीकाः— हे भगवन् ! जो मेरा आत्मा आनंदरूप होवै, तौ विषयके संबंधसैं आनंदका आत्माविषै भान नहीं हुवा चाहिये. यातैं आत्मा आनंदरूप नहीं, किंतु विषयके संबंधसैं आत्मा विषै आनंद होवै है. ३३

# श्रीगुरुरुवाच.

## चौपाई.

आतमविमुख बुद्धि जन जोई,
इच्छा ताहि विषयकी होई;
तासूं चंचल बुद्धि बखानी,
सुखआभास होइ तहं हानी. ३४

जब अभिलषित पदारथ पावै,
तब मति छनक विछेप नसावै;
तामैं व्है अनंदप्रतिबिंबा,
पुनि छनमैं बहु चाह विडंबा. ३५
तातैं व्है थिरताकी हानी,
सो अनंदप्रतिबिंब नसानी;
विषयसंग आनंद जु होई,
विन सतगुरु यह लखै न कोई. ३६

टीकाः— हे सिष्य ! आत्मासैं विमुख है बुद्धि जाकी, ऐसा जो पुरुष, ताकूं विषयकी इच्छा होवै है. या स्थानविषै जो भोगका साधन होवै, सो विषय कहिये है. यातैं धनपुत्रादिकनका बी ग्रहन करी लेना. ता विषयकी इच्छातैं बुद्धि चंचल रहै है. ता चंचलबुद्धिमैं आत्मस्वरूप आनंदका आभास कहिये प्रतिबिंब नहीं होवै है. औ जिस विषयकी इच्छा हुई होवै सो विषय याकूं प्राप्त होइ जावै, तव या पुरुषकी बुद्धि छनमात्र स्थित होयके अंतर्मुख बुद्धिकी वृत्ति होवै है. ता अंतर्मुखवृत्तिविषै आत्माका स्वरूप जो आनंद्र ताका प्रतिबिंब होवै है. तिस आत्मस्वरूप आनंदके प्रतिबिंबकूं अनुभव करिके पुरुषकूं भ्रांति होवै है; जो मेरेकूं विषयसैं आनंदका लाभ हुवा है, परंतु विषयमैं आनंद है नहीं.

जो कदाचित् विषयमैं आनंद होवै, तौ एकविषयसैं तृप्त जो पुरुष, ताकूं जब दूसरेविषयकी इच्छा होवै, तब बी प्र

थमविषयसैं आनंद हुवा चाहिये; सो होवै तौ नहीं है. औ हमारी रीतिसैं स्वरूपआनंदका तौ भान बनैं नहीं. काहेतैं, जो दूसरेविषयकी इच्छा करिके बुद्धि चंचल हैं, ताकेविषै प्रतिबिंब बनै नहीं. किंवाः—

जो विषयमैंही आनंद होवै, तौ जा पुरुषका प्रियपुत्र, अथवा और कोई अत्यंत प्यारा; जो अकस्मात बहुतकाल पीछे मिलि जावै, तब वाकूं देखतेही प्रथम जो आनंद होवै, सो आनंद फेरि सदा नहीं होता; सो सदाही हुवा चाहिये. काहेतैं, आनंदका हेतु जो पुरुष है. सो वाके समीप है. औ हमारी रीतिसैं तौ प्रथमही आनंद बनै है; सदा बनै नहीं. काहेतैं. एकवेरि प्यारेकूं देखिके वृत्ति स्थित होवै है, फेरि वृत्ति और पदार्थमैं लगि जावै है; यातैं चंचल है. यातैं पदार्थमैं आनंद नहीं. किंवाः—

जो विषयमैं आनंद होवै, तौ समाधिकालविषै जो योगानंदका भान होवै है, सो न हुवा चाहिये; काहेतैं,समाधिमैं किसी विषयका संबंध नहीं है. किंवाः—

जो विषयमैंही आनंद होवै, तौ सुषुप्तिमैं आनंदका भान नहीं हुवा चाहिये. काहेतैं, सुषुप्तिविषै बी किसी विषयका संबंध है नहीं. यातैं विषयमैं आनंद नहीं. किंतु आत्मस्वरूप आनंद सारे भान होवै है,. इसीवास्ते वेदमैं लिख्या है:— " आत्मस्वरूप आनंदकूं लेके सारे आनंदवाले होवै है." ३९

दोहा.

विषय संगतैं व्है प्रगट, आतम आनंदरूप;

सिष्य सुनायो तोहिं मैं, यह सिद्धांत अनूप. ३७

सोरठा.

सो तूं मोहि व भाख, जो यामैं संका रही;
निज मतिमैं मति राख, मैं ताको उत्तर कहूं. ३८

## तत्त्वदृष्टिरुवाच.

चौपाई.

भो भगवन तुम दीनदयाला,
मेट्यो मम संसय ततकाला;
यामैं कछुक रही आसंका,
सो भाखूं अव व्है निर्वंका. ३९
आतमविमुख बुद्धि अज्ञानी,
ताकी यह सब रीति बखानी;
ज्ञानी जनको कहौ विचारा,
कोउ न तुम सम और उदारा. ४०

टीका:—हे भगवन्! आपने पूर्व विषयके संबंधसैं आत्मानंदके भानकी जो रीति कही, सो अज्ञानीपुरुषकी कही, औ ज्ञानीकी नहीं कही काहेतैं, आत्मासैं विमुख है बुद्धि जाकी, ताका अपने नाम लिया है; सो आत्मासैं विमुखबुद्धि अज्ञानीकी होवै है; ज्ञानीकी नहीं. यातैं आप अब ज्ञानीका विचार कहो. जो ज्ञानवानकूं विषयकी इच्छा, औ

ताके संबंधसैं पूर्वरीति करिके सुखका भान होवै है, अथवा नहीं.? यह वार्त्ता आप कहो. ४०

## श्रीगुरुरुवाच.

### दोहा.

सुनहु सिष्य इक बात मम, सावधान मन कान;
हैं द्वैविध आतमविमुख, अज्ञानी रु सुजान. ४१
व्है विस्मृत व्यवहारमैं, कबहुक ज्ञानीसंत;
अज्ञानी विमुखहि रहै, यह तूं जान सिद्धंत. ४२

टीकाः— हे सिष्य ! तूं चित्त औ श्रवनकूं सावधान करिके सुन. पूर्व जो हमने आत्मविमुख कह्याहै, सो आत्मविमुख अज्ञानीही नहीं होवै. किंतु ज्ञानवानकी बी बुद्धि जब व्यवहारमैं आई जावै, तब वह तत्त्वकूं भूलि जावै है. तिसकालविषै ज्ञानवान बी आत्मविमुखही होवै है. औ ज्ञानीकी बुद्धि जो सदा आत्माकारही रहै, तौ भोजनादिक व्यवहार न होवै, यातैं आत्मविमुखबुद्धि दोनूवांकी बनै है. अज्ञानीकी तौ बुद्धि सदा आत्मविमुख है. औ ज्ञानीकी बुद्धि आत्मविमुख होवै तिसकालमैं ज्ञानीकूं बी इच्छा, औ विषयके संबंधसैं आत्मस्वरूप आनंदका भान अज्ञानीके समान है; परंतु इतना भेद हैः—विषयके संबंधसैं जो आनंदका भान होवै, ताकूं ज्ञानी तौ जानै है, जो यह आनंद है सो मेरे स्वरूपसैं न्यारा नहीं है; किंतु ताकाही आभास है. यातैं ज्ञानीकूं

विषयभोगमैं वी समाधिही है. औ अज्ञानी नहीं जानै है; जो मेराही स्वरूप आनंद है. औ दोनूंका स्वरूप आनंद है. विषयसैं केवल अज्ञानीकूं भ्रांति होवै है.

## शिष्य उवाच.

### चौपाई.

हे प्रभु परमानंद वखान्यो,
मेरो रूप सु मैं पहिचान्यो;
नहीं तोमैं भवबंधन लेसा,
कह्यो आप पुनि यह उपदेसा. ४३
यामैं संका मुहि यह आवे,
जातैं तव वच हिय न सुहावै;
नाहिं मोमैं यह बंध पसारो,
कहौ कौन तौ आश्रय न्यारो? ४४

टीकाः—हे भगवन्! आपनै कह्या "तूं परम आनंदस्वरूप है." सो मैं भलीप्रकारसैं जान्या. और आपनै कह्या जो "जन्मम-रनसैं आदिलेके संसाररूप दुःख तेरेविषै है नहीं, यातैं ताकी निवृत्ति वनै नहीं." याकेविषै मेरेकूं संका है:—जो जन्मा-दिक दुःख मेरेविषै नहीं हैं; तौ जाविषै यह संसार है, सो मेरेसैं न्यारा कहिये भिन्न आश्रय आप कृपा करिके बता-वौ, जाकेविषै संसारदुःख जानिके अपनैविषै नहीं मानूं.

# श्रीगुरुरुवाच.

## सोरठा.

सुनहु सिष्य मम बानी, जातैं तव संका मिटै;
है जगकी अति हानी, तौ मोमैं नहीं औरमैं. ४५

अर्थ स्पष्ट. ४५

# तत्त्वदृष्टिरुवाच.

## दोहा.

जो भगवन कहुं है नहीं, जन्ममरन जगखेद;
व्है प्रत्यछ प्रतीति क्यूं? कहो आप यह भेद. ४६

टीकाः—हे भगवन्! जो जन्ममरनसैं आदिलेके संसार-दुःख मेरेविषै तथा और विषै कहूं बी नहीं है, तौ प्रत्यक्ष प्रतीत क्यूं होवै है? जो वस्तु नहीं होवै, सो प्रतीत होवै नहीं. जैसै वंध्याका पुत्र औ आकासविषै पुष्प नहीं है; सो प्रतीत होवैं नहीं. तैसै संसार बी नहीं होवै तौ प्रतीत नहीं हुवा चाहिये. औ जन्मसैं आदिलेके संसार प्रतीत होवै है यातै "जन्मादिक संसाररूपी दुःख नहीं है;" यह कहना बनै नहीं ४६.

# श्रीगुरुरुवाच.

## दोहा.

आत्मरूप अज्ञानतैं, व्है मिथ्या परतीति;
जगत स्वप्न नभ नीलता, रज्जुभुजंगकी रीति. ४७

टीकाः—जन्मादिक जगत परमार्थसें नहीं है, तौ बी आत्म। ब्रह्मस्वरूप करिके, अज्ञानतें मिथ्या प्रतीत होवै है. जैसैस्वप्नके पदार्थ, आकासमें नीलता, औ रज्जुमें सर्प परमार्थसें नहीं हैं; औ मिथ्या प्रतीत होवै हैं; तैसै जन्मादिक जगत परमार्थसें नहीं है, मिथ्या प्रतीत होवै है. ४७

## तत्त्वदृष्टिरुवाच.

### चौपाई.

मिथ्यासर्प रज्जुमें जैसै,
भाख्योभव आतममैं तैसै;
कैसै सर्प रज्जुमें भासै,
यह संशय मन बुद्धि विनासै ४८

टीकाः—जैसै रज्जुमें सर्प मिथ्या है, तैसै आत्मामें भवदुःख मिथ्या कह्या; तहां दृष्टांतके ज्ञानबिना दार्ष्टांतका ज्ञान होवै नहीं. यातें रज्जुमें सर्प कैसे भासै? यह दृष्टांतमें प्रश्न है. ४८

## अथ प्रश्नअभिप्राय.

### चौपाई.

असतख्याति पुनि आतमख्याती,
ख्याति अन्यथा अरुअख्याति;

सुने च्यारिमत भ्रमवगी ठौरा,
मानूं कौन कहौ यह ब्यौरा. ४९

टीकाः—जहां रज्जुमैं सर्प, औ सीपीमैं रूपा, इत्यादिक भ्रम है, तहां च्यारिमत सुने हैंः—सून्यवादी असत्यख्याति कहै हैं. छिनकविज्ञानवादी आत्मख्याति कहै हैं. न्याय औ वैसेषिकमतमैं अन्यथाख्याति कहै हैं. सांख्य औ प्रभाकर अख्याति कहै हैं. तहां,

सून्यवादीका यह अभिप्राय हैः—जेवरीदेसमैं सर्प अत्यंत असत है. तैसै अन्यदेसमैं बी अत्यंतअसत है. ऐसैं अत्यंतअसतसर्पकी जेवरीदेसमैं प्रतीति होवै है; याकूं असत्यख्याति कहै हैं. अत्यंतअसत्यसर्पकी ख्याति कहिये भान औ कथन है.

विज्ञानवादीका यह अभिप्राय हैः—जेवरीदेसमैं तथा अन्यदेसमैं बुद्धिके वाहिर कहूं सर्प है नहीं. सारेपदार्थ बुद्धिसैं भिन्न नहीं. किंतु सर्वपदार्थनके आकारकूं बुद्धिही धारै है. सो बुद्धि छनिकविज्ञानरूप है. छनछनमैं नास औ उत्पत्तिकूं प्राप्त होवै जो विज्ञान, सोई सर्परूप प्रतीत होवै है. याकूं आत्मख्याति कहै हैं. आत्मा कहिये छनिकविज्ञानरूप बुद्धि, ताका सर्परूपसैं ख्याति कहिये भान औ कथन है.

नैयायिकका औ वैसेषिकका यह अभिप्राय हैः—बंबीआदिक स्थानमैं साचासर्प है, ताकूं नेत्रसैं देखे है. नेत्रमैं दोष है, ताके बलतैं सन्मुख समीप प्रतीत होवै है. यद्यपि साचासर्प औ नेत्रके मध्य भीतिआदिक अंतराय है,

तथापि दोषसहित नेत्रतैं अंतरायसहित बी सर्प दिखै है. औ यामैं कोउ ऐसी संका करैः— दोषतैं सामर्थ्य घटै है, वधै नहीं. जैसे जठराग्निमैं पाचनसामर्थ्य वात पित्त कफदोषतैं घटै है. तैसे नेत्रमैं बी तिमिरादि दोषतैं सामर्थ्य घटी चाहिये. औ बंबीआदिक स्थानमैं स्थित सर्पका दोषसहित नेत्रतैं ज्ञान कह्या, तहां सुद्धनेत्रसैं तौ परदेसमैं स्थितका प्रत्यछ ज्ञान होवै नहीं; औ दोषसहितसैं होवै है. यातैं दोषतैं नेत्रका सामर्थ्य अधिक होवै है; यह माननैमैं कोई दृष्टांत नहीं सो संका बनै नहीं. काहेतैं किसकूं पित्तदोषतैं ऐसा रोग होवै है; जो चतुर्गुनभोजन कियेतैं बी तृप्ति होवै नहीं. जैसें पित्तदोषतैं जठराग्निमैं पाचनसामर्थ्य वधै है, तैसे नेत्रमैं बी तिमिरादि दोषतैं परदेसमैं स्थितसर्पके प्रत्यछ करनैका सामर्थ्य वधै है. इसरीतिसैं बंबीआदिक देसमैं स्थित सर्पका अन्यथा कहिये औरप्रकारतैं सन्मुख जेवरीदेसमैं जो ख्याति कहिये भान औ कथन, सो अन्यथाख्याति कहिये है. औ

चिंतामनिकार ( नैयायिक )का यह मत हैः— जो दोषसहित नेत्रतैं बंबीमैंस्थित सर्पका ज्ञान होवै, तौ बीचके और पदार्थनका ज्ञान बी हुवा चाहिये. यातैं परदेसमैं स्थित वस्तुका नेत्रसैं ज्ञान होवै नहीं; किंतु दोषसहित नेत्रतैं जेवरीका निजरूपतैं भान होवै नहीं, सर्परूपतैं भान होवै है. यातैं जेवरीकाहीं अन्यथा कहिये और प्रकारतैं सर्परूपतैं जो ख्याति कहिये भान औ कथन, सो अन्यथाख्याति कहिये है.

औ अख्यातिवादीका यह अभिप्राय हैः— जो असतकी प्रतीति होवै, तौ वंध्यापुत्र, औ ससस्ंगकी प्रतीति हुई चाहिये. यातैं असतख्याति असंगत है. छनिकविज्ञानकाहीं आकार सर्पादिक होवै तौ छनमात्रसैं अधिककाल स्थिर प्रतीति नहीं हुई चाहिये. यातैं आत्मख्याति असंगत है. औ अन्यथाख्यातिकी प्रथमरीति तौ चितामनिके मतसैं दूषितही है. तैसै चितामनिकी रीतिसैं वी अन्यथाख्यातिमत असंगत है. काहेतैं, ज्ञेयके अनुसार ज्ञान होवै है. ज्ञेय रज्जु औ सर्पका ज्ञान, यह कहना अत्यंतविरुद्ध है. यातैं यहरीति माननी योग्य हैः—

जहां रज्जुमैं सर्पभ्रम है, तहां रज्जुसैं नेत्रका अपनी वृत्तिद्वारा संबंध होयके रज्जुका इदंरूपतैं सामान्यज्ञान होवै है, औ सर्पकी स्मृति होवै है. " यह सर्प है " यामैं दोज्ञान हैंः— " यह " अंस तौ रज्जुका सामान्यप्रत्यछज्ञान है, औ " सर्प है " ऐसैं सर्पका स्मृतिरूप ज्ञान है. इसरीतिसैं " यह सर्प है " इहां दोज्ञान हैं; परंतु भयदोष प्रमातामैं, औ तिमिरदोष प्रमानमैं, ताके वलतैं पुरुषकूं ऐसा विवेक नहीं होता, जो मेरेकूं दोज्ञान हुवे हैं. यद्यपि " यह " अंस रज्जुका सामान्यज्ञान यथार्थ है. औ पूर्व देखे सर्पका स्मृतिज्ञान वी यथार्थही है. तौ वी मेरेकूं दोज्ञान हुवे हैं; तिनमैं रज्जुका सामान्यप्रत्यछज्ञान है; औ सर्पका स्मृतिज्ञान है; यह विवेक नहीं होवै है. तिस दोज्ञानके अविवेककूंही सांख्य प्रभाकरमतमैं भ्रम कहै हैं. यही रीति सारेभ्रमस्थलमैं जान-

नी. या रीतिसैं रज्जुआदिकनमैं सर्पादिक भ्रम जहां होवै, तहां च्यारिमत सुने हैं. तिनमैं नीकामत होई सो कहो; ताहीकूं मैं मानूं. यह शिष्यका प्रश्न है. ४९

## श्रीगुरुरुवाच.

### दोहा.

ख्यातिअनिर्वचनीय लखि, पंचम तिनतैं और;
युक्तिहीन मत च्यारि ये, मानहु भ्रमकी ठौर. ५०

टीकाः— हे सिष्य ! तिन च्यारिख्यातितैं औरही भ्रमकी ठौर अनिर्वचनीयख्याति पंचम लख. औ असतख्याति, आत्मख्याति, अन्यथाख्याति, अख्याति; ये च्यारिमत युक्तिहीन हैं. जैसै उत्तर उत्तर मतनिरूपनमैं तीनिमत असंगत कहे; तैसैं अख्यातिमत बी असंगत है. काहेतैं "यह सर्प है" या ज्ञानमैं प्रथम "यह" अंस तौ रज्जुका सामान्यज्ञानप्रत्यक्ष है, औ "सर्प है" इतना अंस पूर्वदृष्टसर्पका स्मरनज्ञान है. यह अख्यातिवादीका मत है. तहां पूर्वदृष्टसर्पका स्मरनही मानैं, औ सन्मुख रज्जुदेसमैं सर्पका ज्ञान नहीं मानै, तौ सन्मुखरज्जुतैं पुरुषकूं भय होयके उलटा भागै है, सो भय औ भागना नहीं हुवा चाहिये. यातैंः—

सन्मुख रज्जुदेसमैंही सर्पकी प्रतीति होवै है; पूर्वदृष्टसर्पकी स्मृति नहीं. किंवाः—रज्जुका विसेषरूपतैं यथार्थज्ञान हुयेतैं अनंतर ऐसा बाध होवै हैः—"मेरेकूं रज्जुमैं सर्पकी प्रतीति मिथ्या होती भई." या बाधतैं बी रज्जुमैंही सर्पकी प्र-

तीति होवै है, पूर्वदृष्टसर्पकी स्मृति नहीं. औ "यह सर्प है" इहां ज्ञान एकही प्रतीत होवै है, दो नहीं. औ एककालमैं अंतःकरनतैं स्मृतिरूप औ प्रत्यछरूप दोज्ञान होवै बी नहीं. यातैं अख्यातिमत बी अत्यंत असंगत है. इन च्यारूमतनका प्रतिपादन औ खंडन, विवरन औ स्वराज्यसिद्धिआदिक ग्रंथनमैं विस्तारसैं लिख्या है. प्रतिपादन औ खंडनकी युक्ति कठिन है, यातैं संछेपतैं जिज्ञासुकूं रीति जनाई है; विस्तार हमनैं लिख्या नहीं.

सिद्धांतमैं अनिर्वचनीयख्याति है; ताकी यह रीति है:— अंतःकरनकी वृत्ति नेत्रादिद्वारा निकसिके विषयके समान आकारकूं प्राप्त होवै है; तातैं विषयका आवरन भंग होयके ताकी प्रतीति होवै है. तहां प्रकास बी सहायक होवै है. प्रकासबिना पदार्थकी प्रतीति होवै नहीं. जहां रज्जुमैं सर्पभ्रम होवै है, तहां अंतःकरनकी वृत्ति नेत्रद्वारा निकसि बी, औ रज्जुसैं ताका संबंध बी होवै; परंतु तिमिरादिकदोष प्रतिबंधक हैं; यातैं रज्जुके समानाकारवृत्तिका स्वरूप होवै नहीं; यातैं रज्जुका आवरन नासै नहीं. इसरीतिसैं आवरनभंगका निमित्त वृत्तिका संबंध हुयेतैं बी, जब रज्जुका आवरन भंग होवै नहीं, तब रज्जुचेतनमैं स्थित अविद्यामैं छोभ होयके, सो अविद्या सर्पाकारपरिनामकूं प्राप्त होवै है. सो अविद्याका कार्य सर्प सत होवै, तौ रज्जुके ज्ञानसैं ताका बाध होवै नहीं, औ बाध होवै है; यातैं सत नहीं. औ असत होवै तौ वंध्यापुत्रकी न्याई प्रतीति नहीं होवै, औ प्रतीति

होवै है; यातैं असत वी नहीं. किंतु सतअसतसैं विलछन अनिर्वचनीय है. सुक्तिआदिकनमैं रूपादिक वी याहि रीतिसैं अनिर्वचनीय उत्पन्न होवै है. ता अनिर्वचनीयकी जो ख्याति कहिये प्रतीति औ कथन, सो अनिर्वचनीयख्याति कहिये है.

जैसै सर्प अविद्याका परिनाम है, तैसे ताका ज्ञानरूप वृत्ति वी अविद्याकाहीं परिनाम है, अंतःकरनका नहीं काहेतैं, जैसै रज्जुज्ञानतैं सर्पका बाध होवै है, तैसै ताके ज्ञानका वी बाध होवे है. अंतःकरनका ज्ञान होवै तौ बाध नहीं हुवा चाहिये, यातैं ज्ञान वी सर्पकी न्याई अविद्याका कार्य सतअसतसैं विलछन अनिर्वचनीय है. परंतु रज्जुउपहितचेतनमैं स्थित तमोगुनप्रधान अविद्याअंसका परिनाम सर्प है औ साछीचेतनमैं स्थित अविद्याके सत्वगुनका परिनाम वृत्तिज्ञान है. रज्जुचेतनकी अविद्याका जा समय सर्पाकार परिनाम होवै है,ताही समय साछी आश्रित अविद्याका ज्ञानाकार परिनाम होवै है. काहेतैं, रज्जुचेतन आश्रित अविद्यामैं छोभका जो निमित्त है, ता निमित्तसैंही साछीआश्रित अविद्याअंसमैं छोभ होवै है. यातैं भ्रमस्थलमैं सर्पादिक विषय,औ तिनका ज्ञान, एकंही समय उत्पन्न होवै है. औ रज्जुआदिक अधिष्ठानके ज्ञानतैं एकही समय लीन होवै या रीतिसैं सर्पादिक भ्रमविषै बाह्य अविद्याअंस सर्पादिक विषयका उपादानकारन है, औ साछीचेतनआश्रित अंतरअविद्याअंस तिनके ज्ञानरूप वृत्तिका उपादानकारन है.

औ स्वप्नमैं तौ साक्षीआश्रित अविद्याकाहीं तमोगुनअंस विषयरूप परिनामकूं प्राप्त होवै है. ता अविद्यामैं सत्वगुनअंस ज्ञानरूप परिनामकूं प्राप्त होवै है. यातैं स्वप्नमैं अंतरअविद्याही विषय औ ज्ञान दोनूंका उपादानकारन है. याहीतैं बाह्यरज्जुसर्पादिक, औ अंतरस्वप्नपदार्थ, साक्षीभास्य कहिये हैं. अविद्याकी वृत्तिद्वारा जाकूं साक्षी भासै, कहिये प्रकासै सो साक्षीभास्य कहिये.

रज्जुआदिकनमैं अनिर्वचनीयसर्पादिक, औ तिनका ज्ञान भ्रम कहिये है; औ अध्यास कहिये है. सो भ्रम अविद्याका परिनाम है; औ चेतनका विवर्त है. उपादान कारनके समानस्वभाववाला अन्यथास्वरूप परिनाम कहिये है. औ अधिष्ठानतैं विपरीतस्वभाववाला अन्यथास्वरूप विवर्त कहिये है. उपादानकारन अविद्या, सो अनिर्वचनीय है. तैसै रज्जुमैं सर्प औ ताका ज्ञान बी अनिर्वचनीय है. यातैं रज्जुसर्प औ ताका ज्ञान अविद्याके समानस्वभाववाला अन्यथास्वरूप कहिये अविद्यातैं औरप्रकारका आकार है. सो अविद्याका परिनाम है. तैसै रज्जुअवच्छिन्न अधिष्ठान, चेतन सतरूप है, सर्प औ ताका ज्ञान सतसैं विलक्षन हैं. यातैं रज्जुसर्प औ ताका ज्ञानअधिष्ठानचेतनतैं विपरीतस्वभाववाला, अन्यथास्वरूप कहिये चेतनसैं और प्रकारका आकार हैं.

मिथ्यासर्पका अधिष्ठान रज्जुउपहितचेतन है, रज्जु नहीं. काहेतैं, सर्पकी न्याई रज्जु बी कल्पित है; कल्पितवस्तु अ-

न्यकल्पितका अधिष्ठान बनै नहीं. यातैं रज्जुउपहित चेतनही अधिष्ठान है, रज्जु नहीं. औ रज्जुविशिष्टकूं अधिष्ठान कहैं, तौ बी रज्जु औ चेतन दोनूं अधिष्ठान होवैंगे. तहां रज्जुभागमैं अधिष्ठानपना बाधित है. यातैं रज्जुउपहितचेतनही अधिष्ठान हैं, रज्जुविशिष्टचेतन नहीं. तैसें सर्पके ज्ञानका साक्षीचेतन अधिष्ठान है. यारीतिसैं भ्रमस्थानमैं विषयका औ ताके ज्ञानका उपाधिभेदसैं अधिष्ठान भिन्न है; एक नहीं. औ विशेषरूपतैं रज्जुकी अप्रतीति अविद्यामैं क्षोभद्वारा दोनूंकी उत्पत्तिमैं निमित्त हैं. तैसै रज्जुका ज्ञान दोनूंकी निवृत्तिमैं बी निमित्तकही है. याकेविषै,

## ऐसी संका होवै है:--

रज्जुके ज्ञानतैं सर्पकी निवृत्ति बनै नहीं. काहेतैं, मिथ्यावस्तुका जो अधिष्ठान होवै, ता अधिष्ठानके ज्ञानतैं मिथ्याकी निवृत्ति होवै है, यह अद्वैतवादका सिद्धांत है. औ मिथ्या सर्पका अधिष्ठान रज्जुउपहितचेतन है; रज्जु नहीं: यातैं रज्जुके ज्ञानतैं सर्पकी निवृत्ति बनै नहीं या संकाका

## यह समाधान है:--

रज्जुआदिक जडपदार्थका ज्ञान अंतःकरनकी वृत्तिरूप होवै, तहां आवरनभंग वृत्तिका प्रयोजन है. सो आवरन अज्ञानकी सक्ति है. यातैं आवरन जडके आश्रित है नहीं, किंतु जडका अधिष्ठान जो चेतन, ताके आश्रित है. यातैं रज्जुसमानाकार अंतःकरनकी वृत्तितैं रज्जुअवछिन्नचेतनका-

ही आवरन भंग होवै है. वृत्तिमैं जो चिदाभास है, तातैं रज्जुका प्रकास होवै है. चेतन स्वयंप्रकास है, तामैं आभासका उपयोग नहीं. यह प्रक्रिया संपूर्ण आगे प्रतिपादन करैंगे. इसरीतिसैं चिदाभाससहित अंतःकरनकी वृत्तिरूप ज्ञानमैं जो वृत्तिभाग, ताका आवरनभंगरूप फल चेतनमैं होवै है, औ चिदाभासभागका प्रकासरूप फल रज्जुमैं होवै है. यातैं वृत्तिज्ञानका केवलजडरज्जु विषय नहीं. किंतु अधिष्ठानचेतनसहित रज्जु साभासवृत्तिका विषय है. इसीकारनतैं सिद्धांतग्रंथमैं यह लिख्या है— "अंतःकरणजन्य वृत्तिज्ञान सारे ब्रह्मकूं विषय करै है." या प्रकारसैं रज्जुज्ञानसैं निरावरन होयके सर्पका अधिष्ठान रज्जुअवच्छिन्नचेतनका बी निजप्रकासतैं भान होवै है. यातैं रज्जुका ज्ञानही सर्पके अधिष्ठानका ज्ञान है. तातैं सर्पकी निवृत्ति संभवै है.

## अन्यसंका.

यद्यपि या रीतिसैं सर्पकी निवृत्ति रज्जुके ज्ञानतैं संभवै है, तथापि सर्पके ज्ञानकी निवृत्ति संभवै नहीं काहेतैं; सर्पका अधिष्ठान रज्जुअवच्छिन्न चेतन है. औ सर्पके ज्ञानका अधिष्ठान साक्षीचेतन है. पूर्वउक्तप्रकारतैं रज्जुज्ञानसैं रज्जुअवच्छिन्नचेतनकाही भान होवै है; साक्षीचेतनका नहीं. यातैं रज्जुका ज्ञान हुयेतैं बी सर्पज्ञानका अधिष्ठान साक्षीचेतन अज्ञात है. औ अज्ञातअधिष्ठानमैं कल्पितकी निवृत्ति होवै नहीं. किंतु ज्ञातअधिष्ठानमैंही कल्पितकी निवृत्ति होवै है. यातैं रज्जुज्ञानतैं सर्पज्ञानकी निवृत्ति बनै नहीं. ताका

# समाधान यह है:—

विषयके आधीन ज्ञान होवै है. विषय जो सर्प, ताकी निवृत्ति होतेही सर्पके ज्ञानकी विषयके अभावतैं आपही निवृत्ति होवै है.

और जो ऐसै कहैं:—कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानज्ञानविना होवै नहीं ; औ सर्पका ज्ञान बी कल्पित है ; ताका अधिष्ठान साक्षीचेतन है ; ताके ज्ञानविना कल्पितसर्पके ज्ञानकी निवृत्ति बनै नहीं.

ताका समाधान यह है:—निवृत्ति दोप्रकारकी होवै है. एक तौ अत्यंतनिवृत्ति होवै है, औ दूसरी कारनमैं जो लय, सो बी निवृत्ति कहिये है. कारनसहित कार्यकी निवृत्ति अत्यंतनिवृत्ति कहिये है. सारेकल्पितवस्तुका कारन अधिष्ठानके आश्रित अज्ञान है. ता अज्ञानसहित कल्पितकार्यकी निवृत्ति तौ अधिष्ठानज्ञानतैंही होवै है. परंतु कारनमैं लयरूप जो निवृत्ति, सो अधिष्ठानज्ञानविना बी होवै है. जैसै सुषुप्ति औ प्रलयमैं सर्वपदार्थनका अज्ञानमैं लय अधिष्ठानज्ञानसैं बिना होवै है. तहां सर्वपदार्थनके लयमैं निमित्त, भोगके सन्मुख कर्मका अभाव है. तैसै अधिष्ठान साक्षीके ज्ञानविनाही सर्पज्ञानका लय होवै है. तहां सर्पज्ञानका विषय जो सर्पताका; अभावतैं सर्पज्ञानके लयमैं निमित्त है. या प्रकारसैं सर्पकी निवृत्ति रज्जुज्ञानतैं होवै है. औसर्पज्ञानका विषय जो सर्प,ताके अभावतैं सर्पज्ञानका लय होवै है.

अथवा, सर्प औ ताका ज्ञान दोनूंकी निवृत्ति रज्जुज्ञानतैंही होवै है. काहेतैं, जब रज्जुका प्रत्यछज्ञान होवै तब अंतःकरनकी वृत्ति नेत्रद्वारा निकसिके रज्जुदेसमैं प्राप्त होवै है. औ रज्जुके समान वृत्तिका आकार होवै है. यातैं रज्जुके प्रत्यछसमय वृत्तिउपहितचेतन, औ रज्जुउपहितचेतन दोनूं एक होवै है. तिनका भेद रहै नहीं. यामैं यह हेतु है:—चेतनका स्वरूपसैं तौ भेद कहूं बी नहीं, किंतु उपाधिके भेदसैं चेतनका भेद होवै है. वृत्तिउपहितचेतन औ रज्जुउपहितचेतनका भेदक उपाधि, वृत्ति औ रज्जु है. सो वृत्ति औ रज्जु भिन्नभिन्न देसमैं स्थित होवैं, जब तौ उपाधिवाले चेतनका भेद होवै है, औ दोनूंउपाधि एकदेसमैं स्थित होवै, तब उपहितचेतनका भेद बनै नहीं. यह वार्ता वेदांतपरिभाषादिक ग्रंथनमैं लिखी है. भिन्नदेसमैं स्थित उपाधितैंही उपहितचेतनका भेद होवै है. एकदेसमैं जब दोनूंउपाधि स्थित बी होवैं, तब दोउउपाधिसैं उपहित बी चेतन एकही होवै है. या प्रकारतैं रज्जुके प्रत्यछज्ञान समय रज्जुउपहितचेतन औ वृत्तिउपहितचेतन एक है. तहां साछीचेतनही वृत्तिउपहितचेतन है, काहेतै, अंतःकरन औ ताकी वृत्तिमैं स्थित जो तिनका प्रकासक चेतनमात्र, सो साछी कहिये है. इसरीतिसैं रज्जुज्ञान समय साछीचेतन औ रज्जुउपहित चेतनका अभेद होवै है. औ रज्जुउपहितचेतनका रज्जुज्ञानसैं भान होवै है. औ रज्जुउपहित चे. है. अभिन्न साछीका बी रज्जुज्ञानसैं भान होवै है. या प्रकारतैं

रज्जुज्ञान समय अधिष्ठानसाछीका भान होनैतैं कल्पितसर्प-ज्ञानकी निवृत्ति संभवै है. किंवाः—

कूटस्थदीपमैं विद्यारण्यस्वामीनैं यह प्रक्रिया कही हैः— "आभाससहित अंतःकरनकी वृत्ति इंद्रियद्वारा निकसिके घटादिक विषयकूं प्रकासै है. घटादिक विषय, औ तैसै आभाससहित वृत्तिरूप तिनका ज्ञान, तथा आभाससहित अंतःकरनरूप ज्ञाता, इन तीनकूं साछी प्रकासै है." "यह घट है" इसरीतिसैं आभाससहित वृत्तिसैं घटमात्रका प्रकास होवै है. "मैं घटकूं जानूं हूं" या रीतिसैं "मैं" शब्दका अर्थज्ञाता; औ ज्ञेय घट, औ ताका ज्ञान; या त्रिपुटीका साछीसैं प्रकास होवै है. या प्रकारतैं सर्वत्रिपुटीयौंका प्रकासक साछी है. साछी आप अज्ञात होवै, तौ त्रिपुटीका ज्ञान साछीसैं बनै नहीं. यातैं सर्वत्रिपुटीयौंके ज्ञानमैं साछीका ज्ञान अवस्य होवै है. ता साछीज्ञानतैं सर्पज्ञानकी निवृत्ति संभवै है. या पूर्वरीतिसैं सर्प औ ताके ज्ञानका अधिष्ठान भिन्न भिन्न कह्या. तामैं इतनै संकासमाधान है. या पछमैं संकासमाधानरूप विवाद और बी बहुत है. यातैं,

सर्प औ ताके ज्ञानका अधिष्ठान एकही है. यह पछ कहै हैंः—तहां बाह्य जो रज्जुचेतन है, ताकूं सर्प औ ताके ज्ञानका अधिष्ठान कहैं, तौ बनै नहीं. काहेतैं, जितनै ज्ञान होवै हैं, सो प्रमाता अथवा साछीके आश्रित होवै हैं. बाह्य जो रज्जुचेतन, ताके आश्रित ज्ञान बनै नहीं. तैसै सर्प औ सर्पके ज्ञानका अधिष्ठान अंतःकरनउपहित साछीचेतनकूं

मानै, तौ सरीरके अंतर अंतःकरनदेसमैं सर्पकी प्रतीति चाहिये; रज्जुदेसमैं सर्पकी प्रतीति नहीं चाहिये. अंतर उपजे सर्पकी बाहिर प्रतीति मायाके बलतैं मानैं, तौ आत्मख्यातिमतकी सिद्धि होवैगी. इसरीतिसैं रज्जुउपहितचेतन, ज्ञानका अधिष्ठान बनै नहीं. औ अंतःकरनउपहितचेतन, सर्पका अधिष्ठान बनै नहीं. यातैं सर्प औ ताके ज्ञानका अधिष्ठान एक नहीं बनै. तथापि रज्जुके समीप प्राप्त जो अंतःकरनकी इदमाकारवृत्ति, तामैं स्थित चेतनके आश्रित अविद्या, सर्पाकार औ ज्ञानाकारपरिनामकूं प्राप्त होवै है. वृत्तिउपहितचेतनमैं स्थित अविद्याका तमोगुनअंस सर्पका उपादानकारनहै. ताहीमैं स्थित सत्वगुनअंस सर्पके ज्ञानका उपादानकारन है. सर्प औ ताके ज्ञानका वृत्तिउपहितचेतन अधिष्ठानं है. वृत्ति, रज्जुदेसमैं बाहिर गई, यातैं वृत्तिउपहितचेतन बी बाहिर है. यातैं सर्पका आश्रय बनै है. जितना अंतःकरनका स्वरूप होवै, उतनाही साक्षीका स्वरूप होवै है. सरीरके अंतर स्थित जो अंतःकरन, सोई वृत्तिस्वरूपपरिनामकूं प्राप्त होवै है. यातैं वृत्तिउपहितचेतन साक्षी है. यातैं ज्ञानका आश्रय बनै है. रज्जुका जब साक्षातकार होवै, तब रज्जुचेतन औ वृत्तिचेतन दोनूं एक होवै हैं. यातैं रज्जुके ज्ञानसैं सर्प औ ताके ज्ञानकी निवृत्ति बी बनै है.

जहां एक रज्जुमैं दसपुरुषनकूं किसीकूं सर्प, किसीकूं दंड, किसीकूं माला, किसीकूं पृथिवीकी दरार, किसीकूं जलधारा; इसरीतिसैं भिन्नभिन्न प्रतीति होवै, अथवा, सर्व-

कूं सर्पही प्रतीत होवै, तहां जा पुरुषकूं रज्जुका साछातकार होवै है, ताकी वृत्तिचेतनमैं कल्पित अध्यासकी निवृत्ति होवै है. जाकूं रज्जुज्ञान नहीं होवै, ताके अध्यासकी निवृत्ति होवै नहीं. यातैं वृत्तिचेतनही कल्पितका अधिष्ठान है, रज्जुआदिकविषय उपहितचेतन नहीं. जो रज्जुउपहित चेतनकूं सर्पदंडादिकनका अधिष्ठान मानैं, तौ दसपुरुषनकुं प्रतीत जो होवै दसपदार्थ, सो एकएककूं सारे प्रतीत हुये चाहिये. औ हमारी रीतिसैं तौ जाकी वृत्तिचेतनमैं जो पदार्थ कल्पित है, सो ताहीकूं प्रतीत होवै; अन्यकूं नहीं. इस रीतिसैं बाह्यसर्पादिक औ तिनके ज्ञानका वृत्तिउपहितसाछी अधिष्ठान है. स्वप्नके पदार्थ, औ तिनके ज्ञानका बी अंतःकरन उपहितसाछीही अधिष्ठान है. या प्रकारतैं सत असतसैं विलछन जो अनिर्वचनीय अविद्याका परिनाम अनिर्वचनीयसर्पादिक, तिनकी ख्याति कहिये प्रतीति औ कथन, सो अनिर्वचनीयख्याति कहिये है. ५०

## शिष्य उवाच.

### दोहा.

यह मिथ्या परतीत व्है, जामैं जगत अपार;
सो भगवन मोकूं कहौ, को याको आधार. ५६

अर्थ स्पष्ट. ५१

## श्रीगुरुरुवाच.

### दोहा.

तव निजरूप अज्ञानतैं, व्है मिथ्याजग भान;
अधिष्ठान आधार तूं, रज्जुभुजंग समान.५२

टीकाः— हे सिष्य! तेरा जो निजरूप कहिये ब्रह्मरूप करिके अज्ञान, तिसतैं मिथ्याजगत प्रतीत होवै है. यातैं जगतका आधार औ अधिष्ठान तूं है. जैसै रज्जुके अज्ञानतैं मिथ्याभुजंग प्रतीत होवै है, तहां मिथ्याभुजंगका आधार औ अधिष्ठान रज्जु है. यद्यपि मिथ्यासर्पका अधिष्ठान मुख्य द्वितीयपक्षमैं वृत्तिउपहितचेतन है, औ प्रथमपक्षमैं रज्जुउपहितचेतन है, किंसीपक्षमैं रज्जुअधिष्ठान नहीं; तथापि प्रथमपक्षमैं चेतनमैं अधिष्ठानपनैंकी उपाधि रज्जु है. यातैं स्थूलदृष्टिसैं रज्जु अधिष्ठान कहिये है. जैसै मिथ्याभुजंगका अधिष्ठान तथा आधार रज्जु है, तैसै मिथ्याजगतका अधिष्ठान औ आधार तूं है.

या स्थानमैं यह रहस्य है:— जैसै जेवरीके दोस्वरूप हैं; एक तौ सामान्यरूप है, एक विसेषरूप है. सामान्यरूप "इदं" है. विसेषरूप "रज्जु" है. "यह सर्प है" या रीतिसैं मिथ्यासर्पसैं अभिन्न होयके भ्रांतिकालमैं बी प्रतीत होवै जो "इदंरूप" सो सामान्यरूप है. औ जो स्वरूप भ्रांतिकालमैं प्रतीत न होवै, किंतु जाकी प्रतीति हुवेतैं भ्रांति दूरि होवै, सो रज्जुका विसेषरूप है. तैसै आत्माके बी

दोस्वरूप हैं. एक सामान्यरूप, दूसरा विसेषरूप. सतरूप सामान्य है. असंगता कूटस्थता नित्यमुक्तादिक विसेषरूप है. काहेतें, "स्थूलसूछमसंघात है." यामें स्थूल सूछमसंघातकी भ्रांतिसमय बी मिथ्यासंघातसें अभिन्न होयके सतरूप प्रतीत होवै है. यातें आत्माका सतस्वरूप सामान्यरूप है. औ स्थूलसूछमसंघातकी भ्रांतिसमय आत्माका असंग कूटस्थ नित्यमुक्तस्वरूप प्रतीत होवै नहीं, किंतु असंगादिस्वरूप आत्माकी प्रतीति हुवेतें संघातभ्रांति दुरि होवै है. यातें असंगता, कूटस्थता, नित्यमुक्तता, व्यापकतादिक विसेषरूप हैं. सर्वभ्रांतिमें सामान्यरूप आधार कहिये है. औ विसेषरूप अधिष्ठान कहिये है. जैसे सर्पका आश्रय जो जेवरी, ताका सामान्य "इदं". स्वरूप सर्पका आधार है औ विसेष रज्जुस्वरूप अधिष्ठान है. तैसे मिथ्याप्रपंचका आश्रय जो आत्मा ताका सामान्य सतरूप प्रपंचका आधार है. औ असंगतादिक विसेषरूप अधिष्ठान है. इसरीतिसें आधार औ अधिष्ठानका सर्वज्ञात्म नाम मुनिनै किंचित् भेद प्रतिपादन किया है. ५२

# शिष्य उवाच.

## दोहा.

भगवन मिथ्याजगतको, द्रष्टा कहिये कौन;
अधिष्ठान आधार जो, द्रष्टा होय न तौन. ५३

अर्थ स्पष्ट. भाव यह है:— जगतका आधार औ अधि-

ष्ठान आत्मा है, यातैं जगतका दृष्टा आत्मासैं भिन्न कह्या चाहिये, जैसै सर्पका आधार औ अधिष्ठान जो रज्जु, तासैं भिन्न पुरुष सर्पका दृष्टा है. ५३

## श्रीगुरुरुवाच.

### चौपाई.

मिथ्यावस्तु जगतमैं जे हैं,
अधिष्ठानमैं कल्पित ते हैं;
अधिष्ठान सो द्विविध पिछानहु,
इक चेतन दूजो जड जानहु. ५४
अधिष्ठान जडवस्तु जहां है,
दृष्टा तातैं भिन्न तहां है;
जहां होय चेतन आधारा,
तहां न दृष्टा होवै न्यारा. ५५

अर्थ स्पष्ट. भाव यह है:— जहां जड अधिष्ठान होवै, तहां अधिष्ठानसैं भिन्न दृष्टा होवै है. जहां चेतन अधिष्ठान होवै, तहां अधिष्ठानही दृष्टा होवै है, भिन्न नहीं. ५५

### दोहा.

चेतन मिथ्यास्वप्नको, अधिष्ठान निर्धार,
सोई दृष्टा भिन्न नहिं, तैसै जगत विचार. ५६

टीका:— जैसैं स्वप्नका अधिष्ठान साक्षीचेतन है, सोई

स्वमका दृष्टा है, तैसैं जगतका आत्माही अधिष्ठान है, सोई दृष्य है. यह संका औ समाधान स्थूलदृष्टिसैं जेवरीकूं सर्पका अधिष्ठान मानिके कहे है. औ सिद्धांतमतमैं तौ सर्पका अधिष्ठान साक्षीचेतन है, सोई दृष्टा है. यातैं सारेकल्पितका अधिष्ठानही दृष्टा है. संका समाधान बनै नहीं. ५६

## दोहा.

इम मिथ्या संसारदुख, व्है तोमैं भ्रम भान;
ताकी कहा निवृत्ति तूं, चाहै सिष्य सुजान. ५७

टीकाः— हे सिष्य! इसरीतिसैं तेरेविषै संसाररूपी दुःख, मिथ्याही भ्रांतिसैं प्रतीत होवै है, ता मिथ्याकी निवृत्तिकी चाह बनै नहीं. दृष्टांतः— जैसै बाजीगरनै किसी पुरुषकूं मिथ्यासत्रु मंत्रके बलसैं दिखाया होवै, ताके मारनैविषै वह पुरुष उद्योग नहीं करता. तैसै मिथ्यासंसारकी निवृत्तिकी चाह बनै नहीं. ५७

## शिष्य उवाच.

### चौपाई.

जग यद्यपि मिथ्यां गुरुदेवा,
तथापि मैं चाहूं तिहि छेवां;
स्वप्न भयानक जाकूं भासै,
करि साधन जन जिम तिहि नासै. ५८

यातैं व्है जातैं जग हाना,
सो उपाव भाखो भगवाना;
तुम समान सतगुरु नहिं आना,
श्रवन फूक दे वंचक नाना. ५९

टीकाः– हे भगवन्! आपनै कह्या जो "जगत तेरेविषै मिथ्यारूप करिके है: औ सत्यरूप करिके नहीं" सो यद्यपि सत्य है, तथापि हे भगवन्! सो मिथ्यारूप करिके वा जा उपाय करिके मरनादिक संसार मेरेविषै भान न होवै, सो उपाय आप कहो. और आपनै कह्याथा, जो "मिथ्याकी निवृत्तिवास्ते साधन चाहिये नहीं." सो वार्ता वी सत्य है परंतु हे भगवन्! जाकूं मिथ्यापदार्थ वी दुःखका हेतु होवै ताकूं वह मिथ्या वी साधनसैं दूरि करना योग्य है. जैसै किसी पुरुषकूं प्रतिदिन भयानकस्वप्न आवते होवैं, सो मिथ्या वी हैं परंतु तिनके वी दूरि करनैकूं जप औ पादप्रक्षालनादिक नानासाधन अनुष्ठान करै हैं; तैसैं यह संसार मिथ्या वी है, परंतु जन्मादिकदुःखका हेतु मेरेकूं प्रतीत होवै है. यातैं संसारकी निवृत्ति चाहूं हूं, आप कृपा करिके उपाय बतावौ. ५९

## श्रीगुरुरुवाच.

### सोरठा.

सो मैं कह्यो बखानि, जो साधन तैं पूछियो;

निज हियनिश्चयं आनि, रहैन रंचक खेदजग. ६०

टीका:— हे सिष्य! जो तैं जगतरूपी दुःखकी निवृत्तिका साधन पूछया, सो हम तेरेकूं प्रथमही कही दिया. तिसवीषै तूं दृढ निश्चय कर, तातैं जगतरूपी खेद रहै नहीं. ६०

दोहा.

निज आतम अज्ञानतैं, व्है प्रतीत जगखेद;
नसै सु ताके बोधतैं, यह भाखत मुनि वेद. ६१
जग मोमैं नहिं "ब्रह्म मैं" "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान;
सो तोकूं सिष मैं कह्यो, नहिं उपाय को आन. ६२

टीका:—हे सिष्य! अपनै आत्मस्वरूपके अज्ञानतैं जगतरूपी खेद प्रतीत होवै है, सो आत्मज्ञानतैं मिटै है, जो वस्तु जाके अज्ञानतैं प्रतीत होवै, सो ताके ज्ञानतैं मिटै है, यह नियम है. जैसे रज्जुके अज्ञानतैं सर्प प्रतीत होवै है, सो रज्जुके बोधतैं मिटै है, तैसे आत्मज्ञानतैं जगत मिटै है, सो आत्मज्ञान हम कहि दिया. जगत तौ मेरेविषै तीनकालमैं है नहीं, काहेतैं मिथ्या है. जो मिथ्यावस्तु होवै है, सो अधिष्ठानकी हानि नहीं करै है. जैसे मरीचिकाका जो जल है, सो पृथ्वीकूं गिली नहीं करै है. तैसे "जगत प्रतीत बी होवै है," परंतु मिथ्या है. कछु मेरी हानि करनैविषै समर्थ है नहीं; औ मैं "सत्‌चित् आनंदरूप ब्रह्म स्वरूप हूं" ऐसा जो निश्चय, ताका नाम ज्ञान है सोई मोछका साधन है, और कोई नहीं. सो ज्ञान हम प्रथम उपदेस करी दिया. ६२

## दोहा.

कर्म उपासनतैं नहीं, जगनिदान तम नास;
अंधकार जिम गेहमैं, नसै न बिन परकास. ६३

टीकाः—हे सिष्य! जगतका निदान कहिये उपादानकारन तम कहिये अज्ञान है. ता अज्ञानके नासतैं जगतका आपही नास होय जावै है. काहेतैं, उपादानके नास हुये पीछे कारज रहै नहीं है. ता अज्ञानका नास केवल ज्ञान करिके है, कर्म औ उपासना करिके नास होवै नहीं. काहेतैं अज्ञानका विरोधी ज्ञान है, कर्मउपासना विरोधी नहीं. दृष्टांतः- जसै गृहकेविषै जो अंधकार है, सो काहू क्रियासूं दूरि होवै नहीं, केवल प्रकाससैं दूरि होवै है; तैसै अज्ञानरूपी जो अंधकार है, सो ज्ञानरूपी प्रकाससैं दूरि होवै है, और काहूसाधनसैं नहीं. ६३

## दोहा.

भाख्यो सिष उपदेस मैं, जगभंजक हिय धारि;
जो यामैं संसय रह्यो, सो तूं पूछ विचारि. ६४

# शिष्य उवाच.

## चौपाई.

भो भगवन जो कछु तुम भाख्यो,
सो सब सत्य जानि हिय राख्यो;
जगनिदान अज्ञान बखान्यो,

ताको भंजक ज्ञान पिछान्यो. ६५
ज्ञानरूप वर्नन पुनि कीना,
जगमिथ्या सो मैं भल चीना;
सुखस्वरूप आतम परकास्यो,
दया तिहारीसौं मुहि भास्यो. ६६
पुनि भाख्यो "तूं ब्रह्म स्वरूपं"
यह मैं लख्यो न भेद अनूपं;
यामैं मुहि संका इक आवै,
जीव ब्रह्मको भेद जनावै. ६७

टीकाः—हे भगवन्! आपनै जो कह्या, सो मैं आपके वचन सत्य जानू हूं. आपनै कह्या जो "जगतका कारन अज्ञान है, ता अज्ञानके नास करिके, जगतकी निवृत्ति ज्ञानकरिके होवै है;" सो वार्ता मैं जानी. सो ज्ञानका स्वरूप आपनै कह्याः—" जगत मिथ्या है. औ जीव आनंदस्वरूप है. सो ब्रह्मसैं भिन्न नहीं. किंतु ब्रह्मरूप है. ऐसै निश्चयका नाम ज्ञान है. ताकेविषै जगत मिथ्या है. औ जीव आनंदस्वरूप है." यह वार्ता मैं जानी. परंतु "जीव ब्रह्म दोनूं एक हैं." यह वार्त्ता नहीं जानी. काहेतें, जीवब्रह्मके भेदकूं जनावनैवाली संका मेरे हृदयमैं फुरै है. ६७

## अथ संकाकी चौपाई

पुन्यपापका हूं मैं कर्त्ता,

जन्ममरन औ सुखदुख धर्त्ता;
और अनेकभांति जग भासै,
चहूं ज्ञान अज्ञान जु नासै. ६८
जो यातैं विपरीतस्वरूपा,
ताकूं ब्रह्म कहत मुनि भूपा;
कहो एकता कैसै जानूं?
रूप विरुद्ध हिये पहिचानूं. ६९

टीका:—हे भगवन्! मैं पुन्यपापका कर्त्ता हूं औ तिनका जो फल जन्ममरन, औ सुखदुःख, तिनकूं धारन करूं हूं, औ नानाप्रकारका जगत मेरेविषै प्रतीत होवै है; औ जगतका कारन जो अज्ञान है, ताके दूरि करनैकूं मैं ज्ञान चाहूं हूं. औ ब्रह्मविषै न पुन्य है, न पाप है, न जन्म है, न मरन है, न सुख है, न दुःख है, और कोई क्लेस ब्रह्मविषै नहीं, औ ज्ञानकी इच्छा नहीं है. यातैं ब्रह्मका औ मेरा स्वरूप परस्पर विरुद्ध है. यातैं दोनूंवांकी एकता बनै नहीं. यद्यपि मेरेविषै वी जन्मादिक संसार परमार्थ करिके है नहीं, तथापि मिथ्या जो जन्मादिक हैं, सो मेरेकूं भ्रांतिसैं प्रतीत होवै है औ ब्रह्ममैं नहीं. यातैं इतना भेद है. एकता बनै नहीं. ६९

## अन्यसंसयकी चौपाई.

सुनहु गुरू दूजो पुनि संसै,

जीवब्रह्म एकत्व प्रनंसै;
एक वृच्छमैं सम द्वैपच्छी,
फल भोगै इक दूजो स्वच्छी. ७०
भोगरहित परकास असंगा,
वेदवचन यह कहत प्रसंगा;
कर्मउपासन पुनि बहु भाखै;
जीव ब्रह्म यातैं द्वय राखै. ७१

टीकाः— हे गुरो! मेरे एक औरसंसय है; सो आप सुनौ. कैसा वह संसय हैः— जासूं जीवब्रह्मकी एकताका निश्चय प्रनंसै कहिये दूरि होय जावै; सो संसय मैं आपकूं कहूं हूं. आप सुनिके तिस संसयकूं दूरि करौ. वेदविषै मैंनै ऐसै देख्या हैः— एक बुद्धिरूपी वृछमैं दो पछी हैं, सो दोनूं समान हैं. तिनविषै एक तौ कर्मके फलकूं भोगै है, एक स्वच्छ कहिये सुद्ध है, भोगरहित है, असंग है, औ ता भोगनैवालेकूं प्रकासै है. याकेविषै भोगनैवाला जीव प्रतीत होवै है, औ दूसरा परमात्मा प्रतीत होवै है, यातैं उनकी एकता बनै नहीं.

औ वेदकेविषै कर्म औ उपासना बहुतप्रकारके कहे हैं. ते जीवब्रह्मकी एकताविषै निष्फल होय जावैंगे. काहेतैं, जो आप जीवब्रह्मकी एकता कहो हौ; सौ ब्रह्मविषै जीवके स्वरूपकूं अंतरभाव कहो हो, अथवा जीवविषै ब्रह्मके

स्वरूपकूं अंतरभाव कहो हो? जो कदांचित् ब्रह्मविषै जीवके स्वरूपकूं अंतरभाव कहोगे; तौ जीवकूं ब्रह्मरूप होनैंतैं अधिकारीका अभाव होवैगा. यातैं कर्म औ उपासना निष्फल होवैंगे. औ जो जींवविषै ब्रह्मके स्वरूपका अंतरभाव कहोगे; तौ ब्रह्मकूं जीवरूप होनैंतैं जाकी उपासना करिये है; ता उपास्यका अभाव होवैगा. यातैं उपासना निष्फल होवैगी. औ कर्मका फल देनैवाला जो परमात्मा, ताका अभाव होवैगा. यातैं कर्म निष्फल होवैंगे. औ मीमांसक जो कहै हैं. कर्मही ईश्वर हैं, तिनसैंही फल होवै है, सो वार्त्ता समीचीन नहीं. काहेतैं, जो कर्म हैं, सो जड हैं, तिनकूं फल देनैका सामर्थ्य बनै नहीं; यातैं कर्मका फल ईश्वरही देवै है. या रीतिसैं परमात्मा औ जीवकी एकता बनै नहीं. ७१

## श्रीगुरुरुवाच.

### चौपाई.

सुनहु सिष्य इक कहूं विचारा,
है जातैं संका निस्तारा;
घटाकास इक जलआकासा,
मेघाकास महांआकासा. ७२
च्यारिभेद ये नभके जानहु,
पुनि चेतनके तथा पिछानहु;
इक कूटस्थ जीव पुनि कहिये,

ईस ब्रह्म हिय जानै रहिये. ७३
ज़व इनको तूं रूप पिछानै,
निज संका तवही सव भानै;
यातैं सुन इनको अव भेदा,
नसै सुनत जन्मादिक खेदा. ७४

टीकाः— जो तेरेकूं संका हुई है, तिनका निस्तार कहिये निराकरन जातैं होवै, सो विचार मैं कहूं हूं; तूं सुन. जैसै एक आकासमैं च्यारिभेद हैंः— एक घटाकास है, औ एक जलाकास है, औ मेघाकास है, औ महाकास है. तैसै एक चेतनके च्यारिभेद है. एक कूटस्थ है, औ जीव है,औ ईश्वर है, औ ब्रह्म है. येच्यारिभेद आकासकी न्याई चेतनविषै हैं. हे सिष्य ! जब इनके स्वरूपकूं तूं भली प्रकारसैं पिछानैगा; तब अपनी संकाका तूं आपही समाधान जानि लेवैगा. यातैं मैं इनका स्वरूप वर्नन करूं हूं, तूं सुन. जाकूं सुनिके संसय-रहित ज्ञान होइके जन्मादिक दुःखका नास होवैगा. ७४

# अथ घटाकास वर्नन.

## दोहा.

जलपूरित घटकूं जु दे, जितनो नभ अवकास;
निपुन पंडित कहैं, ताकूं घटआकास. ७५

टीकाः—हे सिष्य ! जलसैं भरे घटकूं जितना आकास अवकास देवै है, तितने आकासकूं पंडितजन घटाकास कहै हैं. ७५

# अथ जलाकास वर्नन.

## दोहा.

जलपूरित घटमैं जु पुनि, है नभको आभास;
घटाकासयुत विज्ञजन, भाखत जलआकास. ७८

टीकाः– हे सिष्य! जलसैं भऱ्या जो घट है, ताकेविषै नछत्रादिसहित आकासका प्रतिबिंब होवै है; सो आकासका प्रतिबिंब. औ घटाकास, दोनूं मिले हुये जलाकास कहिये है. याकेविषे,

## कोई संका करै हैः–

आकासका प्रतिबिंब नहीं होवै है. किंतु केवल नछत्रादिकनकाही प्रतिबिंब होवै है. काहेतैं, आकास स्वरूपकरिके रहित है; औ रूपवालेपदार्थका प्रतिबिंब होवै है. यातैं आकासका प्रतिबिंब बनै नहीं. ऐसी संका करै है. ७६

## ताके समाधानका दोहा.

जो जलमैं आकासको, नहिं प्रतिबिंब लखाई;
थोरैमैं गंभीरता, व्है प्रतीत किहि भाई. ७७
यातैं जलमैं व्योमको, लखि आभास सुजान;
रूपरहित जिम सब्दतैं, व्है प्रतिध्वनिको भान. ७

टीकाः– जो जलकेविषै आकासका प्रतिबिंब नहीं होवै, तौ गोडेपरिमान जलविषै मनुष्यपरिमान गंभीरताकी जो

प्रतीति होवै है, सो नहीं हुई चाहिये. यातैं आकासका प्रतिबिंब अंगीकार करना योग्य है. औ जो कहै है. " रूपरहित पदार्थका प्रतिबिंब नहीं होवै है" सो वी नियम नहीं है. काहेतें, रूपरहित जो सब्द है, ताकी प्रतिध्वनि होवै है, सो सब्दका प्रतिबिंब है. यातैं रूपरहित जो आकास है, ताका वी प्रतिबिंब बनै है. ७८

# अथ मेघाकास बर्नन.

## दोहा.

जो मेघहि अवकास दे, पुनि तामैं आभास;
तिन दोनूंकूं कहत हैं, वुधजन मेघाकास. ७९

टीकाः— मेघ जो वादल, तिनकूं जो आकास अवकास देवै है, औ मेघके जलमैं जो आकासका प्रतिबिंब है, तिन दोनूंकूं मेघाकास कहै हैं याकेविषै, ७९

## कोई संका करै हैः—

जो मेघ तो आकासविषै हैं, तिनमैं जल औ आकासका प्रतिबिंब दीखै विना कैसै जानै जावै है?

## ताके समाधानका दोहा.

[illegible]त मेघ अनंतजल, उदकसहित इहि हेत; दक नहीं नभआभास विन, इम प्रतिबिंब समेत. ८०

टीकाः— यद्यपि मेघविषै जल औ आकासका प्रतिबिंब

प्रत्यक्ष नहीं है, तथापि अनुमानकरिके जानै जावै है. मेघ जो जलकी दृष्टि करै है, यातें ऐसा अनुमान होवै है; जो मेघांविषै जल है. जो मेघांविषै जल न होवै, तौ जलकी वृष्टि मेघांसैं नहीं होवै. औ मेघांविषै जल है, सो आकासके प्रतिबिंबसहित है. काहेतैं, जो जल होवै है, सो आकासके प्रतिबिंबविना नहीं होवै है. यातें मेघांविषै जो जल है, सो बी आकासके प्रतिबिंबवाला है. इसरीतिसें मेघविषै जल औ आकासके प्रतिबिंबका अनुमान होवै है. उदक औ दक ये दोनूं जलके नाम हैं. ८०

# अथ महाकास बर्नन.

## दोहा.

बाहिर भीतर एकरस, व्यापक जो नभरूप;
महाकास ताकूं कहै, कोविद बुद्धि अनूप. ८१

टीकाः—बाहिर औ भीतर सारे एकरस व्यापक जो नभ कहिये आकासका स्वरूप है, ताकूं अनूप कहिये अद्भुत-बुद्धिवाले पंडित, महाकास कहै हैं. ८१

## दोहा.

चतुभांति नभके कहे, लच्छन श्रुतिअनुसार;
अब चेतनके सिष्य सुन, जासूं लहै विचार. ८२

टीकाः— हे सिष्य! च्यारिप्रकारके आकासके लच्छन कहे, अब च्यारिभांतिके चेतनके लच्छन सुन, जाके सुनैतैं विचार कहिये विचारका फल ज्ञान प्राप्त होवै. ८२

# अथ कूटस्थ बर्नन.

## दोहा.

मति वा व्यष्टिअज्ञानको, अधिष्ठान चैतन्य;
घटाकास सम मानिये, सो कूटस्थ अजन्य. ८३

टीकाः—बुद्धि अथवा व्यष्टिअज्ञानका जो अधिष्ठान चेतन है, सो कूटस्थ कहिये है. जा पक्षमैं बुद्धिसहित चेतन जीव है, ता पक्षमैं बुद्धिका अधिष्ठान कूटस्थ कहिये है. औ जा पक्षमैं व्यष्टिअज्ञानसहित चेतन जीव कहिये है, ता पक्षमैं व्यष्टिअज्ञानका जो अधिष्ठान है, सो कूटस्थ कहिये है. या स्थानविषै यह सिद्धांत हैः— जीवपनैका जो विसेषन है, ताके अधिष्ठानका नाम कूटस्थ कहिये है. सो कूटस्थ अजन्य है. उत्पत्तिसैं रहित है. याका अभिप्राय यह हैः— ब्रह्मसैं न्यारा जैसै चिदाभास उत्पन्न होवै है, तैसै यह उत्पन्न नहि हुवा. किंतु ब्रह्मरूपही है. जैसै घटाकास महाकाससैं न्यारा नहीं होय गया, किंतु महाकासरूप है. यह जो कूटस्थ है सोई आत्मपदका लक्ष्यअर्थ है. औ याहीकूं प्रत्यक् कहै हैं. औ याहीकूं निजरूप कहै हैं. औ याही जीवसाक्षी है. ८३

# अथ जीव बर्नन.

## दोहा.

काम कर्मयुत बुद्धिमैं, जो चेतनप्रतिबिंब;

जीव कहै विद्वान तिहिं, जलनभ तुल्य सबिंब.८४

टीकाः– नाना काम औ कर्मसहित जो बुद्धि है, तामैं जो चेतनका प्रतिबिंब है, ताकूं विद्वान कहिये ज्ञानी, जीव कहै हैं. सो केवल प्रतिबिंबमात्रकूं नहीं जीव कहै हैं; किंतु जैसै घटाकाससहित आकासके प्रतिबिंबकूं जलाकास कहै हैं, तैसै सबिंब कहिये बिंब जो कूटस्थ, ता सहित चिदाभासकूं जीव कहै हैं. यातैं यह सिद्धांत हुवाः–बुद्धिमैं जो चिदाभास औ बुद्धिका अधिष्ठान चेतन, दोनुवाका नाम जीव है. ८४

## दोहा.

अधिष्ठान कूटस्थसैं, व्है आभास बहाल;
रक्तपुष्प उपर धर्यो, स्फटिक होई जिम लाल.८५

टीकाः– पूर्व दोहेविषै बिंब जो कूटस्थ, तासहित आभासकूं जीव कह्या. यातैं यह प्रतीति होवै हैः– जो बुद्धिमैं प्रतिबिंब है, सो कूटस्थका है; औ बाहिरके ब्रह्मचेतनका नहीं. काहेतैं, जाका प्रतिबिंब होवै, सो बिंब कहिये है. सो कूटस्थकूं बिंब कह्या. यातैं ताका प्रतिबिंब है; यह प्रतीति होवै है. सो या दोहेसैं प्रतिपादन करै हैः– जैसै बडे लाल पुष्पके ऊपरि धऱ्या जो सुफेदस्फटिक है, ताकेविषै फूलकी लालीकी दमक होवै है; सो लालफूलका प्रतिबिंब है, तैसै कूटस्थके आश्रित जो बुद्धि, ताकेविषै कूटस्थके प्रकासकी दमक होवै है. जैसै स्फटिक अत्यंतउज्ज्वल है, तैसै बुद्धि बी अत्यंतशुद्ध है. काहेतैं बुद्धि सत्वगुनका कार्य है; यातैं कूटस्थकी दमकका नाम प्रतिबिंब है.

अथवा ब्रह्मचेतनका प्रतिबिंब है. जैसै महाकासका घटके जलमें प्रतिबिंब होवै है, औ भीतरके आकासका नहीं. काहेतैं जितनी गंभीरता जलविषै प्रतीत होवै है, उतनी गंभीरता भीतरके आकासमैं है नहीं, सो गंभीरता आकासका प्रतिबिंब है यातैं बाहिरके आकासका प्रतिबिंब है. यह जो कहै हैं, "व्यापक चेतनका प्रतिबिंब बनै नहीं," सो आकासके दृष्टांतसैं संका दूरि होवै है. काहेतैं, जो आकास बी व्यापक है, औ ताका प्रतिबिंब होवै है. तैसै व्यापकचेतनका बी प्रतिबिंब बनै है.

और जो कहै हैं, "रूपवालेपदार्थका रूपवालेपदार्थमैं प्रतिबिंब होवै है;" सो बी नियम नहीं है. काहेतैं रूपरहित शब्दका रूपरहित आकासमैं प्रतिबिंब होवै है. यह पूर्व कहि आए; यातैं चेतनका प्रतिबिंब बनै है.

इसरीतिसैं बुद्धिमैं आभास औ बुद्धिका अधिष्ठान चेतन, दोनूंवांका नाम जीव है, यह कह्या. सो जीव त्वंपदका वाच्य कहिये है. औ ताकेविषै चिदाभासका त्याग करिके केवल जो कूटस्थ है, सो त्वंपदका लक्ष्य कहिये है. औ अहंशब्दका वाच्य बी जीव है. केवल कूटस्थ लक्ष्य है. ८५

## दोहा.

बुद्धिमांहि आभास जो, पुन्यपाप फलभोग;
गमनआगमन सो करैं, नाहिं चेतनमैं जोग. ८६
मिथ्या नभघट संग ज्युं, लहै क्रिया बहु भाति;
घटाकास अक्रिय सदा, रहै एकरस सांति. ८७

टीकाः—यद्यपि जीव नाम चिदाभास औ कूटस्थ दोनूं-वांका है, तथापि जीवपनैंके जो धर्म हैं, सो सारे आभासविषै हैं. पुन्य औ पाप औ पुन्यपापके फल सुखदुख, औ लोकांतरविषै गमन, औ या लोकविषै आगमन, इसतैं आदिलेके सारे आभाससहित बुद्धि करै है. औ कूटस्थ नहीं करै है. कूटस्थविषै केवल भ्रांतिसैं प्रतीति होवै है. सो भ्रांतिसैं प्रतीति वी बुद्धिसहित आभासकूं होवै है; कूटस्थकूं नहीं. काहेतैं कूट जो लुहारका अहरन, ताकी न्याई निर्विकाररूपसैं स्थित होवै, सो कूटस्थ कहिये है. अथवा कूट कहिये मिथ्या जो बुद्धि औ चिदाभास, ताकेविषै असंगरूपसैं स्थित होवै, सो कूटस्थ कहिये है. यातैं कूटस्थविषै भ्रांति आदिक बनै नहीं. किंतु चिदाभासमैं बनै हैं.

औ अत्यंत विचारसैं देखिये तौ पुन्यपाप, सुखदुःख लोकांतरमैं गमन औ आगमन केवल बुद्धिमैं है; आभासमैं वी नहीं. बुद्धिके संयोगसैं आभासमैं है. जैसैं जलसहित जो घट है, सो टेढा होवै है, औ सीधा होवै है, औ जावै आवै है; औ ताके संबंधसैं व्योमका आभास संपूर्न क्रिया करै है. औ स्वतंत्र कछु वी नहीं करै है. तैसैं कामकर्मरूपी जलसैं भऱ्या जो बुद्धिरूपी घट है, सो पुन्यसैं आदिलेके संपूर्नविकार धारै है, औ ताके संबंधसैं चिदाभास धारै है. औ कूटस्थ सर्व विकारसैं रहित है. जैसै जलपूरित घट [illegible] विकारसैं रहित घटाकास है, ताकी न्याई कूटस्थकूं जान. यातैं जीवपनैंके धर्म चिदाभासमैं हैं; तथापि कूटस्थमैं आ-

ज्ञानसैं प्रतीत होवैं हैं. यातैं बुद्धिकेविषै कूटस्थसहित जो चिदाभास सों जीव कहिये है. ८७

यह जो जीवका स्वरूप बर्नन किया, याकेविषै प्राज्ञकी हानि होवै है. काहेतैं, जो सुषुप्तिके अभिमानी जीवका नाम प्राज्ञ है, ता सुषुप्तिविषै बुद्धिका अभाव होवै है. यातैं बुद्धिमैं आभास बी बनै नहीं. यातैं प्राज्ञके स्वरूपका प्रतिपादक जो सास्त्र है, ताका विरोध होवैगा. इस कारनतैं जीवका स्वरूप और प्रतिपादन करै हैः—

## दोहा.

अथवा व्यष्टिअज्ञानमैं, जो चेतनआभास;
अधिष्ठान कूटस्थयुत, कहै जीवपद तास. ८८

टीकाः— अज्ञानके अंसका नाम व्यष्टिअज्ञान कहिये है औ संपूर्नअज्ञानका नाम समष्टिअज्ञान है. ता अज्ञानके अंसविषै जो चेतनका आभास, औ अज्ञानके अंसका अधिष्ठान जो कूटस्थ है, तिन दोनूंवाकूं जीवपद कहै हैं. यातैं प्राज्ञका अभाव नहीं होवै है. काहेतैं, सुषुप्तिविषै अज्ञान रहै है. जो सुषुप्तिविषै चेतनके प्रतिबिंबसहित अज्ञानका अंस है, सोई बुद्धिरूपकूं प्राप्त होवै है. औ चेतनका प्रतिबिंब साथही होवै है. ता चिदाभाससहित बुद्धिमैं पुत्रादिकसंसार प्रतीत होवै है. इस अभिप्रायसैं बुद्धिही कहूं सास्त्रनविषै जीवपनैकी उपाधि बर्नन करी है. औ विचारदृष्टिसैं जीवपनैकी उपाधि अज्ञान है. ८८

# अथ ईस बर्नन.

## दोहा.

चित्छाया मायाविषै, अधिष्ठान संयुक्त;
मेघ व्योम सम ईस सो, अंतरयामी मुक्त. ८९

टीकाः—मायाकेविषै जो चेतनकी छाया कहिये आभास औ मायाका अधिष्ठान चेतन, दोनूंवांकूं ईस्वर कहै हैं. सो ईस्वर मेघाकासके सम है. सो ईस्वर अंतर्यामी है. काहेतैं, सर्वके अंतर प्रेरना करै है; यातैं अंतर्यामी है. औ सदामुक्त है. काहेतैं वाकूं अपनै स्वरूपमैं आवरन नहीं, यातैं जन्ममरनादिक बंधकी प्रतीति नहीं. इस हेतुतैं ईस्वर नित्यमुक्त है; औ सर्वज्ञ है, सर्व पदार्थनके जाननैवाला है. याकेविषै यह हेतु हैः— मायाविषै सुद्धसत्वगुन है, तमोगुन औ रजोगुनसैं दब्याहुआ सत्वगुन नहीं होवै; किंतु रजोगुन औ तमोगुनकूं आप दबावनैवाला होवै, सो सुद्धसत्वगुन कहिये है. सत्वगुनसैं ज्ञानकी उत्पत्ति होवै है. यातैं प्रकासस्वभाववाला सत्वगुन है. ऐसी सत्वगुनवाली मायाकेविषै जो चेतनका आभास, ताकूं स्वरूपविषै अथवा औरपदार्थविषै आवरन संभवै नहीं, यातैं मुक्त है, औ सर्वज्ञ है.

अधिष्ठान जो चेतन है, सो तौ जीव औ ईस्वर दोनूंविषै बंधमोछभेदसैं रहित है; आकासकी न्याईं एकरस है, परंतु आभासअंसविषै बंधमोछ है. अधिष्ठानविषै आभासकूं भ्रांतिसैं प्रतीत होवै है. यातैं केवलआभासमैं बंधमोछ है.तिस-

विषै बी इतना भेद है:— जा आभासमैं आवरन है, ताकेविषै बंध है; जाविषै स्वरूपका आवरन नहीं है, सो मुक्त है. ईस्वरमैं आवरन नहीं; यातैं ईस्वर सदामुक्त है. औ जीवविषै आवरन है, सो बंध है. बंधकहिये बंध्या हुवा है. काहेतैं जा अविद्याके अंसमैं चेतनके आभासकूं जीव कह्या, ता अविद्याका आवरन करनैका स्वभाव है. यद्यपि अविद्या औ अज्ञान औ माया एकही वस्तुकूं कहै हैं; तथापि सुद्धसत्वगुनकी प्रधानतासैं माया कहिये हैं, औ मलिनसत्वगुनकी प्रधानतासैं अज्ञान औ अविद्या कहै हैं. रजोगुन औ तमोगुनसैं दब्या जो संत्वगुन है, सो मलिनसत्वगुन कहिये है. यातैं तमोगुन औ रजोगुनकी अधिकता होनैतैं अविद्यामैं जो जीवका आभासअंस, ताकूं अविद्या, स्वरूपका आवरन करै है, यातैं जीवमैं बंधन है; औ ईस्वरमैं नहीं. अधिष्ठान चेतनसहित जो मायामैं आभासरूप ईस्वर है, सो तत्पदका वाच्य कहिये है; औ केवल अधिष्ठानचेतन तत्पदका लक्ष्य है. जो ईस्वर है, सोई जगतकी उत्पत्ति औ पालन औ संहार करै है; यह संपूर्नसास्त्रमैं कह्या है. ताका यह अभिप्राय है:— चेतनअंस तौ आकांसकी न्याई असंग है, औ आभासअंस जगतकी उत्पत्ति आदि करै है; औ ताहीविषै सर्वज्ञता है. औ भक्तजनके ऊपरि अनुग्रह जो करै है, सो बी केवल आभासअंस करै है. और जो कछु ऐस्वर्य है, सो केवल आभासमैं है. औ चेतन अंस एकरस है, वाकेविषै सत्तास्फूर्ति देनैबिना और ऐस्वर्य बनै नहीं. ८९

# अथ ब्रह्मस्वरूप बर्नन.

## दोहा.

अंतर वाहिर एकरस, जो चेतन भरपूर;
विभुनभ सम सो ब्रह्म है, नहिं नेरे नहिं दूर. ९०

टीकाः– ब्रह्मांडके अंतर कहिये भीतर, औ बाहिर जो महाकासकी न्याई भरपूरचेतन है; सो ब्रह्म कहिये है. सो ब्रह्म नेरे नहीं, औ दूरि नहीं. काहेतें, जो वस्तु अपनैसें भिन्न होवै, औ देसरूप उपाधिवाला होवै, सो नेरे औ दूरि कहि जावै है. ब्रह्म भिन्न नहीं, किंतु सर्वका आत्मा है, औ देसादिक सर्वउपाधितें रहित है; यातें नेरे औ दूरि नहीं कह्या जावै. यद्यपि ब्रह्मसब्दका वाच्य बी सोपाधिक है. काहेतें, व्यापकवस्तुका नाम ब्रह्म है. सो व्यापकता दो प्रकारकी हैः– एक तौ आपेछिकव्यापकता है, औ एक निरपेछिकव्यापकता है. जो वस्तु किसी पदार्थकी अपेछासैं व्यापक होवै, औ किसीकी अपेछासैं न होवै, ताकेविषै आपेछिकव्यापकता कहिये है. जैसैं पृथ्वीआदिकी अपेछासैं माया व्यापक है, औ चेतनकी अपेछासैं नहीं है. यातैं मायाविषै आपेछिकव्यापकता है. औ जो वस्तु सर्वकी अपेछासैं व्यापक होवै, ताकेविषै जो व्यापकता सो निरपेछिकव्यापकता कहिये है. सो निरपेछिकव्यापकता चेतनविषै है. काहेतें, चेतनके समान अथवा चेतनसैं अधिक और कोई व्यापक है नहीं, किंतु चेतनही सर्वसैं व्यापक है.

यातैं चेतनविषै निरपेछिकव्यापकता है. यह दोनूंप्रकारकी व्यापकतासहित जो वस्तु है, सो ब्रह्मसब्दका वाच्य है. सो दोनूंप्रकारकी व्यापकता मायाविसिष्टचेतनविषै है. काहेतैं, विसिष्टविषै जो मायाअंस है, ताकेविषै तौ आपेछिकव्यापकता है, औ चेतनअंसविषै निरपेछिकव्यापकता है. यद्यपि मायाविसिष्टचेतनविषै निरपेछिकव्यापकता बनै नहीं, काहेतैं माया चेतनके एकदेसविषै है. ता मायाविसिष्टचेतनसैं सुद्धचेतनकी व्यापकता अधिक है; यातैं सुद्धचेतनविषै निरपेछिकव्यापकता है; तथापि मायाविसिष्ट जो चेतन है, सो परमार्थदृष्टिकरिके सुद्धसैं भिन्न नहीं; किंतु सुद्धरूपही है. यातैं मायाविसिष्टमैं बी जो चेतनअंस है, ताकेविषै निरपेछिकही व्यापकता है. इसरीतिसैं मायाविसिष्टही ब्रह्मसब्दका वाच्य बनै है. औ सुद्धचेतन ब्रह्मसब्दका लछ्य है. यातैं ईस्वरसब्द औ ब्रह्मसब्द दोनूंवांका समानही अर्थ प्रतीत होवै है; भिन्न अर्थ नहीं. तथापि ब्रह्मसब्दका तौ यह स्वभाव है:— जो बहुतस्थानविषै लछ्यअर्थकूं बोधन करै है, औ काहूस्थानविषै वाच्यअर्थकूं कहै है. औ ईस्वरसब्दका यह स्वभाव है:— जो बहुतस्थानमैं वाच्यअर्थका बोधन करै है, इतना भेद है. यातैं लछ्यअर्थकूं लेके ब्रह्मसब्दका अर्थ भिन्न निरूपन किया है. १०

## दोहा.

चतुभाँति चेतन कह्यो, तामैं मिथ्या जीव;
पुन्यपाप फल भोगवै, चित्‌कूटस्थ सुसीव. ११

टीका:— हे सिष्य! च्यारिप्रकारका चेतन कह्या. तामैं जीवके स्वरूपमैं जो मिथ्याआभासअंस है, सो पुन्यपाप करै है. औ तिनके फलकूं भोगै है. औ कूटस्थ जो चेतन है, सो सीव कहिये सिवरूप है. सिव नाम कल्यानका है. यातैं प्रथम जो संका करी थी, "जो वुद्धिरूपी वृछमैं दो पछी हैं; एक परमात्मा औ जीव;" ताका यह उत्तर कह्या. परमात्मा औ जीवका ग्रहन नहीं करना, किंतु कूटस्थ तौ प्रकासमान है; औ आभास भोगै है.

## दोहा.

**कर्मी छाया देत फल, नहीं चेतनमैं जोग;**
**सो असंग इकरूप है, जानै भिन्न कुलोग. १२**

टीका:—जीवके स्वरूपमैं जो चेतनकी छाया कहियें आभासअंस है, सो कर्मी कहिये कर्म करै है. ता कर्म करनैवालेकूं छाया जो ईस्वरका आभासअंस है, सो फल देवै है. छायासब्दका देहलीदीपकन्याय करिके पूर्वउत्तर दोनूं औरकूं संवंध है. जैसे देहलीके ऊपर धऱ्या जो दीपक है, सो दोनूं औरकूं प्रकासै है. "छाया कर्मी" औ "छाया देत फल;" यातैं यह वार्त्ता सिद्ध हुई:— जीवके स्वरूपमैं जो आभासअंस है, सो तौ पुन्यपाप करै है, औ तिनका फल भोगै है; औ ईस्वरमैं जो आभासअंस है, सो कर्मका फल देवै है. औ दोनूंवांविषै जो चेतनअंस है, तिंसविषै किंसी वातका जोग नहीं. जीवमैं जो चेतनअंस है, ताविषै नौ कर्म औ फलका जोग नहीं. औ ईस्वरमैं जो चेतनअंस है,

तामैं फल देनैका जोग नहीं है. ता चेतनमैं जो कहे हैं, सो मूर्ख है, काहेतैं; चेतन दोनूंवांविषै असंग है; औ एकरूप है, चेतनमैं भेद नहीं. जीवचेतनकूं जो ईस्वरचेतनसैं, अथवा ईस्वरचेतनकूं जो जीवचेतनसैं भिन्न कहिये न्यारा जानैं सो कुलोग कहिये निंदन करनैयोग्य लोक हैं. या कहनैतैं दूसरा जो प्रस्न कियाथा जो "जीव औ परमात्माकी एकता अंगीकार करनैतैं कर्म औ उपासनका प्रतिपादक वेद निष्फल होवैगा," ताका उत्तर कह्या. जो जीव औ ईस्वरमैं चेतनभाग है, तिनका तौ अभेद है; औ आभासका भेद है. यातैं दोनूंप्रकारके वचन बनै हैं. ९२

## चौपाई.

अहो सिष्य तैं प्रस्न जु कीनै,
तिनके ये उत्तर मैं दीनै;
कहे जु तैं तरुमैं द्वै पछी,
इक भोगै इक आहि अनिछी. ९३
ते चेतन आभास लखाये,
नभ छाया ज्यूं भिन्न बताये;
कह्यो भिन्न कर्मी फलदाता,
मति माया छाया सो ताता. ९४
जीव ईसमैं चेतनरूपं,
भेदगंधतैं रहित अनूपं;

यातैं "अहं ब्रह्म" यह जानौ,
"अहं" सब्द कूटस्थ पिछानौ. १५
"ब्रह्म" सब्दको अर्थ सु भाख्यो,
महाकास सम लछ्य जु राख्यो;
"अहं ब्रह्म" नहिं जौ लौं जानै,
तौ लौं दीन दुखित भय मानै. १६

टीकाः— हे सिष्य! जो तैंनें प्रस्न करे, तिनके मैं उत्तर कहे. जो तैं कह्याथा "एक वृछमैं दो पछी हैं; एक भोगै है, औ एक इच्छातैं रहित है. यातैं जीवब्रह्मकी एकता बनै नहीं." याका हमनैं उत्तर कह्या जो "या स्थानमैं जीव ब्रह्मका ग्रहन नहीं करना; किंतु कूटस्थ, औ बुद्धिमैं जो आभास, तिनका ग्रहन करना. सो आपसमैं घटाकास औ आकासकी छायाकी न्याई भिन्न हैं." औ जो तैं प्रस्न कियाथाः— "जीव तौ कर्मउपासना करनैवाला है, औ परमात्मा फल देनैवाला है; तिनकी एकता बनै नहीं." याका बी हमनैं यह उत्तर कह्या जो "कर्म करनैवाला जीव नहीं है, औ फल देनैवाला ईस्वर नहीं है, किंतु जीवमैं जो आभासअंस है सो करै है. ईस्वरमैं जो आभासअंस है, सो फल देवै है. औ जीव ईस्वरमैं जो चेतनअंस है, सो घटाकास महाकासकी न्याई भेदका जो गंध कहिये लेस, तासैं रहित है." इसरीतिसैं हे सिष्य! जीव औ ब्रह्मकी एकता बनै है. यातैं "अहं" कहिये "मैं ब्रह्म हूं" ऐसैं तूं जान. अहंसब्दका अर्थ तौ कूटस्थकूं पिछान. औ ब्रह्मसब्दका जो

महाकासके सम लक्ष्यअर्थ कह्या है, सो जान. "अहं" सब्दका औ "ब्रह्म" सब्दका वाच्यअर्थका अभेद नहीं बी है, परंतु लक्ष्य अर्थका अभेद है. औ हे सिष्य! जबलग तूं "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसै नहीं जानैगा, तबलग तूं अपनैकूं दीन मानैगा; औ दुःखी मानैगा. औ न्यारा जो परमात्मा जान्या है, सो तेरेकूं भयका हेतु होवैगा. यातैं "मैं ब्रह्म हूं" ऐसैं जान. ९६

# तत्त्वदृष्टिरुवाच.

## दोहा.

कहो गुरू व्है कोनकूं, "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान?
नहिं जानूं मैं आपके, भाखे विना सुजान. ९७

टीकाः—हे गुरु! आप कृपा करिके कहौ, "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसा ज्ञान किसकूं होवै है? आपके कहेविना यह वार्त्ता मैं जानूं नहीं हूं. सिष्यके चित्तमैं यह गूढअभिप्राय हैः—"मैं ब्रह्म हूं" ऐसा ज्ञान कूटस्थविषै होवै है, अथवा आभाससहित बुद्धिमैं होवै है? जो कूटस्थमैं कहौगे, तौ कूटस्थ विकारी होवैगा, औ आभाससहित बुद्धिमैं कहौगे, तौ वाकूं "मैं ब्रह्म हूं" ऐसा ज्ञान भ्रांतिरूप होवैगा. काहेतैं आपनै ऐसा पूर्व कह्या जो "कूटस्थकी औ ब्रह्मकी एकता औ आभास भिन्न है." यातैं ब्रह्मसैं भिन्न जो आभास ताका ब्रह्मरूपकरिके जो ज्ञान सो भ्रांतिही होवैगा. जैसै सर्पसैं भिन्न जो रज्जु, ताका सर्परूप करिके ज्ञान भ्रांति है.

इसरीतिसैं आभाससहित बुद्धिकूं "मैं ब्रह्म हूं" यह ज्ञान यथार्थ नहीं होवैगा. किंतु भ्रांतिरूप होवैगा. औ जो कदाचित् "अहं ब्रह्मास्मि" इस ज्ञानकूं भ्रांतिरूपही अंगीकार करौगे, तौ या ज्ञानतैं मिथ्याजगतकी निवृत्ति नहीं होवैगी, किंतु यथार्थज्ञानसैं मिथ्याकी निवृत्ति होवै है. जैसे रज्जुके यथार्थज्ञानसैं मिथ्यासर्पकी निवृत्ति होवै है. इसरीतिसैं आभाससहित बुद्धिकूं "मैं ब्रह्म हूं" यह ज्ञान बनै नहीं. १७

# श्रीगुरुरुवाच.

## सोरठा.

कहूं अवस्था सात, सुन सिष्य व आभासकी;
नहिं चेतनकी तात, तिनहीमैं यह ज्ञान है. १८

टीकाः—हे सिष्य! अब आभासकी सातअवस्था मैं कहूं हूं, सो तूं सुनः— (अबकी ठौर वकार पड्या है.) तिन सातअवस्थामैं कोई बी चेतन जो कूटस्थ, ताकी नहीं हैं. औ "मैं ब्रह्म हूं" यह ज्ञान बी तिन सातके भीतरही हैं. १८

# अथ सप्तअवस्था नाम.

## चौपाई.

इक अज्ञान आवरन जानौ,
भ्रांति द्विविध पुनि ज्ञान पिछानौ;
सोकनास अतिहर्ष अपारा,
सप्तअवस्था इम निर्धारा. १९

अर्थ स्पष्ट.

## अथ अज्ञान औ आवरनस्वरूप वर्नन.

### दोहा.

"नहि जानूं मैं ब्रह्मकूं," याकूं कहत अज्ञान;
"ब्रह्म है न नहिं भान है," यह आवरनसुजान.
१००

टीका:– हे सिष्य ! "मैं ब्रह्मकूं नहीं जानूं हूं" यह जो पुरुष कहै हैं, या व्यवहारका हेतु अज्ञान है. "ब्रह्म है नहीं, औ भान नहीं होवै है." इस व्यवहारका हेतु आवरन है. आवरनसैं यह व्यवहार होवै है. काहेतैं, दो प्रकारकी अज्ञानकी सक्ति है:– एक तौ असत्वापादक है, औ एक अभानापादक है. तिन दोनूंकूं आवरन कहै हैं. "वस्तु नहीं है" ऐसी प्रतीति करावनैवाली जो सक्ति, सो असत्वापादक कहिये है. औ वस्तुका भान नहीं होवै है, ऐसी प्रतीति करावनैवाली जो अज्ञानकी सक्ति, सो अभानापादक कहिये है. इसरीतिसैं "ब्रह्म नहीं है" इस व्यवहारकी हेतु अज्ञानकी असत्वापादकसक्ति है. औ "ब्रह्म भान नहीं होवै है" इस व्यवहारकी हेतु अज्ञानकी अभानापादकसक्ति है. इन दोनूंका नाम आवरन है. १००

## अथ भ्रांति वर्नन.

### दोहा.

जन्ममरन गमनागमन, पुन्यपाप सुखखेद;

निजस्वरूपमैं भान व्है, भ्रांति बखानी वेद. १०१

टीका:— जन्मसैं आदिलेके जो संसार है, ताकी जो निजस्वरूप कहिये कूटस्थमैं प्रतीति, सो वेदमैं भ्रांति कहिये है. औ याहीकूं सोक कहै हैं. १०१

## अथ द्विविधज्ञान बर्नन.

दोहा.

द्वैविधज्ञान वखानिये, इक परोछ अपरोछ;
"अस्तिब्रह्म" परोछ है, "अहंब्रह्म" अपरोछ. १०२
"नहीं ब्रह्म" या अंसको, करै परोछ विनास;
सकलअविद्याजालकूं, दूजो नसै प्रकास. १०३

टीका:— "ब्रह्म नहीं है" या आवरनके अंसकूं, "ब्रह्म है" ऐसा परोछज्ञान विनासै है. काहेतैं, "सत्य ज्ञान अनंतरूप ब्रह्म है" ऐसा जो ज्ञान, ताका नाम परोछज्ञान है, सो "ब्रह्म नहीं है" ऐसी प्रतीतिका विरोधी है; औरका नहीं. औ "मैं ब्रह्म हूं" ऐसा जो अपरोछज्ञान, सो सकलअविद्याजालका विरोधी है. या कारनतैं "मैं ब्रह्मकूं नहीं जानूं हूं" यह अज्ञान; औ "ब्रह्म नहीं है," औ "भान नहीं होतै है" यह आवरन; औ "मैं ब्रह्म नहीं हूं, किंतु पुन्यपापका कर्त्ता औ सुखदुःखका भोक्ता हूं" यह भ्रांति; इतना जो अविद्याजाल है, ताकूं अपरोछज्ञान नास करैहै. १०३

# अथ भ्रांतिनास बर्नन.

## दोहा.

जन्ममरन मोमैं नहीं, नहिं सुखदुखको लेस;
किंतु अजन्यकूटस्थ मैं, भ्रांतिनास यह वेस. १०४

टीकाः— मेरेविषै जन्म औ मरन नहीं है. औ सुखदुखका लेस वी नहीं है. और कोई वी संसारधर्म मेरेविषै नहीं है. किंतु अजन्य कहिये जन्मसैं रहित जो कूटस्थ, सो "मैं हूं." हे सिष्य! इसरीतिसैं सर्व अनर्थका जो निषेध, यह भ्रांतिनासका वेस कहिये स्वरूप है. अथवा यह भ्रांतिनास श्रं कहिये उत्तम है. या जगै कूटस्थमैं जन्मका निषेध करनैतैं सर्वका निषेध जानि लेना. काहेतैं, जन्मप्रतीतिसैं अनंतर औरअनर्थ प्रतीत होवै है. यातैं जन्मके निषेधतैं सर्व अनर्थका निषेधहै. यह जो भ्रांतिनास है, याहीकूं सोकनास बी कहै, है. १०४

# अथ हर्षस्वरूप बर्नन.

## दोहा

संसयरहित स्वरूपको, होइ जु अद्वयज्ञान;
तव उपजै हिय मोद तव, सो तूं हर्ष पिछान. १०५

टीकाः— हे सिष्य! जव तेरेकूं संसयरहित अपनै स्वरूपका ऐसा ज्ञान होवैगा; जो "मैं अद्वय ब्रह्मरूप हूं" तव तेरेकूं जो मोद होवैगा, ताकूं तूं हर्ष पिछान. १०५

दोहा.

कही अवस्था सात मैं, ताकूं सिष्य सुजान;
सो सगरी आभासकी, है तिनहीमै ज्ञान १०६
"ज्ञान होत है कौनकूं," यह पूछी तैं बात;
मैं ताको उत्तर कह्यो, चहै सु पूछ व तात. १०७

अर्थ स्पष्ट है.

जा गूढअभिप्रायतैं प्रश्न कर्‍या था, ताकूं अब सिष्य प्रगट करै है:—

दोहा.

भगवन कहै आभासकूं, "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान;
तुम भाख्यो सो मैं लख्यो, पुनि संका इक आन. १०८

चौपाई.

है आभास ब्रह्मतैं न्यारा,
अस तुम पूर्व कियो निर्धारा;
"अहं ब्रह्म" सो कैसे जानै?
आपहि भिन्न ब्रह्मतैं मानै. १०९
जो जानै तौ मिथ्याज्ञाना,
होइ जेवरी भुजग समाना;
श्रीगुरु यह संदेह मिटाऊ,
युक्तिसहित निजउक्ति सुनाऊ. ११०

टीका:— हे भगवन्! आपनैं यह पूर्व कह्या जोः—"कूटस्थ औ ब्रह्म तौ दोनूं एक हैं; औ आभास ब्रह्मतैं न्यारा है;" ता ब्रह्मसैं भिन्न आभासकूं "मैं ब्रह्म हूं," ऐसा ब्रह्मरूप करिके ज्ञान बनै नहीं. मेरा अधिष्ठान जो कूटस्थ सो ब्रह्मरूप है, ऐसा जो आभासकूं ज्ञान होवै, तौ यथार्थज्ञान होवै; औ "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान यथार्थ नहीं बनै. काहेतैं, अहं नाम अपनै स्वरूपका है. जाकुं मैं कहे हैं. सो आभासका स्वरूप मिथ्या है, यातैं भिन्न है. यातैं ब्रह्मसैं भिन्न आभासका जो स्वरूप, वाकूं ब्रह्मरूपकरिके ज्ञान होवै, तौ मिथ्याज्ञान होवै. जैसे सर्पसैं भिन्न जो जेवरी, ताका सर्परूप करिके ज्ञान मिथ्या होवै है. मिथ्या नाम भ्रांतिका है. सो ब्रह्मज्ञानकूं भ्रांतिरूप कहना बनै नहीं. ११०

## दोहा.

"अहं" सब्दके अर्थको, सुन अब सिष्य विवेक;
तब हियके जासूं नसै, संक कलंक अनेक १११

अर्थ स्पष्ट. १११

है यद्यपि आभासमैं, "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान;
तथापि सो कूटस्थको, लहै आप अभिमान. ११२
ताको सदा अभेद है, विभुचेतनतैं तात;
बाध समै निजरूपहू, ब्रह्मरूपहू, दरसात. ११३

टीका:— हे सिष्य! यद्यपि "मैं ब्रह्म हूं" ऐसा ज्ञान

बुद्धिसहित आभासकूं होवै है, औ कूटस्थकूं नहीं; तथापि सो आभास कूटस्थकूं औ अपने स्वरूपकूं, दोनूंवांकूं अपना आत्मा जानै है. ता आत्माका मैं सब्द करिके ग्रहन होवै है सोई अहं शब्दका अर्थ है.

ता अहं सब्दमैं भान जो होवै है कुटस्थ; ताका तौ ब्रह्मके साथ सदाअभेद है. जैसै घटाकासका औ महाकासका सदा अभेद है. इसी कारनतैं कूटस्थका ब्रह्मके साथ मुख्य समानाधिकरन वेदांतसास्त्रमैं कह्या है. जा वस्तुका जा वस्तुके संग सदाअभेद होवै, ता वस्तुका ताके संग मुख्यसमानाधिकरन कहिये है, जैसै घटाकासका महाकासके संग सदाअभेद है. यातैं घटाकास महाकास है. इसरीतिसैं घटाकासका महाकासके साथ मुख्यसमानाधिकरन है. इसरीतिसैं कूटस्थका ब्रह्मके संग मुख्यसमानाधिकरन है. काहेतै, कूटस्थका ब्रह्मतैं सदाअभेद है. यातैं मैं सब्दमैं भान जो होवै है कूटस्थ, ताका तौ ब्रह्मके संग सदाअभेद है.

औ मैं सब्दमैं भान जो होवै है आभास, ताका ब्रह्मसैं अपनै स्वरूपकूं बाधिके अभेद होवै है; जैसै मुखका जो प्रतिबिंब, ताका बिंबस्वरूप मुखके संग प्रतिबिंबस्वरूपकूं बाधिके अभेद होवै है. इसीकारनतैं वेदांतशास्त्रविषै आभासका ब्रह्मके संग बाधसमानाधिकरन कह्या है. जा वस्तुका बाध होईके जाके संग अभेद होई, ता वस्तुका ताके बाधसमानाधिकरन कहिये है. जैसै मुखके प्रतिबिंबका बाध होयके मुखके साथ अभेद होवै है. यातैं प्रतिबिंब मुखहै, न्यारा नहीं; ऐसा प्रतिबिंबका मुखके साथ बाधसमानाधिकरन है.

किंवा, जैसे स्थानुमैं पुरुषभ्रम होयके स्थानुज्ञानसैं अनंतर, "पुरुष स्थानु है" इसरीतिसैं पुरुषका स्थानुसैं बाधसमानाधिकरन होवै है, तैसे आभासका बाध होईके ब्रह्मके साथ अभेद होवै है. यातैं मैं सब्दविषै भान जो होवै आभास, सो ब्रह्म है, न्यारा नहीं. ऐसा बाधसमानाधिकरन आभासका ब्रह्मके साथ होवै है. इसरीतिसैं, हे सिष्य! अहंसब्दमैं भान जो होवै है कूटस्थ ताका तौ मुख्यअभेद है, औ आभासका बाध करिके अभेद है. ११३

## तत्त्वदृष्टिरुवाच.

### दोहा.

अहंवृत्तिमैं भान व्है, साछी अरु आभास;
सो क्रमतैं वा क्रमबिना, याको करहु प्रकास. ११४

टीकाः— हे भगवन्! आपनैं कह्या जो "अहं वृत्तिमैं साछी अरु आभास दोनूंवांका भान होवै है." याकेविषै मैं एक वार्त्ता नहीं जानूंहूं. सो कूटस्थ औ आभासको भान अहंवृत्तिविषै क्रमसैं होवै है; अथवा क्रमसैं बिना होवै है याका अर्थ यह है:— क्रमसैं कहिये भिन्नभिन्नकालमैं होवै है; अथवा दोनूंवांका एकही कालमैं भान होवै है? याका आप मेरेकूं प्रकास कहिये बोध करो. ११४

## श्रीगुरुरुवाच.

### दोहा.

सावधान व्है सिष्य सुन, भाखूं उत्तर सार;

सुनत नसै अज्ञानतम, बोधभानुउजियार. ११५

टीकाः— हे सिष्य! जो तैंनै प्रश्न किया, मैं ताका सारभूतउत्तर कहूं हूं, तूं सावधान होईके सुन. कैसा उत्तर है, याके सुनतही बोधरूपी सूर्यका प्रकास होयके अज्ञानरूपी तमकूं नासै है. ११५

## दोहा.

एकसमयही भान व्है, साछी अरु आभास;
दूजो चेतनको विषय, साछी स्वयंप्रकास. ११६

टीकाः— हे सिष्य! एकही समय साछीका औ आभासका अहंवृत्तिविषै भान होवै है. सारेप्रकरनविषै आभाससब्दसैं अंतःकरनसहित आभासका ग्रहन करना. यातैं दूजो कहिये अंतःकरनसहित जो आभास है, सो तौ चेतन जो साछी, ताका विषय होईके भान होवै है. औ साछी स्वयंप्रकासरूप करिके भान होवै है. औ अंतःकरनकी जो आभाससहित वृत्ति, ताका विषय साछी नहीं. औ घटादिक बाहिरके पदार्थनविषै तौ ऐसी रीति हैः— जब इंद्रियका औ घटका संयोग होवै, तब इंद्रियद्वारा अंतःकरनकी वृत्ति निकसिके घटके समानआकारकूं प्राप्त होवै है. जैसै मुखामैं गेऱ्या जो ताम्र, ताका मुषाके आकारके समान आकार होवै है. तैसै अंतःकरनकी वृत्तिका बी घटके आकारके समान आकार होवै है. सो वृत्ति, आभास-विना नहीं है; किंतु आभाससहित होवै है. काहेतें, वृत्ति अंतःकरनका परिनाम है. अंतःकरनका जो परिनाम ताकूं वृत्ति कहै है.

जैसै अंतःकरन सत्वगुनका कार्य होनैतैं स्वच्छ है, यातैं अंतःकरनविषै चेतनका आभास होवै है; तैसै वृत्ति बी स्वच्छ अंतःकरनका कार्य है, यातैं वृत्तिविषै चेतनका आभास होवै है. औ वृत्ति जो उत्पन्न होवै है, सो आभाससहित अंतःकरनसैं उत्पन्न होवै है. इस कारनतैं बी वृत्ति आभाससहितही होवै है. औ,

विषय जो घट है, सो तमोगुनका कार्य है, यातैं स्वरूपसैं जड है, औ ताकेविषै अज्ञान औ ताका आवरन है. यामैं यह संका होवै है:— अज्ञान औ ताका आवरन विचारदृष्टिसे चेतनविषै है, घटविषैं नहीं. काहेतैं, अज्ञान चेतनके आश्रित है, औ चेतनहीकूं विषय करै है, यह वेदांतका सिद्धांत है. औ सातअवस्थाके प्रसंगमैं जो अज्ञानका आश्रय अंतःकरनसहित आभास कह्या, सो अज्ञानका अभिमानी है. "मैं अज्ञानी हूं" ऐसा अभिमान अंतःकरनसहित अभासकूं होवै है. इस कारनतैं अज्ञानका आश्रय कहिये है. औ मुख्यआश्रय चेतन है; आभाससहित अंतःकरन नहीं. काहेतैं, आभाससहित अंतःकरन अज्ञानका कार्य है. जो जाका कार्य होवै है; सो ताका आश्रय बनै नहीं यातैं चेतनही अज्ञानका अधिष्ठानरूप आश्रय है. औ चेतनहीकूं अज्ञान विषय करै है. स्वरूपका जो आवरन करना सोई अज्ञानका विपय करना है. सो अज्ञानकृत आवरन जडवस्तुविषै बनै नहीं. काहेतैं, जडवस्तु स्वरूपसैंही आवृत्त है. वाकेविषै अज्ञानकृत आवरनका कछु उपयोग नहीं.

इसरीतिसैं अज्ञानका आश्रय औ विषय चैतन्य है. जैसै गृहके मध्य जो अंधकार है, सो गृहके मध्यकूं आवरन करै है, यातैं घटकेविषै अज्ञान औ ताका आवरन बनै नहीं.

## ताका यह समाधान है.

जैसै चेतनके स्वरूपसैं भिन्न सतअसतसै विलछन अज्ञान, चेतनके आश्रित है, ता अज्ञानसैं चेतन आवृत्त होवै है; तैसै घटके स्वरूपसैं भिन्न अज्ञान यद्यपि घटके आश्रित नहीं है, तथापि अज्ञाननैं घटादिक, स्वरूपसैं प्रकासरहित जडस्वरूप रचे हैं. यातैं सदाही अंधके समान आवृत्त हैं. सो आवृत्तस्वभाव घटादिकनका अज्ञाननैं किया है. काहेतैं, तमोगुनप्रधानअज्ञानसैं भूतकी उत्पत्तिद्वारा घटादिक उपजै हैं. सो तमोगुन आवरनस्वभाववाला हैं. यातैं घटादिक प्रकासरहित अंधहि होवै हैं. इसरीतिसैं अंधतारूप आवरन घटादिकनमैं अज्ञानकृत स्वभावसिद्ध है. औ घटादिकनके अधिष्ठान चेतन आश्रित अज्ञान, चेतनकूं आच्छादितकरिके स्वभावसैं आवृत्त घटादिकनकूं बी आवृत्त करै है. यद्यपि स्वभावसैं आवृत्त पदार्थके आवरनमैं प्रयोजन नहीं है, तथापि आवरनकर्त्ता पदार्थ प्रयोजनकी अपेक्षासैं विनाही निरावरनकी न्याई आवरनसहितमैं बी आवरन करै है; यह लोकमैं प्रसिद्ध है. ता अज्ञानसैं आवृत्त घटकूं व्याप्त जो होवै है अंतःकरनकी आभाससहित घटाकारवृत्ति; तामैं वृत्तिभाग तौ घटके अव-

रनकूं दूरि करै है, औ वृत्तिमें जो आभासभाग है, सो घट-का प्रकास करै है. इसरीतिसैं बाहिरके पदार्थविषै वृत्ति औ आभास दोनूंवांका उपयोग है.

## दृष्टांत.

. जैसै अंधकारमैं कुंडेसैं मृत्तिका अथवा लोहका पात्र ढक्या धर्या होवै, तहां दंडसैं कुंडेकुं फोडी वि गेरे पीछे दीपकविना उस निरावरनपात्रका वी प्रकाश होवै नहीं, किंतु दीपकसैं प्रकाश होवै है; तैसै अज्ञानसैंआवृत्त जो घट, ताके आवरन कूं वृत्ति भंग वी करै है, तथापि घटका प्रकास होवै नहीं काहेतें, घट तो स्वरूपसैं जड है; औ वृत्ति वी जड है; ताका आवरनभंगमात्र प्रयोजन है. तासैं प्रकाश होवै नहीं. यातैं घटका प्रकासक आभास है. नेत्र-का बिसय जो वस्तु है, ताके प्रत्यछज्ञानकी यह रीति कही. औ श्रवनादिकका जो विषय है. ताके प्रत्यछकी वी रीति ऐसैही जानी लेनी.

वृत्ति औ घट दोनुं एकदेसमैं स्थित होनैतैं घटकाज्ञान प्रत्यछ कहिये है. औ अंतः करनकी वृत्ति तौ घटाकार होवै, औ घटके संग वृत्तिका संबंध न होवै, किंतु अंतरही वृत्ति होवै, सो घटका परोछज्ञान कहिये है. यह "घट है" ऐसा अपरोछज्ञानका आकार है. औ "घट है" अथवा "सो घट है" ऐसा परोछज्ञानका आकार है. यद्यपि स्मृतिज्ञान वी परोछज्ञानही है, तथापि स्मृतिज्ञान तौ संस्कारजन्य है; औ अनुमितिआदिक परोछज्ञान प्रमाणजन्य है; इतना भेद है. प्रमानके प्रसंगसैं,

# हम प्रमान निरूपन करै है.

चार्वाक जो हैं, सो एक प्रत्यक्षप्रमान अंगीकार करै हैं. औ,

कनाद औ सुगतमतके जो अनुसारी हैं, सो दूसरा अनुमानप्रमान बी अंगीकार करै हैं. काहेतैं, एक प्रत्यक्षही प्रमान अंगीकार करैं तो तृप्तिके अर्थीकी भोजनविषैप्रवृत्ति नहीं होवैगी. काहेतैं, अभुक्तभोजनविषै तृप्तिकी हेतुताका प्रत्यक्षप्रमानजन्य प्रत्यक्षज्ञान है नहीं. यातैं भुक्तभोजनमैं अनुभव जो करी है तृप्तिकी हेतुता, सो अभुक्तभोजनमैं बी अनुमानसैं जानिके तृप्तिकै अर्थीकी भोजनमैं प्रवृत्ति होनेतैं अनुमानप्रमान बी अंगीकार कऱ्या चाहिये. इसरीतिसैं कनाद औ सुगतमतके अनुसारी प्रत्यक्ष औ अनुमान दोप्रमान अंगीकार करै है. औ,

सांख्यशास्त्रका कर्त्ता जो कपिल है; ताके मतके अनुसारीतीसरा शब्दप्रमान बी अंगीकारकरै हैं. काहेतैं, जो प्रत्यक्ष औ अनुमान दोही प्रमान अंगीकार करैं तौ देशांतरविषै जाका पिता मरि गया होवै, ताकूं कोई यथार्थवक्ताआनिके कहै, "तेरा पिता मरि गया है." तब श्रोताकूं पिताके मरनैका निश्चय नहीं हुवा चाहिये.काहेतैं देशांतरविषै स्थित पिताके मरनका ज्ञान प्रत्यक्ष औ अनु... नकरिके बनै नहीं. इसरीतिसैं कपिलमतके अनुसारी प्रत्यक्ष औ अनुमान औ सब्द तीनिप्रमान अंगीकार करै हैं. औ,

न्यायसास्त्रका कर्त्ता जो गौतम है, ताके मतके अनुसारी उपमान बीचतुर्थप्रमान अंगीकार करैं हैं. काहेतैं, प्रत्यछआदिक तीनिही प्रमान अंगीकार करें, तौ जा पुरुषने गवय नहीं देख्या है, औ वनवासीपुरुषसैं ऐसा श्रवन क्रिया हैः– " गोके सादृश्य गवय होवै है. „ सो पुरुष जो वनमैं चल्या जावै, औ गवयकूं देख लेवै, तब वाकू वनवासी पुरुषनैं कह्या जो " गौके सादृस्य गवयहोवै है, " यह वाक्य; ताके अर्थका स्मरन होवै है. ता स्मृतिसैं अनंतर पुरुषकूं ऐसा ज्ञानहोवै हैः– " यह पसु गवय है " ऐसा ज्ञान नहीं हुआ चाहिये. यातैं ऐसे विलछनज्ञानका हेतु उपमानप्रमान बी अंगीकार करै हैं. औ,

पूर्वमीमांसाका एकदेसी जो भटका सिष्य प्रभाकर है, सो पंचम अर्थापत्तिप्रमान बीअंगीकार करै है. दिनमैं भोजनत्यागीपुरुषकूं स्थूल देखिके ऐसा ज्ञान होवै हैः–" यह पुरुष रात्रिकूं भोजन करै है " तहां रात्रिभोजनविना दिनमैं भोजनत्यागीकेविषे स्थूलता बनै नहीं. यातैं रात्रिभोजनका स्थूलता संपादक है. रात्रिभोजन संपाद्य है. संपाद्य जो रात्रिभोजन, ताके ज्ञानका हेतु स्थूलताका ज्ञान अर्थापत्ति प्रमान कहिये है. औ,

पूर्वमीमांसक जो भट हैं, सो षष्ट अनुपलब्धिप्रमान बी अंगीकार करै हैं. औ वेदांतशास्त्रविषे- बी षट्प्रमान अंगीकार किये हैं. अनुपलब्धिप्रमानका प्रयोजन यह हैः- गृहादिकनमैं घटादिकनके अभावका ज्ञान होवै है. तहां जापदार्थकी प्रतीति नहीं होवै है, ताके अभावका ज्ञान होवै

है. अप्रतीतिकुं अनुपलब्धि कहै हैं घटकी जो अनुपलब्धि कहिये अप्रतीति, तातैं घटका अभाव निश्चय होवै है. ऐसै पदार्थनके अभावनिश्चयका हेतु जो पदार्थनकी अप्रतीति, ताकूं अनुपलब्धिप्रमान कहै हैं.

प्रमाज्ञानका जो करन है, सो प्रमान कहिये है स्मृतिसैं भिन्न जो अबाधितअर्थकूं विषय करनैवाला ज्ञान है, सो प्रमा कहिये है. स्मृतिज्ञान जो है, सो प्रमा नहीं है. काहेतैं जो प्रमाज्ञान है, सो प्रमाताके आश्रित होवै है. औ. स्मृतिप्रमा ताके आश्रित नहीं; किंतु साछीके आश्रित अंगीकार करी है. औ भ्रांतिज्ञान औ संसय बी साछीके आश्रित अंगीकार किये है. इसी करनतैं स्मृति औ भ्रांति औ संसय ज्ञान, ये तीनूं आभाससहित अविद्याकी वृत्तिरूप हैं; अंतःकरनकी वृत्तिरूप नहीं. यातैं प्रमाताके आश्रित नहीं; किंतु साछीके आश्रित हैं. जो अंतःकरनकी वृत्तिरूप ज्ञान होवै, सो प्रमाताके आश्रित होवैं है. औ सोई प्रमा कहिये है. स्मृतिज्ञान अंतःकरनकी वृत्ति नहीं; यातैं प्रमाताके आश्रित नहीं; औ प्रमा बी नहीं. यातैं प्रमाके लछनविषै स्मृतिसैं भिन्न कह्याचाहिये. अबाधितअर्थकूं विषय करनैवाला ज्ञान तौ स्मृतिज्ञान बी है, परंतु स्मृतिज्ञान स्मृतिसैं भिन्न नहीं है. यातैं अबाधितअर्थकूं विषय करनैवाला जो स्मृतिसैं भिन्न ज्ञान है, सो प्रमा कहिये है. या लछनमें कोई दोष नहीं.

और कोई स्मृतिज्ञानकूं बी प्रमारूप मानै हैं. तिन-

के मतमैं प्रमाके लछनविषे स्मृतिसैं भिन्न ऐसा नहीं कहना. किंतु अबाधितअर्थ कूं विषय करनैवाला जो ज्ञानहै, सो प्रमा कहिये है. भ्रांतिज्ञान जो है, सो अबाधित अर्थकूं विषय नहीं करै हैं, किंतु बाधितअर्थकूं विषय करै है; यातैं प्रमाका लछन भ्रांतिज्ञानमैं नहीं जावै है. जिनोंके मतमैं स्मृतिज्ञानविषैवी प्रमाव्यवहार है; तिनके मतमैं स्मृतिज्ञान अंतःकरनकी वृत्ति है; अविद्याकी वृत्ति नहीं; औ साछीके आश्रित बी नहीं; किंतु प्रमाताके आश्रित है. काहेतैं, अंतः करनकी वृत्तिका आश्रय प्रमाताही बनै है, साछी बनै नहीं. इसरीतिसैं-स्मृतिज्ञान किसीकें मतमैं तौ अंतःकरनकी वृत्ति हैं; यातैं प्रमारूप है औ किसीके मतमैं अविद्याकी वृत्ति है, यातैं प्रमारूप नहीं है, औ भ्रांतिज्ञान औ संसयज्ञाने, ये दोनुं सर्वके मतमैं अविद्याकी वृत्ति हैं; औ साछीके आश्रित है; यामैं कोई विवाद नहीं. औ विचार करीके देखियें तो स्मृतिज्ञान बी अविद्याकी वृत्ति है; औ साछीके आश्रित है; प्रमारूप नहीं. काहेतै, जो वेदांतसंप्रदायके वेत्ता हैं, तिनोंनैं प्रमाज्ञान षट्प्रकारका कह्या है. ता षट्प्रकारमैं स्मृतिज्ञान हैं नहीं, यातैं प्रमा नहीं.

औ मधुसूदनस्वामीनैं स्मृतिज्ञान साछीके आश्रितही कह्या है. एक तौ प्रत्यछप्रमा है, औ दूसरी अनुमिति प्रमा है, औ तीसरी उपमितिप्रमा है, औ चतुर्थी साब्दीप्रमा है, औ पंचमी अर्थापत्तिप्रमा है, औ षष्टी अभावप्रमा है; ये षट्प्रमा हैं. औ पूर्व कहे जो प्रत्यछआदिक षट्प्रमान हैं, सो इनके क-

मतैं करन हैं. प्रत्यछप्रमाका जो करन होवै, सो प्रत्यछप्रमान कहिये हैं. असाधारनकारन जो होवै, सो करन कहिये हैं. जो सर्वकार्यका कारन होवै, सो साधारनकारन कहिये है. जैसे धर्मअधर्मादिक सर्वकार्यके कारन हैं, यातैं साधारनकारन हैं. सर्वकार्यका कारन न होवै, किंतु किसी कार्यका कारन होवै, सो असाधारनकारन कहिये है. जैसे दंड जो है सो सर्वकार्यका कारन नहीं; किंतु घटआदिक जो कार्यविशेष हैं, तिनका कारन है. यातैं दंड असाधारनकारन कहिये है, ओ घटका करन भी कहियेहै. तैसे प्रत्यछ प्रमाके ईश्वर औ ताकी इच्छासैं आदिलेके तौ साधारन कारन है, काहेंतें ईश्वरसैं आदिलेके सर्वकार्यके कारन हैं. तिन विना कोई कार्य होवै नहीं, यातैं ईश्वरादिक साधारनकारन हैं. औ नेत्रसैं आदिलेके जो इंद्रिय हैं, सो प्रत्यछप्रमाके असाधारनकारन हैं. यातैं नेत्र आदिक जो इंद्रिय हैं, सो प्रत्यछ प्रमाके करन हैं. इसरीतिसैं नेत्रआदिक जो इंद्रिय हैं, सो प्रत्यछप्रमान कहिये है.

यद्यपि इंद्रियकूं वेदांत सिद्धांत विषे प्रमाज्ञानकी कारनता कहना बनै नहीं. काहेतैं, चेतनके च्यारिभेद हैं:— एक तौ प्रमाताचेतन है, औ दूसरा प्रमानचेतन है, औ तीसरा प्रमितिचेतन है, ताहीकूं प्रमा चेतन वी कहै हैं. ओ चौथा प्रमेयचेतन है, ताहीकूं विषयचेतन वी कहै हैं. इसरीतिसैं प्रमा नाम चेतनका हैं; सो नित्य है, इंद्रियजन्य नहीं. यातैं इंद्रिय ताका कारन नहीं. तथापि चेतनमैं प्रमाव्यवहारका संपादक वृत्ति भी प्रमाकहिये है. ताके इंद्रिय करन है.

देहके मध्य जो अंतःकरन, ता करिके अवछिन्न जो चेतन सो प्रमाता कहिये है सोई अंतःकरन नेत्रादिक इंद्रियद्वारा निकसिके जितने दूरि घटादिक विषय स्थित होवै, उतना लंबापरिनाम अंतःकरनका होवै है. औ आगे विषय जो घटादिक हैं, तिनसैं मिलिके जैसा घटादिकका आकार होवै, तैसाही अंतःकरनका आकार होवें है. जैसै कोठेमै भर्या जो जल, सो छिद्रद्वारा निकसिके, लंबेनालेका आकार होयके, बगीचेके केदारमैं जावै है औ, केदारमैं जाईके जैसा केदारका आकार होवै, तिस आकारकूं जल प्राप्त होवै है. तैसै अंतःकरन बी इंद्रियरूपी छिद्रद्वारा निकसिके विषयरूपी केदारकूं जावै है. तहां सरीरसैं लेके घटादिक विषयपर्यंत जो अंतःकरनका नालेके समान परिनाम, ताकूं वृत्तिज्ञान कहै है. ता करिके अवछिन्न जो चेतन, ताकूं प्रमानचेतन कहै हैं. औ वृत्तिज्ञानरूप जो अंतःकरनका परिनाम, ताकूं प्रमान कहै हैं. जैसै केदारविषै जल जाईके केदारके समान आकार होवै है; तैसै घटादिक जो विषय हैं, तिनमैं वृत्ति जाईके घटादिकके समान आकारकूं प्राप्त होवै है. ता करिके अवछिन्न जो चेतन सो प्रमाचेतन कहिहे है. ज्ञानके विषय जो घटादिक, तिनकरिके अवछिन्न जो चेतन, सो विषयचेतन कहिये है; औ प्रमेयचेतन बी कहिये है. यह वेदअर्थके जाननेवाले जो आचार्य हैं, तिनकी परिभाषा है.

यामैं इतना भेद है जो अवछेदवाद अंगीकार

करे हैं, तिनकेमतमैं तो अंतःकरनविसिष्ट जो चेतन है, सो प्रमाता है. औ सोई कर्त्ताभोक्ता है. औ अंतःकरनउपहित साछी है. एकही अंतःकरन प्रमाताका तौ विसेषन है, औ साछीकी उपाधि है. स्वरूपविषै जाका प्रवेस होवै, ऐसी जो व्यावर्तकवस्तु हैं, सो विषसेन कहिये है. औरपदार्थसैं भिन्नता करिके वस्तुके स्वरूपकूं जो जनावै, सो व्यावर्तक कहिये है. जाकूं भिन्नता करिके जनावै, सो व्यावर्त्य कहियें है. जैसे " नीलघट है. " या स्थानमैं घटका नीलता विषेसन है. काहेतें, नीलघटकेविषै नीलताका प्रवेस है. औ पीतस्वेतादिकनसैं भिन्नता करिके जनावै है; यातैं व्यावर्त्तक है. इसरीतिसैं नीलता घटका विसेषन हैं. औ घ परिछेद्य है. काहेतें, पीतस्वेतादिकनतैं भिन्नता कहिये जुदा करिके जनाईये है. जो भिन्नताकरिके जनाईये, सो परिछेद्य कहिये है; व्यावर्त्त कहिये है, औ विसेष बी, कहियेहै. औ " दंडीपुरुष है, " या स्थानमैं बी पुरुषका दंड विसेषन है. इसरीतिसैं प्रमाताका अंतःकरन विसेषन है. काहेतें प्रमाताके स्वरूपविषै अंतःकरनका प्रवेस है. औ,

प्रमेयचेतनसैं भिन्नता करिके प्रमाताके स्वरूपकूं जनावै है. यातैं व्यावर्तक है, 'जा वस्तुका स्वरूपविषै प्रवेस न होवै, औ व्यावर्त्तक होवै; सो उपाधि कहिये है. जैसे नैयायिकके मतमैं करनसस्कुलीसैअवछिन्न जो आकास विषै, श्रोत्र कहिये है. या स्थानमैं करनसस्कुलीश्रोत्रकीउपाधि है; काहेतें, श्रोत्रके स्वरूपविषै तौ करनसस्कुलीका प्रवेस है

नहीं; औ बाहिरके आकासतैं भिन्नताकरिके श्रोत्रकूं जनावै है, यातैं व्यावर्त्तक है. औ घटाकास जो है, सो मनपरिमान अन्नकु अवकास देवै है. या स्थानमैं बी आकासकी घट उपाधि है. काहेतैं, मनअन्नकूं अवकास देनैवाला जो आकास हैं, ताके स्वरूपविषै तौ घटका प्रवेस है नहीं. घट पार्थिव है, ताकेविषै अवकास देना बनै नहीं; यातैं घटका स्वरूपमैं प्रवेस बनैं नहीं. औ व्यापक आकासतैं भिन्नताकरिके जनावै है, यातैं मनअन्नकूं अवकास देनैवाला जो आकास ताकी घट उपाधि है. तैसै अंतःकरनउपहित जो चेतन है, सो साछी है. या स्थानमै अंतः करन साछीकी उपाधि है. काहेतैं,

साछीके स्वरूपविषै तौ अंतःकरनका प्रवेस है नहीं. औ प्रमेयचेतनसैं साछीकूं भिन्नताकरिके जनावै है. यातैं एकही अंतःकरन साछीकी तौ उपाधि है, औ प्रमाताका विसेषन है. इसरीतिसैं अंतः करनउपहित जो चेतन है, सो तौ साछी है; औ अंतः करनविसिष्ठचेतन प्रमाता है. जो उपाधिवाला होवै, सो उपहित कहिये है औ विसेषनवाला होवै सो विसिष्ट कहिये है. जो अंतःकरन विसिष्ट प्रमाता है, सोई कर्त्ताभोक्ता सुखीदुःखी संसारीजीव है, यह अवछेदवादकी रीति है. औ,

आभासवादमें आभाससहित अंतःकरन जीवका विसेषन है, औ आभाससहित अंतःकरन साछीकी उपाधि है. यातैं साभासअंतःकरनविसिष्टचेतन जीव है, औ साभास

अंतःकरनउपहितचेतन साक्षी है. यद्यपि दोनूं पक्षमैं विसेषनसहित चेतन जीव है, सोई संसारी है; तथापि विसेष्यभाग जो चेतन है, ताके विषै तो जन्ममरनसैं आदिलेके संसारका संभव है नहीं. यातैं विसेषनमात्रमैं संसार है, सोई विसिष्टचेतनमैं प्रतीत होवै है. कहूं तो विसेषनके धर्मका विसिष्टमैं व्यवहार होवै है, औ कहूं विसेष्यके धर्मका विसिष्टमैं व्यवहार होवै है; औ कहूं विसेषन विसेष्य दोनूंवांके धर्मका विशिष्टमैं व्यवहार होवै है. जैसे दंडकरिके घटाकासका नास होवै है, या स्थानमैं विसेषन जो घट है, ताका दंडकरिके नास होवै है; औ विसेष्य जो आकास है, ताका नास बनै नहीं. तो वी विशिष्ट जो घटाकास है, ताका नास प्रतीत होवै है. औ "कुंडलीपुरुष सोवै है." या स्थानमैं कुंडल विसेषन है; औ पुरुष विसेष्य है. विसेषन जो कुंडल है, ताकेविषै सोवना बनै नहीं, किंतु विसेष्य जो पुरुष है, ताकेविषै सोवना है. औ "कुंडलविसिष्टप्र सोवै है" ऐसाविसिष्टमैं व्यवहार होवै है. औ "सस्त्री पुरुष युद्धमैं गया है." या स्थानमैं विषेसन जो सस्त्र औ विसेष्यपुरुष दोनुं युद्धमैं गये हैं; यातैं दोनुंवांके धर्मका विशिष्टमैं व्यवहार होवै है. या स्थानमैं अवच्छेदवादमैं तो अंतः करन विषेस है, औ आभासवादमैं साभासअंतः करन विसेषन है; औ दोनुंपक्षमैं चेतन विसेष्य है. ताकेविषै तो जन्मादिसंसार बनै नहीं. किंतु विसेषन अंतःकरन अथवा साभासअंतःकरन, ताका धर्म जो जन्मादिक संसार, ताका विसि-

घटचेतनमैं व्यवहार करिये है. व्यवहार नाम प्रतीति औ कहनेका है. इसरीतिसै आभासवाद औ अवछेदवादका भेद है.

आभासवादमैं तौ अंतःकरन आभाससहित है, औ अवछेदवादमैं अंतःकरन आभासरहित है. दोनुंपक्षमैं आभासवाद श्रेष्ठ है. काहेतैं, भाष्यकारनैं आभासवाद अंगीकार किया है. औ अवछेदवादमैं विद्यारन्यस्वामीनै दोष बी कह्या हैः— जो आभासरहित अंतःकरनअविछिन्नचेतनकूं प्रमाता मानैं, तो घटअवछिन्नचेतन बी प्रमाता हुवा चाहिये. काहेतैं, जैसै अंतःकरन भूतनका कार्य है, तैसै घट बी भूतनका कार्य है. औ जैसै अंतःकरन चेतनका अवछेदक कहिये व्यावर्त्तक है. तैसै घट बी चेतनका अवछेदक है. यातैं अंतःकरनविसिष्टकी न्याई घटविसिष्ट बी प्रमाता हुवा चाहिये. औ अंतःकरनमैं आभास अंगीकार कियेतैं यह दोष नहीं. काहेतैं, अंतःकरन तौ भूतनके सत्वगुनका कार्य है, यातैं स्वछ है. औ घटादिक भूतनके तमोगुनके कार्य हैं; यातैं, स्वछ नहीं. जो स्वछपदार्थ होवै, सोई आभासके योग्य होवै है. मलिनपदार्थ आभासके योग्यनहीं. जैसै काच औ ताका-ढकना दोनुं पृथिविके कार्य है, परंतु काच तो स्वछ है, तामैं मुखका आभास होवै है; ढकना स्वछ नहीं, यातैं तामैं आभास होवै नहीं. तैसै सत्वगुनका कार्य होनेतैं अंतःकरन स्वछ है, ताहीमैं चेतनका आभास होवै है. सरीरादिक औ घटादिक तमोगुनके कार्य होनेतैं स्वछ नहीं, तिनमैं चेतनका आभास होवै नहीं.

इसरीतिसैं अंतःकरनमैं द्विविधप्रकास है. एक तौ व्यापकचेतनका प्रकास, औ दूसरा आभासका प्रकास है. सरीरादिक औ घटादिकनमैं एक व्यापकचेतनका प्रकासतौ है, दूसरा आभासका प्रकास नहीं. यातैं द्विविधप्रकाससहित अंतःकरनविसिष्टही चेतन प्रमाता कहिये है. एक प्रकाससहित जो घटादिक तिनकरिके संयुक्त चेतन प्रमाता नहीं. जिनके मतमैं अंतःकरनमैं आभास नहीं; तिनके मतमैं घटादिकनकीन्याई अंतःकरनमैं वी आभसका दूसरा प्रकास तौ है नहीं. व्यापकचेतनका जो एक प्रकास अंतःकरनमैं, सोई व्यापकचेतनका प्रकास घटादिकनमैं है. यातैं अंतःकरनविसिष्टकी न्याई घटविसिष्ट, वा सरीरविसिष्ट, भीतविसिष्टचेतन वी प्रमाता हुवाचाहिये. इसरीतिसैं घटसरीरादिकनतैं अंतःकरनमैं यही विलछनता है. अंतःकरन सत्वगुनका कार्य है, यातैं स्वछ होनेतैं चेतनका आभास ग्रहन करनेके योग्य है; और पदार्थ स्वछ नहीं; यातैं आभास ग्रहन करनेके योग्य नहीं. आभासग्रहनके योग्य जो अंतःकरन, ता करिके संयुक्तही चेतन प्रमाता कहिये है. घटादिक औ सरीरादिक आभासग्रहनके योग्य नहीं. यातैं तिनकरिके विसिष्टचेतन प्रमाता नहीं. इसरीतिसैं आभासवादही उत्तम है; अवछेदवाद नहीं.

जैसै अंतःकरन आभाससहित है, तैसै अंतःकरनवृत्ति वी आभाससहितही होवै है, साभासवृत्तिविसिष्टचेतन प्रमानचेतन कहिये है. अंतःकरनकी घटादि विषयाकार जो

वृत्ति, तामैं आरूढचेतनकूं प्रमा औ यथार्थज्ञान कहै हैं. ताका साधनजो इंद्रिय सो प्रमान कहिये हैं. काहेतैं विषयाकारवृत्तिमैं आरूढचेतनकूं प्रमा कहै हैं. तहां चेतन यद्यपि स्वरूपकरिकेनित्य है, यातैं इंद्रियजन्यताके अभावतैं प्रमा-चेतनका साधन इंद्रिय नहीं; तथापि निरुपाधिकचेतनमैं तौ प्रमाव्यवहार है नहीं, किंतु विषयाकारवृत्तिउपहितचे-तनमैं प्रमाव्यवहार होवै है. यातैं चेतनविषै प्रमासब्दकी प्रवृत्तिमैं विषयाकार वृत्ति उपाधि है. सो विषयाकारवृत्ति इंद्रियजन्य है, इंद्रिय ताका साधन है. प्रमापनैकी उपाधि जो वृत्ति, ताकौंइंद्रियजन्य होनैतैं उपहित जो प्रमा, सो भी इंद्रियजन्य कहिये है. यातैं इंद्रिय प्रमाका साधन कहिये है. परंतु अंतःकरनका परिनाम सारा प्रमा नहीं कहिये है. किंतु सरीरके भीतर जो अंतःकरन ताका विषय घटादिक-नतोडी परिनाम, ताकूं प्रमान कहै हैं. विषयतैं मिलीके विषयके समान जो अंतःकरनका परिनाम, उतनैकूं प्रमा कहै हैं. सरीरके भीतर जो अंतःकरन तासैं लेके घटादिक विषयतोडी पहुचा जो अंतःकरनका परिनाम, सोई प्रमारू-पकूं धारै है. यातैं प्रमाका प्रमानरूप अंतःकरनकी वृत्तिसैं अत्यंतभेद नहीं. इसरीतिसैं बाहिरके पदार्थनका प्रत्यछज्ञान जहां होवै तहां अंतःकरनकी वृत्ति बाहिर जायके विषयजो घटादिक, तिनके समान आकाररूपकूं धारै है. औ सरीरके अंतर जो आत्मा,ताका प्रत्यछ होवै, तब अंतःकरनकी वृ-त्ति बाहिर जावै नहीं. किंतु सरीरके भीतरही वृत्ति आ-

स्माकार होवै है, ता वृत्तिसैं आत्माके आश्रित आवरन दूरि होवै है. औ आत्मा अपनै प्रकासतैं ता वृत्तिमै प्रकासै है. इसीकारनतै वृत्तिका विषय आत्मा कह्या है. औ चिदाभासरूप जो वृत्तिमैं फल, ताका विषय आत्मा नहीं, या प्रकारतैं साक्षीआत्मा स्वयंप्रकासरूप भान होवै है; यह सिद्ध हुआ. ११६

## तत्त्वदृष्टिरुवाच.

### दोहा.

इंद्रियके संबंध विन ,"अहं ब्रह्म" यह ज्ञान;
कैसै व्है प्रत्यक्ष प्रभु? मोकुं कहौ वखान. ११७

टीकाः- "ब्रह्मके अपरोक्षज्ञानतैं सकलअविद्याजालका नास होवै है; परोक्षज्ञानतैं नहीं," यह पूर्व कह्या. ताकेविषै संका करै हैः—ब्रह्मका ज्ञान प्रत्यक्ष बनै नहीं. काहेतैं इंद्रियजन्य ज्ञान प्रत्यक्ष होवै है. ब्रह्मका ज्ञान इंद्रियजन्य बनै नहीं. काहेतैं,

नेत्रइंद्रियतैं रूपवानका अथवा नीलादिकरूपका ज्ञान होवै है, ऐसा ब्रह्म नहीं. यातैं नेत्रइंद्रियजन्य ज्ञान ब्रह्मका बनै नहीं. रामकृष्णादिकनकी जो मनुष्याकारमूर्ति है सो यद्यपि रूपवाली है, तथापी सो मूर्ति मायारचित्र मिथ्या है, सो मूर्ति ब्रह्म नहीं. औ पुरानमैं रामकृष्णादिकनकूं ब्रह्मरूपता कही है; सो तिनकी सरीररूप मूर्ति ब्रह्मरूप है; इस अभिप्रायतैं नहीं कही, किंतु तिनके सरीर-

नका अधिष्ठानचेतन ब्रह्म है; इस अभिप्रायतैं कहीं है. याकेविषै ऐसी संका होवै हैः— सर्वसरीरनका अधिष्ठान चेतन ब्रह्म है, यातैं अधिष्ठानचेतन अभिप्रायतैं रामकृष्णादिकनकूं ब्रह्मरूपता कही होवै, तौ सर्वसरीरनका अधिष्ठानचेतन ब्रह्म होनैंतैं मनुष्य पसु पछीआदिक सर्वही ब्रह्मरूप हैं. तिनके समानही रामकृष्णादिक होवैंगे. यातैं रामकृष्णादिकनकूं, अधिष्ठानचेतन ब्रह्म है, इस अभिप्रायतैं ब्रह्मरूपता नहीं कही, किंतु तिनकूं औरजीवनतैं विसेषरूपताकी सिद्धिवास्ते, तिनका सरीरही ब्रह्म है, ऐसा मानना योग्य है.

सो बनै नहीं. काहेतैं, सरीरका बाध करिके तिनके सरीरनकूं ब्रह्मरूपता मानैं, तौ सर्वसरीरनका बाध करिके सारेई सरीर ब्रह्मरूप हैं. औ बाध किये बिना तौ अन्यसरीरनकी न्याई, हस्तपादादिक अवयवसहित रूपवान क्रियावानसरीरका निरवयव निरूप अक्रिय ब्रह्मतैं अभेद बनै नहीं. यातैं रामकृष्णादिकनका सरीर ब्रह्म नहीं. परंतु इतना भेद हैः— जीवनके सरीर पुन्यपापके आधीन हैं, भूतनके कार्य हैं, औ जीवनकूं देहादिक अनात्मपदार्थनविषै अविद्यावलतैं अहंममअध्यास है; आचार्यके उपदेसतैं ता अध्यासकीनिवृत्ति होवै है. औ रामकृष्णादिकनके सरीर अपनै पुन्यापापतैं रचित नहीं, भूतनके कार्य नहीं.

किंतु जैसे सृष्टिके आदिमें प्रानियोंके कर्म भोगदेनेकूं सन्मुखहोवैं, तब आप्तकामईश्वरमैं बी प्रानियोंके कर्मके अनुसार “ मैं जगतकी उत्पत्ति करूं ” ऐसा संकल्प होवै

है. ता संकल्पतें जगतकी उत्पत्तिरूप सृष्टि होवै है. तैसें सृष्टितें अनंतर बी "मैं जगतका पालन करूं" ऐसा ईश्वरका संकल्प होवै है. ता संकल्पतें जगतका पालन होवै है. कर्मनके अनुसार सुखदुःखका संबंध पालन कहिये है. ता पालनसंकल्पके मध्य उपासकपुरुषनकी उपासनाके बलतें ईश्वरकुं ऐसा संकल्प होवै है:— "रामकृष्णादिक नामसहित मूर्त्ति सर्वकूं प्रतीत होवै." ता ईश्वरसंकल्पतें विसेषनामरूपरहित ईश्वरमें रामकृष्नादिक नाम, पीतांबरधरादि स्यामसुंदरविग्रहरूपकी उत्पत्ति होवै है. सो विग्रह कर्मके आधिन नहीं. यद्यपि रामकृष्नादिक विग्रहतें साधु औ दुष्टनकुं क्रमतें सुखदुःख होवै है. जो जाके सुखदुःखका हेतु होवै है, सो ताके पुन्यपापतें रचित होवै है. यातें पुन्यपाप आधिन कहिये है; इसरीतिसें अवतारनके सरीर साधुपुरुषनकुं सुखके हेतु होनेतें साधुपुरुषनके पुन्यसमुदायतें रचित हैं. तैसें असुरादिक असाधुपुरुषनकुं दुःखके हेतु होनेतें तिनके पापतें रचित हैं. यातें "अवतारनके सरीर पुन्यपापके आधीन नहीं," यह कहना नहीं संभवै. तथापि जैसें जीवनें पूर्वसरीरमें पुन्यपापकर्म किये हैं, तिनका फल उत्तरसरीरमें ता जीवकूं सुखदुःख होवै है. तहां सरीरअभिमानीजीवके पूर्वसरीरके आपनें पुन्यपापके आधीन उत्तरसरीर कहिये है. तैसें, रामकृष्नादिकनके सरीर नहीं, यद्यपि साधुअसाधुपुरुषनके पुन्यपापके आधिन हैं, औ तिनकूं सुखदुःखके हेतु हैं; परंतु रामकृष्नादिकनके पुन्यपापतें र-

चित अवतारसरीर नहीं. औ तिनकूं अपनैं सरीरतैं सुखका तथा दुःखका भोग होवै नहीं. यातैं रामकृष्नादिकनके सरीर अपने पुन्यपापके आधिन नहीं, यह संभवै है.

तैसैं भूतनके परिनाम बी रामकृष्णादिक सरीर नहीं. किंतु चेतनआश्रितमायाका परिनाम हैं, जो पंचीकृतभूतनके परिनाम होवैं, तौ कृष्णसरीरविषै रज्जुकृत बंधनादिकनका अभाव सास्त्रमैं कह्या है, सो असंगत होवैगा. यद्यपि पंचभूतरचित सिद्धयोगीसरीरमैं बी बंधनादिक होवैं नहीं, तथापि योगीसरीरमैं प्रथम बंधनादिकनका संभव होवै है, फेरि योगाभ्यासरूप पुरुषार्थतैं बंधनदाहादिकनकी योग्यता नास होवै है. कृष्णादिकनके सरीरमैं योगी कीं न्याईं कछु पुरुषार्थसैं बंधनादिकनका अभाव नहीं, किंतु तिनके सरीर सहजहीं बंधनादि योग्य नहीं, यातैं भूतनके परिनाम नहीं. औ मांडुक्यभाष्यकी टीकामैं आनंदगिरिनैं रामादिक सरीर भूतनके परिनाम कहे हैं, सो स्थूलदृष्टिसैं और-सरीरनके समान वे सरीर प्रतित होवैं हैं; इस अभिप्रायतैं कहे हैं. काहेतैं, भाष्यकारनैं गीताभाष्यमैं यह कह्या हैः—"जीवनके ऊपर अनुग्रहकरिके सरीरधारीकी न्याईं मायाके बलतैं परमात्मा कृष्णरूप प्रतीत होवै है, सो जन्मादिकरहित हैं. ताका वसुदेवद्वारा देवकीतैं जन्म बी मायातैं होवैं हैं." इसरीतिसैं भाष्यकारनैं कृष्णसरीर मायाका कार्य कह्या हैं, यातैं भूतनतैं अवतारसरीरनकी उत्पत्ति नहीं किंतु तिनके सरीरनका उपादानकारन साक्षात माया हैं.

औरजीवनकूं देहादिकनमैं आत्मभ्रांति है, रामकृष्णादिकनकूं नहीं. काहेतैं, जीवकी उपाधि अविद्या मलिनसत्वगुनवाली हैं, रामकृष्णादिकनकी उपाधि माया सुद्धसत्वगुनवाली है, यातैं जीवनकूं अविद्याकृतभ्रांति, औ रामकृष्णादिकनकूं मायाकृत सर्वज्ञता होवै है. जीवनकूं अज्ञानकृत आवरन, भ्रांतिके नासनिमित्त आचार्यद्वारा महावाक्यके उपदेसजन्य ज्ञानकी अपेछा है. तैसै रामकृष्नादिकनकूं आवरन औ भ्रांति नहीं; यातैं उपदेसजन्य ज्ञानकी अपेछा नहीं. किंतु जीवकूं अंतःकरनकी वृत्तिरूप ज्ञानकी न्याई ईस्वरकूं मायाकी वृत्तिरूप आत्माका ज्ञान तौ उपदेसादिक विना वी होवै है; परंतु ता ज्ञानतैं कछु प्रयोजन तिनकूं सिद्ध होवै नहीं. काहेतैं, जीवनकूं घटादिकनके ज्ञानतैं आवरनभंग, औ विषय जो घटादिक तिनका प्रकास होवै है. औ ब्रह्मरूपतैं आत्माका ज्ञान जो जीवकूं होवै है, तां ज्ञानका विषय जो आत्मा, ताका आवरनभंग तौ ज्ञानतैं होवै है, औ आत्माविषय स्वयंप्रकास है; यातैं आत्मज्ञानतैं विषयका प्रकास होवै नहीं. तैसैईश्वरकूं मायाकी वृत्तिरूप जो " अहं ब्रह्मास्मि " ऐसा ज्ञान, ताका विषय ईश्वरका आत्मा, सो आवरनरहित स्वयंप्रकास है, यातैं आवरनभंग, वा विषयका प्रकास ईश्वरके ज्ञानका प्रयोजन नहीं. जैसै जीवनमुक्तविद्वानकूं निरावरनआत्माकूं विषय करनेवाली अंतःकरनकी " अहं ब्रह्मास्मि " ऐसी वृत्ति आवरनभंगादिक प्रयोजनरहित होवै है, तैसैं

ईस्वरकूं बी आवरनभंगादिक प्रयोजनविना मायाकीवृत्ति-रूप "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसा ज्ञान उपदेसादिकतैं विना होवै है.

इसरीतिसैं रामकृष्नादिकनकूं जीवनतैं विलछनता ईस्वरता है, तौ बी तिनका सरीर मायारचित है, यातैं ब्रह्म नहीं; किंतु मिथ्या है. मायानैं उत्पन्न किया जो अवतारन का सरीर' सो हस्तपादादिक अवयवसहित, औ रूपसहित किया है; यातैं नेत्रइंद्रियका विषय तिनका सरीर होवै है. ब्रह्मकूं नेत्रइंद्रिय विषय करै नहीं.

तैसै त्वचाइंद्रिय बी स्पर्सकूं, औ स्पर्सके आश्रयकूं विषय करै है. ब्रह्म स्पर्सका आश्रय नहीं, औ स्पर्स नहीं. यातैं त्वचाइंद्रियका विषय नहीं.

रसनाइंद्रियतैं रसका ज्ञान, घ्राणतैं गंधका ज्ञान, श्रोत्रतैं सब्दका ज्ञान होवै है. रस गंध सब्दतैं ब्रह्मविलछन है; यातैं रसना घ्राण औ श्रोत्रतैं ब्रह्मका ज्ञान होवै नहीं.

औ कर्मइंद्रिय ज्ञानके साधन नहीं; किंतु वचनादिक क्रियाके साधन हैं. यातैं तिनतैं तौ किसीका ज्ञान होवै नहीं. इसरीतिसैं किसी इंद्रियतैं ब्रह्मका ज्ञान बनै नहीं औ इंद्रियतैं जोज्ञानहोवै, सो ज्ञानप्रत्यछ कहिये है, प्रत्यछकूं ही अपरोछ कहे हैं. यातैं ब्रह्मका अपरोछज्ञानबनै नहीं; किंतु सब्दसैं ब्रह्मका ज्ञान होवै है. जो सब्दसै ज्ञान होवै, सो परोछ होवै है. यातैं ब्रह्मका ज्ञान बी परोछही होवै है.

# श्रीगुरुरुवाच.

## दोहा.

इंद्रिय विन प्रत्यछ नहिं, सिष यह नियम न जान,
विन इंद्रिय प्रत्यछ व्है, जैसै सुखदुख ज्ञान. ११८

टिका.—इंद्रियसंबंधविना प्रत्यछज्ञान होवै नहीं, यह नियम नहीं. काहेतैं, जैसें सुखका औ दुखका ज्ञान होवै सो किसी इंद्रियतैं होवैं नहीं. सो सुखदुखका ज्ञान वि प्रत्यछ होवै है, यातैं इंद्रियसंबंधतैं जो ज्ञान होवै, सोई प्रत्यछज्ञान होवै, यह नियम नहीं. किंतु विषयतैं वृत्तिका संबंध होयके विषयाकारवृत्ति जहां होवै, तहां प्रत्यछज्ञान कहिये है. सो विषयतैं वृत्तिका संबंध कहूं इंद्रियद्वारा होवै है; औ कहूं सब्दसे होव है. जैसे "दसम तूं है" इस सब्दतैं, दसम जो आपनातैं अंतः करनकी वृत्तिका संबंध होयके दसमाकारवृत्ति होवै है. यातैं सब्दजन्य वी दसमका ज्ञान प्रत्यछ होवै है.

तैसें प्रमाताविषै सुखदुख होवै, तब सुखाकार दुखाकार अंतःकरनकी वृत्ति होवै; ता वृत्तिसैं सुखदुखका संबंध होवै है, यातैं सुखदुखका ज्ञान प्रत्यछ कहिये है. पूर्वउत्पन्न सुख दुख नष्ट हुये पाछे जहां पुरुषकूं याद आवै तहां सुखाकार दुखाकार अंतःकरनकी वृत्ति तौ होवै है, परंतु वृत्तिके नष्ट हुये सुखदुखतैं संवंध नहीं, यातैं सो ज्ञान स्मृतिरूप है; प्रत्यछरूप नहीं. यद्यपि अंतःकरनके धर्म सुखदुख साछीभास्य है, तथापि सुखाकार दुखाकार अंतःकरनकी वृत्तिद्वारा साछी सुखदुखका प्रकास करै है जो साछीभास्यपदार्थ हैं तिनकूं

बी साछी वृत्तिकी अपेछातैंही प्रकासैं है, जैसै सुक्तिरजत साछीभास्य हैं, तहां अविद्याकी वृत्तिकी अपेछाकरिके साछी रजतकूं प्रकासै है. परंतु सुखदुखके प्रकासमैं अंतःकरनकी वृत्ति साछीकी सहायक है. औ मिथ्यारजतादिकनके प्रकासमैं अविद्याकी वृत्ति सहायक है.

इसरीतिसैं साछीभास्यपदार्थके ज्ञानमैं बी वृत्तिकी अपेछा है. सो वृत्ति जहां इंद्रियादिक बाह्यसाधनतैं होवै, ताका विषय साछीभास्य नहीं कहिये हैं. सुखदुख कूंविषय करनैवाली वृत्तिमैं बाह्यइंद्रियादिक हेतु नहीं किंतु जब सुखादिक उत्पन्न होवैं; तिसीकालमैं अन्यसाधनकी अपेछाबिना सुखाकार दुखाकार अंतःकरनकी वृत्ति होवै है. ता वृत्तिमैं आरूढ साछी सुखदुःखकूं प्रकासै है, यातैं सुखदुःख साछीभास्य कहिये हैं.

औ बाह्य जो घटादिक हैं, तिनसैं अंतःकरनकी वृत्तिका संबंध नेत्रादिक इंद्रियद्वारा होवै है. यातैं घटादिक साछीभास्य नहीं. तैसै ब्रह्माकार अंतःकरनकी वृत्ति होवै हैं; सो अंतःकरनकी वृत्ति बाहिर नहीं जावै है; किंतु सरीरके अंतरही होवै है. ता वृत्तिसैं ब्रह्मका संबंध है, यातैं ब्रह्मका ज्ञान बी सुखदुःखके ज्ञानकी न्याई प्रत्यछरूप है. परंतु सुखाकारदुःखाकारवृत्तिमैं बाह्यसाधनकी अपेछा नहीं. यातैं सुखदुःख साछीभास्य हैं. औ ब्रह्माकार जो अंतःकरनकी वृत्ति, तामैं तौ गुरुद्वारा वेदवचनका श्रोत्रसैं संबंध बाह्यसाधन चाहिये है; यातैं ब्रह्म साछीभास्य नहीं. इसरीतिसैं जहां विषयतैं वृत्तिका संबंध होवैं, तहां प्रत्यछज्ञान कहिये हैं. "अहं ब्रह्मास्मि" या वृत्तिका विषय जो ब्रह्म, तासैं संबंध है. यातैं ब्रह्मका ज्ञान प्रत्यछ संभव हैं.

औ जहां धूमकूं देखिके अग्निका ज्ञान होवै है, तहां धूमका ज्ञान तौ प्रत्यछ हैं औ अग्निका ज्ञान प्रत्यछ नहीं. काहेतें, नेत्रद्वारा अंतःकरनकी वृत्तिका धूमतें संबंध है; यातें धूमका ज्ञान प्रत्यछ कहिये है.औ अनुमानतें अंतःकरनकी वृत्ति सरीरके अंतर अग्निके आकारकूं ग्रहन करनैवाली तौ हुई, परंतु अग्निसैं वृत्तिका संबंध नहीं, यातें अग्निका ज्ञान प्रत्यछ नहीं. इसरीतिसैं जहां वृत्तिसैं विषयका संबंध होवै, तहां प्रत्यछज्ञान कहिये है. जहां वृत्तिसैं विषयका संबंध नहीं होवै, विषय बाहिर दूरि होवै, अथवा भूत वा भविषत होवै, औ अनुमानतें, अथवा सब्दतें विषयाकारवृत्ति अंतर होवै, सो ज्ञान परोछ कहिये है. इंद्रियजन्य ज्ञानही प्रत्यछ होवै है, यह नियम नहीं. जैसै सुखदुःखका ज्ञान इंद्रियजन्य नहीं. औ प्रत्यछ है; तैसै दसमपुरुषका ज्ञान सब्दजन्य है; तौ बी प्रत्यछ होवै है. इसरीतिसैं गुरुद्वारा श्रवन किया जो 'महावाक्यरूप वेदसब्द' तासैं उत्पन्न हुवा ब्रह्मज्ञान बी प्रत्यछही संभवै हैं. ११८

## दोहा.

गुरुको अस उपदेस सुनि, तत्वदृष्टि बुधिमंत;
ब्रह्मरूप लखि आतमा, कियो भेदभ्रम अंत. ११९
"अहं ब्रह्म" या वृत्तिमैं निरावरन ह्वै भान;
दादू आदूरूप सो, यूं हमलियो पिछान. आ-

इति श्रीउत्तमाधिकारी उपदेशनिरूपनं नाम चतुर्थस्तरंगः समाप्तः ४

श्रीगणेशाय नमः

# अथ श्रीविचारसागरे

पंचमस्तरंगः प्रारंभः ५

## अथ श्रीगुरुवेदादि व्यावहारिक प्रतिपादन मध्यमाधिकारी साधननिरूपनं.

पूर्वतरंगमैं यह कह्याः— " गुरुमुखद्वारा श्रवन किये वेदवाक्यतैं अद्वैतब्रह्मका साक्षात्कार होवै है. " ताकूं मुनिके अदृष्ट नाम द्वितीयसिष्य, यह संका करै हैः— वेद गुरु सत्य होवैं तौ अद्वैतकी हानि; असत्य होवैं तौ तिनतैं पुरुषार्थकी प्राप्ति बनै नहीं दोनूंरीतिसैं वेदगुरुतैं अद्वैतज्ञान बनै नहीं—

वेद रु गुरु जो मिथ्या कहिये,
तिनतैं भवदुख नस्यो न चहिये;
जैसैं मिथ्या मरुथलको जल,
प्यासनासको नहिं तामैं बल. १
सत्य वेदगुरु कहैं तु द्वैत,
भयो गयो सिद्धांत अद्वैत;
यूं संकरमत पेखि असुद्धा,
तज्यो सकल मध्वादि प्रबुद्धा. २

"भयो" पदको प्रथमपादसैं अन्वय हैं.

यह संका भगवन् मुहि उपजै,
उत्तर देहु दयाल न कुपिजै;
गुरु बोले सिषकी सुनि बानी,
संकरको मत परम प्रमानी. ३
च्यारियार मध्वादिक जे है,
वेदविरुद्ध कहत सब ते हैं;
यामैं व्यासवचन सुनि लीजै,
संकरमतहि प्रमान करीजै. ४
कलिमैं वेदअर्थ बहु करिहै,
श्रीसंकरसिव तब अवतरि है;
जैन बुद्धमत मूल उखारै,
गंगातैं प्रभु मूर्ती निकारै. ५
जैसै भानु उदय उजियारो,
दूरि करै जगमैं अंधियारो;
सबवस्तुहि ज्यूंको त्यूं भासै,
संसै और विपर्यय नासै. ६
वेदअर्थमें त्यूं अज्ञाना,
नसि है श्रीसंकरव्याख्याना;
करि है ते उपदेस यथारथ,
नासहि संसय अरु अयथारथ. ७

अयथार्थ, कहीये भ्रांति.

और जु वेदअर्थकूं करि हैं,
ते सठ वृथापरिश्रम धरि हैं;
यूं पुरानमैं व्यास कही है,
संकरमतमैं मान यहीहै. ८
मध्वादिकको मत न प्रमानी,
यह हम व्यासवचनतैं जानी;
औरप्रमान कहूं सो सुनिये,
वालमीकरिषि मुख्य जु गिनिये. ९
तिन मुनि कियो ग्रंथ वासिष्ठा,
तामैं मत अद्वैत स्पष्टा;
श्रीसंकर अद्वैतहि गान्यो,
तिनको मत यह हेतु प्रमान्यो. १०
वालमीकरिषि वचन विरुद्धं,
भेदवाद लखि सकलअसुद्धं. ११

टीकाः— सर्वप्रकरनका भाव यह हैः—व्यासभगवाननैं पुरानमैं यह कही हैः— " जब कलिमैं वेदके अर्थकूं नाना भांति करैंगे, तब कृपालुसिव, श्रीसंकर नाम धारके अवतार लेके, बद्रिनाथकी मूर्तीका देवनदीमध्यतैं-उद्धार, स्वस्थानमैं स्थापन, जैनबुद्धमतखंडन, औ वेदका यथार्थव्याख्यान करैंगे," या व्यासवचनतैं श्रीसंकरमत प्रमान है, औ मध्यादिकनका भेदमत अप्रमान है. और उपनिषद, गीता, सूत्र, ये तीनि

जो वेदांतके प्रस्थान हैं, तिनके यद्यपि मध्वादिकननैं किसी-तरैं खीचके स्वस्वमतके अनुसार व्याख्यान किये हैं; तथापि व्यासवचनतैं श्रीसंकरकृत व्याख्यानही यथार्थ है. औ आदिकविसर्वज्ञवाल्मीकरिषिनैं उत्तररामायन वासिष्ठ नाम ग्रंथ किया है; तहां अद्वैतमतमैं प्रधान जो दृष्टिसृष्टिवाद है, सो अनेकइतिहासनसैं प्रतिपादन किया है. यातैं वाल्मीकवचनअनुसार अद्वैतमत प्रमान है, औ वाल्मीकवचनविरुद्ध भेदमत अप्रमान है. इसरीतिसैं सर्वज्ञरिषिमुनिवचनविरोधतैं भेदवाद अप्रमान कह्या. औ युक्तिसैं बी भेदवाद विरुद्ध है, यह खंडनआदिक ग्रंथनमैं श्रीहर्षादिकननैं प्रतिपादन किया है. युक्ति कठिन है, यातैं भेदमतखंडनकी युक्ति नहीं लिखी. औ,

रिषिमुनिवचनतैं विरुद्ध भेदमतमैं जैनमतकी न्याई अप्रमानता निश्चय हुयेतैं युक्तिसैं खंडनकी आस्तिकअधिकारीकूं अपेछा बी नहीं. यह तीनिचौपाईसों कहै हैं:—

## चौपाई.

कियो ग्रंथ श्रीहर्ष जु खंडन,  
खंडनभेद एकतामंडन;  
लिख्यो तहां यह बहु विस्तारा,  
भेदवाद नहीं युक्ति सहारा.  
और भेदधिक्कार जु ग्रंथा,  
तहां भेदखंडनको पंथा;

कठिन द्रुरूहतर्क है ते अति,
नहीं पैठिहि सिष तिनमैं ते मति. १३
यातैं कही न ते तुहि उक्ती,
करै जु भेदहि खंडन युक्ती;
अप्रमान मत भेद लख्यो जब,
खंडनमैं युक्ति न चहियत तब. १४

वेदवचनसैं बी भेदमतविरुद्ध है; यह कहै हैं:—

भेदप्रतीति महादुखदाता,
यम कंठमैं यह टेरत ताता;
यातैं भेदवाद चित त्यागहु,
इक अद्वैतवाद अनुरागहु. १५

*"मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यती" ति श्रुतेः

"द्वितीयाद्वै भयं भवति"

"अन्यो सावन्योहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेव स देवानां" इतिहि श्रुती.

---

* अर्थ " जो पुरुष इस परमात्माविषै नानाकी न्याई देखता है, सो मृत्युतैं मृत्युकूं पावता है. " इति

अर्थः—जोद्वितीयकूं मतिमें धारै,
भय ताकूं यह वेद पुकारै;
ज्ञेय ध्येयमोतें कछु औरा,
लखै सु पसु यह वेद ढंढोरा. १६
सिष यातें मध्वादिकवानी,
सुनी सु विसरह अतिदुखदानी;
द्वैतवचन तव हियमें जौलौं,
व्है साछात अद्वैत न तौलौं. १७
द्वैतवचनको स्मरन जु होवै,
व्है साछात तु ताहि विगोवै;
पूर्वस्मृति साछातविनाशत,
सुन इक अस तुहि कथा ... न्याई
आस्तिकअधिका
राजाको इक भर्तृमंत्री, ... हैं:—
राज काज सब ताके तंत्री;
औरमुसाहिब मंत्री जेते,
करैं ईरषा तासू तेते.

तंत्री कहिये आधीन

करी नसकत भर्तृकी हाना,
महाराज निजजिय प्रिय जाना;
तब सब मिलि यह रच्यो उपाया,

धारि दौर दंगा मचवाया. २०
सो सुनि राजहि करी कचहरी,
लिये बुलाय मुसाहिब जहरी;
तिनसूं कह्यो वेग चढि जावहु,
दौरतधारि सु धूम नसावहु. २१
तब सब मिलि उत्तर यह दीना,
सदा एक भर्छूहि तुम चीनां;
मरनलिए अबहमहिं पठावतु,
भर्छूकूं कहु क्यूं न चढावतु? २२
तब बोल्यो भर्छू करजोरी,
महाराज सुनु विनती मोरी;
ा होय मोहि यह रौरी,
ाहूं सकल धारि जो दौरी. २३
तब भर्छूकूं बोल्यो राजा,
तुम चढि जाहु समारहु काजा;
ते जातहि भर्छू सब मारे,
बनके कृषीवल किये सुखारे. २४
भर्छू विजय सुन्यो तिन जबही,
राजापैं भाख्यो यह तबही;
भर्छू मर्‍यो न सुधर्‍यो काजा,

मिथ्यावचन सुनतही राजा. २५
और प्रधान मुसाहिब कीनो,
छत्र रु पीनस पंखा दीनो;
बंदोबस तिन कीने अपनहु,
सुनै न राजा भर्छूंहि सुपनहु. २६
सबवृत्तांत भर्छू तब सुनिके,
रूप तपस्वि धर्यो यह गुनिके;
राजापैं मुहि जान न दै हैं,
गये द्वारलग प्रानहु लै हैं. २७
अबलग सबहि पदारथ भोगै,
देह रु इंद्रिय रहे अरोगै;
तिय जो चारि चतुर्पद सोहत.
च्यारिफूल फल खग मन मोहत. २८

" तिय " आदि, " खग " अंत, ये दो पदके अर्थका दोहा.

## च्यारिचतुर्पद.

करि कर उरु मृग खुरु पुरज, केहरिसी कटि मान;
लोयन चपल तुरंगसैं; बरनै परमसुजान. २९

## च्यारिफूल.

कमलवदनअलसीकुसुम,चिबुकचिन्हमतिधाम

तिलप्रसूनसी नासिका, चंपकतनु अभिराम. ३०

## च्यारिफल.

विंब अधर दारिम दसन, उरज विल्लसे धीर;
कोहरसी एडी कहत, कोविद मति गंभीर. ३१

## च्यारिखग.

है मरालसी मंदगति, कंठ कपोत सुढार;
पिकसी बानी अतिमधुर, मोरपुच्छसे वार. ३२

## चौपाई.

गंग पयोनिधि कबहु न त्यागत,
जातैं रसिक सुमन अनुरागत;
विधि तिलोत्तमा अपर बनाई,
छन्यो सुंद जिन सो न सुहाई. ३३
मिहिंदि जावक कर पद रागा,
तिनको मैं किय निमिष न त्यागा;
औरभोग तिनके उपकरना,
भोगै सबैं निकट भौ मरना. ३४
अहो मूढ को मम सम जगमैं,
भौ लंपट अबलग मैं भगमैं;
गीलो मलिन मूत्रतें निसिदिन,
स्रवत मांसमय रुधिर जु छत बिन. ३५

चर्म लपेट्यो मांसमलीना,
ऊपरि वार असुद्ध अलीना;
इनमैं कौन पदारथ सुंदर,
अतिअपवित्र ग्लानिको मंदिर. ३६
तियकी जंघ जघन्य सदाही,
रंभा करि कर उपमित जाही;
आर्द्र मृतको मनु पतनारो,
रुधिर मांस त्वक अस्थि पसारो. ३७
लगत जु नीके स्थूलनितंवा,
तिनके मध्य मलिन मलवंवा;
तट ताकेतैं अतिदुर्गंधा,
व्हैआसक्त तहां सो अंधा. ३८
अधर जो थूक लारसैं भींजत,
तजि ग्लानि निजमुखमैं दीजत;
दृष्टमदा नारी मदिरा भजि,
सुद्धअसुद्ध विवेक दियो तजि. ३९
दृष्टमदा कहिये जाके देखतही मद चढै.
कहत नारिके अंग जु नीके,
करत विचार लगत युं फीके;
कपट कूटको आकर नारी,
मैं जानी अब तजन विचारी. ४०

कलाकंद दधि पायस पेरा.
तंदुलघृत व्यंजन बहुतेरा;
और विविधभोजन जे कीने,
तिन सबके रसना रस लीने. ४१
अबलौं भई न तृप्ति जु याकूं,
यातैं वृथा पोषिना ताकूं;
छुधा विनासहि बन फल कंदा,
व्है क्युं पराधीन यह बंदा. ४२
गुहा महल बन बाग घनेरा,
क्युं राजाको व्है हूं चेरा;
सैजसिला अरु निजभुज तकिया,
निर्झरजल कर पात्र न रुकिया. ४३
बैठी इकंत होय सुछंदा,
लहियें भर्छू परमानंदा;
बिन एकांत न आनंद कबहू
मिलै अब्धिलौं पृथ्वी सबहू. ४४

दोहा.

पृथ्वीपती निरोग युव, दृढ स्थूल बलवंत;
विद्यायुत तिहि भूपमैं, मानुष सुखको अंत. ४५

## चौपाई.

जे मानव गंधर्व कह्यावत,
तानृपतैं सतगुनसुख पावत;
होत देवगंधर्व जु औरा,
तिनतैं तहँ सौगुनसुख ब्यौरा. ४६
सुख गंधर्वदेवको जो है,
तातैं सतगुन पितरनको जो है;
पुनिआजानदेवमैं तिनतैं,
सौगुन कर्मदेवमैं जिनतैं. ४७
मुख्यदेव जे है पुनि तिनमैं,
कर्मदेवतैं सौगुन जिनमैं;
जो त्रिलोकपति इंद्र कह्यीजै,
तामैं पुनि सौगुन गिनी लीजै. ४८

मुख्यदेव कहिये ग्यारा रुद्र, बाराआदित, आठवसु; ये इकतीस.

सबदेवनको गुरू बृहस्पति;
लहै इंद्रतैं सतगुन सुखगती;
जाको नाम प्रजापति भाखत,
गुरुतैं सुख सौगुन सो राखत. ४९
ताहुतैं सौगुन ब्रह्महि सुख,

लहै न रंचक सो कबहु दुख;
इतनै या क्रमतैं सुख पावत,
तैत्तिरीयश्रुति युं समुझावत. ५०

सोरठा.

रांजातैं ब्रह्मांत, कह्यो जु सुख सगरो लहै;
रहत सदा एकांत, कामदग्ध जाको न हिय. ५१

चौपाई.

व्है एकांतदेसमैं अस सुख,
युवति पुत्र धन संग सदा दुख;

## अथ युवतीसंग दुःख बर्नन.

युवति कुरूप कुबोलनि जाके,
सदा सोक हिय व्है यह ताके. ५२
प्रभु पुरिषपंडा यह रंडा,
दिय मुहि कौन पापको दंडा;
बोलत बैन व्याल कागनिके,
भेंड भैंसि न्यौरि नागनिके. ५३
भूत भावती ऊठनिको है,
बोल खरीको सुनि खर मोहै;
रैनि जु ऊचे स्वरहि उचारत,
स्यार हजारन सुनत पुकारत. ५४

निरपराध तिय बिन वैरागा,
तजत न वनत पाप जिय लागा;
रहत दुखि यूं निसिदिन पिय मन,
तिय कुबोल सुनि लखि कुरूप तन. ५५
कामनि व्है जु सुरूप सुवानी,
सो कुरूपतैं व्है दुखदानी;
चमकच्चामकी पियहि पियारी,
अर्थ धर्म नसि मोच्छ बिगारी. ५६

## अथ धनबिगार.

मीठेबैन जहरयुत लड्डवा,
खाय गमाय बुद्धि व्है भडवा;
औरकछु सुपनहुनहीं देखै,
काम अंध इक कामनि लेखै. ५७
धन कछु मिलै जु बाहिर घरमैं,
सो सब खरचै कामनि धरमैं;
भूषन वस्त्र ताहि पहिरावै,
गुरु पितुमात यादिहु न आवै. ५८
पायस पान मिठाई मेवा,
देय भक्तितैं तिय निजदेवा;
नेह नाथ नाथ्यो नाहिं छूटै,

तियकूसान्न पियवैलहि कूटै. ५९

## अथ धर्मविगार.

ज्यूं सूवा पिंजरेमैं बंधुवा,
सिखयो बोलत सुद्ध असुद्धवा;
तैसै जो कछु नारि सिखावत,
सो गुरु पितु मातहीं सुनावत. ६०
जैसै मोर मोरनी आगै,
नाचि रिझाय आप अनुरागै;
तैसै विविधवेष करि तियको,
मन रिझाय रीझत मन पियको. ६१
जब दुहूनको मन अनुराग्यो,
तब हि मदन मदिरा मद जाग्यो;
भये बावरे वसनकु त्यागे,
अतिउन्मत घूरन पुनि लागे. ६२
प्रेतरूप धरि नग्न अमंगल,
भिरि फिरि भिरत मेष मन दंगल;
ज्यूं लोटत मद्यपि मतवारो,
गिनत मलीन गलीन न नारो. ६३
त्यूं नरनारी मदन मदअंधे,
अतिगलीन अंगनमैं बंधे;

करत मदन मद भ्रम जे मनकूं,
व्है अचरज सुनि त्यागी जनकूं. ६४
नसै मदन मदतैं मति नरकी,
लखत न ऊंचनीच परघरकी;
तियहु बावरी मदन बनाई.
क्रियादुखद जिहि व्है सुखदाई. ६५
प्रबलकाम मदिरा मद जागै,
तब द्विज तियधानकतैं लागै;
पिये मदन मदिरा नरनारी,
ऐसै करत अनंतखुवारी. ६६
कामदोष यूं नरहि विगोवत,
सो प्रकट सुंदरी तिय जोवत;
यातैं अतिसुरूप तिय दुखदा,
ताको त्याग कहत मुनि सुखदा. ६७
जो सुरूप तियमैं अनुरागत,
विषम दुखद परिख नहीं भागवत;
उभयलोकको करत सु हानी,
मुनिजन गन गुन साख बखानी. ६८
जो नानाविध भोजन खावै,
रस ताको फल बिंदु उपावै;

जीवन बिंदु अधीन सबनको,
नसत सोक बिंदुहुतैं मनको. ६९
व्है जब जनको मन मलवासी,
करत सोक अति धरत उदासी;
रुधिर निवास धरत मन जबहू,
चंचल अधिक रजोगुन तबहु. ७०
जब मन करत बिंदुमैं वासा,
तब सोक चंचलता नासा;
पुनि आपहि बलवत जन जानै,
व्है प्रसन्न सुभ कारज ठानै. ७१
बिंदु अधिक होवै जा जनमैं,
सुंदरका निरूप तातनमैं;
बिंदुहुको तनमैं उजियारो,
नसै बिंदु तन मनु हतियारो. ७२
जाको बिंदु न कबहु नासै,
बलिनपलित तिहि तन प्रकासै;
योगीकरत खेचरीमुद्रा,
तातैं बिंदु राखि व्है भद्रा. ७३
अष्टसिद्धि जे धारत योगी,
बिंदु खसै हारत ते भोगी;

अस अतिउत्तम विंदु जु जगमैं,
तिहिं तिय छीनि लेत निजभगमैं. ७४
ज्यूं किसान वेलनमैं ऊषहि,
पिरत लेत निचोरि पियूषहि;
वार वार वेलनमैं धारहि,
व्है असार दथ्था तब जारहि. ७५

हलकीबाथ गंडेकी बंधी हुई वेलनमैं देवै, ताका नाम दथ्था पंजावमैं प्रसिद्ध है.

त्यूं तिय भींचि भुजनमैं पीकूं,
भरत योनि घट खींचि अमीकूं;
पुनिपुनि करत क्रिया नित तौलौं,
सेप विंदुको विंदु जौलौं. ७६
कियो असार नारि नरदेहा,
खीच फुलेल फुल ज्यूं खेहा;
भौ अकाम सब ताहि जरावै,
सूकं वैन मुरार लगावै. ७७
व्है जु सुरूप जोर धन भारी,
ता नरपैं नारी वलिहारी;
करि सुरुप धन वलको अंता,
कहत ताहि तूं काको कंता. ७८

तिहि पुनि मिलन चहै जु अनारी,
कर धरपैं धरतहु दे गारी;
नाक चढाय आंखिहू मोरै,
जाय न पति सैजहुके धोरै. ७९
कोटिवज्र संघात जु करिये,
सबको सार खींचि इक धरिये;
तियके हिय सम सो न कठोरा,
रिषि मुनिगन यह देत ढंढोरा. ८०
करत गुमान हठत तिय ज्यूं ज्यूं,
चिपटत सठ मति जन मन त्यूं त्यूं;
कबहुक ताको वांछित करिके,
मरन अंत छोडत न पकरिके. ८१
पढ्यो पुरान वेद स्मृति गीता,
तर्कनिपुन पुनि किनहू न जीता;
करत अधीन ताहि तिय ऐसै,
बाजीगर बंदरकूं जैसै. ८२
सब कछु मनभावत करवावत,
पढैपसुहि भलभांति नंचावत;
उक्ति युक्ति सब तबही विसरै,
जब पंडित पढि तियपैंढिसरै. ८३

जब कबहू सुमरत यह वेद्दा,
तब तियमैं मानत कछु खेदा;
तिहिं त्यागनकी इच्छा धारै,
पुनि तिय नैन सैन सर सारै. ८४

जहरकटाछ नैनसर बौरै,
तानि कमान भौंह जुग जोरै;
मारत सारत हिय सब जनको,
विज्ञहुं बचत न धन सठ गनको. ८५

विज्ञ कहिये विद्वानहु न बचत, सठगनको धन कहि कहा चीज.

भयो न तियमैं तीव्रविरागा,
युं मतिमंद करत पुनि रागा;
करत विविधआज्ञा ज्यूं चाकर,
हुकम करै बैठी मनु ठाकर; ८६
जे नर नारनयनसर वींधे,
तिनके हिये होत नहिं सीधे;
भलो बुरो सुखदुख सब विसरत,
ते कैसे भवदुखतैं निसरत. ८७
नारि बुरी वेस्या अरु परकी,
तीजी नरकनिसानी घरकी;

तजत विवेकी तिहुंमें नेहा,
करै नेह तिह सठमुख खेहा. ८८

दोहा

अर्थ धर्म अरु मोछकूं, नारि बिगारत ऐन;
सब अनर्थको मूल लखि, तजै ताही व्है चैन. ८९
पुत्र सदा दुख देत यूं, बिनप्राप्ति दुख एक;
गर्भसमय दुख जन्म दुख, मरै तु दुःख अनेक. ९०

चौपाई.

गर्भ धरत जौ लौं नाहिं नारी,
दुख दंपति मन तौ लौं भारी;
व्है जु गर्भ यह चिंत न नासै,
पुत्रीहोय कि पुत्र प्रकासै? ९१
गर्भ गिरनके हेतु अनंता,
तिनतैं डरत करत अतिचिंता;
व्है जु पूत नवमास बिहानै,
जननी जनक अधिक दुखसानै. ९२
नवग्रहमैं इक द्वै नहीं बिगरै,
अस जन को जन्म न जगसगरै;

विगरै ग्रहकी निसिदिन चिंता,
करत मातपितु बैठि इकंता. १३
सिसु उदास व्है जब तजिबोबा,
तब दोउ मिलि लागत रोबा;
यूं चिंतत कछु गये महीने,
दांतपूतके निकसै झीने. १४
मरत बाल बहु निकसत दंता,
तब यह चिंता दुख तिय कंता;
जिये दूबरो दुखतें वारो,
देखि चुहारो धरत उतारो. १५
म्लेछ चमार चूहरे कोरी,
तिनतैं झरवावत द्विज धोरी;
सइयद ख्वाजा पीर फकीरा,
धोकत जोरत हाथ अधीरा. १६
जाकूं हिंदु कबहु नहिं मानै,
पुत्रहेतु तिहि इष्ट पिछानै;
भैरो भूतमनावत नाना,
धरत सिवा बल भूमिमसाना. १७
धानकको डमरू घरि बाजै,
कर जोरत पूजत नहिं लाजै;

और जंत्रता विज घनैरे,
लिखि मधवाय पूतगर गेरै. ९८
निजकुलमैं इक अच्युतपूजा,
किनहु न सुपनहु सुमऱ्यो दूजा;
सो कुल नेम पूतहितत्याग्यो,
व्यभिचारन ज्यूंहँतहँ लाग्यो. ९९
होत सीतलाको जबनिकसन,
नसत मातपितु मनको विकसन;
स्नानक्रिया तजि रहत मलीना,
परमदेव गदाहाकूं कीना. १००
मोरिवाग बकसहु सिसु मोरा,
गदहामात चराउं तोरा;
यूं कहि चना गोदमैं धारै,
विनती करि गदहाकूं चारै. १०१
अस अनंतदुखतें सिसु पारन,
जुवा होत लौं और हजारन;
उमर पूतकी व्है जो थोरी,
मरि है करहु उपाय करोरी. १०२
मरै मातपित कूटहि माथा,
मानि आपकूंदिन अनाथा;

हाय हाय करि निसदिन रोवै,
करि धिक धिक निजजन्म विगोवै. १०३
पूत मरनको व्है दुख जैसो,
लखत सपूत अपूत न तैसो;
जोजीवै तौ होत हि तरुना,
लगत नारिके पोषन भरना. १०४

सपूत कहिये जाका पूत जीवै है, औ अपूत कहिये जाके पूत नहीं हुआ.

दिन अनेकयतननि प्रतिपारौ,
तिनकूं जल प्यावन है भारौ;
रजनि सैजपैं सिखवै नारी,
तव पितमात देहु मुहि गारी. १०५
व्है सुपूत तौ प्रातहि उठिके;
नवैं दूरतें माथ न गठिके;
चहै मातपित आवैं नेरै,
पूत न सन्मुख आखिहु हेरै. १०६
व्है कुपूत तौ उठतहि प्राता,
वचन गारिसम बकि असुहाता;
जुदौ होय ले सब घरको धन,
दे पितमातहि इक तिनको तन. १०७

फेरि संभारत कबहु न तिनकूं,
पोषत सबदिन तिय निजतनकूं;
देखि लेत पितमात उसासा
या विधिपुत्र सदा दुखरासा, १०८

दोहा.

करि विचार यूं देखियें, पुत्र सदा दुखरूप;
सुख चाहत जे पूततें, ते मूढनके भूप. १०९
तजि तिय पूत जुधन चहै, ताके मुखमें धूर;
धन जोरन रछा करन, खरच नास दुखमूर ११०

चौपाई.

जो चाहै माया बहु जोरी,
करै अनर्थ सु लाख करोरी;
जातिधर्म कुलधर्म सु त्यागै,
जो धनकुं जोरन जन लागै. १११
विना भाग तदपि न धन जुरि हैं,
जुरै तु रछा करिकरि मरि हैं;
खरचत धन घटि है यह चिंता,
नासै निसिदिन ताप अनंता. ११२
सदा करत यूं दुख धन मनकुं,
चहै ताहि धिकधिक तिहि जनकूं;

युवति पूत धन लखि दुखदाता,
तज्यो भर्छू ममताको नाता. ११३

कुंडलियाछंद.

भर्छू वन एकांतमैं, गयो कियो चित सांत;
भयो नयोदीवान तिन, सुन्यो सकलवृत्तांत;
सुन्यो सकलवृत्तांत, चिंत यह उपजी ताके;
जो नृप जीवत सुनै, मिलै वा काहू नाके;
तौ झूठे हम होहि, भूप देसवकूं दंडा;
यातैं अव मिलि कहौ, भर्छु भौ प्रेत प्रचंडा; ११४

दोहा.

करि सलाह यह परस्पर, गये कचहरी वीच;
सबहि कहि यह भूपतैं, भर्छू प्रेत भौ नीच. ११५
राख लगाये देहमैं, मिलै जाहि बतरात:
तिहि मारत सोनर वचत, जोतिहिदेखि परात; ११६
परात कहिये भाग जावै.
सुनि भूपह निश्चय कियो, भर्छू मरी भौ प्रेत;
साचझूठ भूप न लखत, व्है जु प्रमाद अचेत ११७
कछू दिन वीते भूप तव, मारन गयो सिकार;
पैठ्यो गिरि वनसघनमैं, जहँ मृगराज हजार. ११८

तपत तहां इक तरुतरै, भर्छू निजदीवान;
पेखि ताहि भाज्यो उलटि, मानि प्रेतदुखदान. ११९

इंद्रवछंद.

भर्छू मऱ्यो रु परेत भयो यह,
वाक्य असत्यहु सत्य पिछाना;
देखि लियो निजआखिन जीवत,
तोहु परेत हु मानि भगाना;
वंचकतैं सुनि द्वैत तथा मति मैं,
विसवांस करै जु अजाना;
ब्रह्म अद्वैत लखै परतछहु,
तौहु न ताहि हिये ठहराना. १२०

दोहा.

भेदवचन विस्वास करि, सुनत जु कोउ अजान;
सो जन दुख भुगतै सदा, ह्वै न ब्रह्मको ज्ञान. १२१
यातैं सुनै जु भेदके, वचनलखै सु असत्य;
तबही ताकूं ज्ञान ह्वै, महावाक्यतैं सत्य. १२२

चौपाई.

सिषतैं सुनी जु भेदकहानी,
जानि झूठ त नरकनिसानी;

तिनके कहनहार सब झूठै,
पुरुषारथ सुखतें सठ रूठै. १२३
तिनको संग न कबहू कीजै,
व्है जो संग न वचन सुनीजै;
जो कहु सुनै तु सुनतही त्यागहु,
म्लेछ जैन वच सम लखि भागहु. १२४
जो मिथ्या व्है दैसिक वेदा,
कैसे करही भवदुख छेदा?
याको अब उत्तर सुनि लीजै,
मिथ्यादुख मिथ्यातें छीजै. १२५
वेद रु गुरू सत्य जो होवै,
तौ मिथ्याभवदुख नाहिं खोवै;
यामें इक दृष्टांत सुनाउं,
जातें तव संदेह नसाउं, १२६
सुरपति इंद्र स्वर्गमें जैसो,
प्रबलप्रताप भूप इक ऐसो;
भीमसमान सूर बहुतेर,
तिनके चहुघा डेर गेर. १२७
जोधाले निजनिज हथियारन,
खरै रहे तिहिद्वार हजारन;

अंदिर मंदिर ड्यौढी ठाढे,
लिये खडग कोसनतैं काढे. १२८

कोस कहीये म्यान.

उंचोमहल अटारी जामैं,
फूलसैज सोवै नृप तामैं;
पंछी हू पौंचन नहिं पावै,
तहां और कैसै चलि जावै. १२९

तहां भूप देख्यो अस सुपना,
पकर्यो पैर गादरी अपना;
भूप छुडायो चाहत निजपग,
तजत न गादरि पकरि जु पगरग. १३०

तब राजा यूं खरो पुकारै,
है को अस जो गादरि मारै;
जोधा जो ठाढै निजद्वारा,
तिन रंचकहु न दियो सहारा, १३१

तब नृप दंड लियो निजकरमैं,
आपुहि मार्यो स्यारनि सिरमैं;
लगत दंड भौ ताको अंता,
तब निसरै पग रगतैं दंता. १३२

दांत लगै गाढै नृप पगमैं,

यूं लंगरात सु चालत मगमैं;
तब चाल्यो ले लाठी करमैं,
पहुच्यो घावरियाके घरमैं. १३३
ताहि कह्यो फोहा अस दीजै,
घाव पावको तुरत भरीजै;
घावरिया नृपतैं यह भाख्यो,
फोहा नहिं तयार घर राख्यो. १३४
जो तूं दे पैसा इक मोकूं,
तौ तयार करि देहुं तोकूं;
तब उलट्यो नृप लाठी टेका,
नहिं देनकुं कौडिहु एका. १३५
लाग्यो सोच करन टरि घरतैं,
बूजै बात कौन बिन जरतैं;
जो मैं होत धनी वडभागा,
आवतु घर घावरिया भागा. १३६
मोहि निकंमा जानि कंगाला,
घरतैं तुरत रोग ज्यूं टाला;
याहीकूं कछु दोष न दीजै,
बिनस्वारथको किहि न पतीजै. १३७
मातपिता बांधव सुत नारी,

करत प्यार स्वारथतैं भारी;
जो नहिं स्वारथ सिद्धी पावै,
तौ इनकूं देख्योहु न भावै. १३८
जा बिन घरी एक नहिं रहते,
दुख अपार बिछुरै सब लहते;
जब देखै आयो घर पौरी,
घरके मिलत भाजि भरि कौरी. १३९
विधि अधीन कोढी सो होवै,
सब अंग निमैं पानी चोवै;
अरु जरि परी आंगुरी जाके,
भिनभिनात मुख माखी ताके. १४०
कहन ताहि ते घरके प्यारे,
मरि पापी अब तौ हतियारे;
जिहि देखत अंखिया न अघानी,
तिहि लखि ग्लानि वमन ज्यूं आनी. १४१
जो तिय हिय लागत पति प्यारो,
किय न चहत पल उरतैं न्यारो;
ताकी पवन बचायो लौरै,
भिरै जु वसन तु नाक सकौरै. १४२
जिहि पितुमात गोदमैं लेते,

सकुचत तिहि करते कछु देते;
मिलत भ्रात जो भरि भुज कोरी,
सो वतरात वीच दै डोरी. १४३
ऐसै जग स्वारथको सारो,
विन स्वारथ को काको प्यारो;
मुहि स्वारथयोग्य न विधि कीनो,
यातैं इन फोहा नहिं दीनो. १४४
यू चिंतत इकमुनि तिहिं भेट्यो,
तिन दै जरी घावदुख मेट्यो;
निद्रातैं जाग्यो नृप जवही,
घावदरद मुनि नासै तवही. १४५
सिष यह तुहि दृष्टांत प्रकास्यो,
लिखि मिथ्या तैं मिथ्या नास्यो;
मिथ्यादुख देख्यो जव राजा,
साचसमाज न किय कछु काजा. १४६

टीकाः—सर्व प्रकरनका अर्थ स्पष्ट. भाव यह हैः— संसाररूप दुःख मिथ्या है, यातैं तिसके दूरि करनेके साधन वेद-गुरु मिथ्याही चाहिये हैं. मिथ्याके नासमैं सत्यसाधनकी अपेछा नहीं. औ सत्यसाधन होवै. तौ तिनतैं मिथ्याका नास होवै नहीं; जैसैं राजाके समीप मिथ्यागादरी स्वप्नमैं पहुची, किसी सत्यजोधासैं रुकी नहीं; औ राजा पुकार्यो.

जब काहूसैं बी मरी नहीं; औ राजाके पास अनेक साचे-
सस्त्र धरे रहे, तौ बी मिथ्यादंडसैं मरी. औ राजाके मिथ्या-
घाव भया, तब कोई वैद्यजराह साचा पाया नहीं. मिथ्या-
जराहके पास गया; तानै पैसा मांग्या, तौ अनंत खजानै
साचे धरेही रहे, एकपैसा बी राजाकूं मिल्या नहीं. कोई
बी सत्यसाधन राजाके दुखके नास करनैमैं समर्थ हुआ
नहीं; किंतु मिथ्यामुनिनैं मिथ्याजरी देके मिथ्यादुखका नास
किया. इसरीतिके स्वप्न सर्वकूं अनुभवसिद्ध हैं. जाग्रतप-
दार्थका स्वप्नमैं काहूकूं कदे बी उपयोग होवै नहीं. तैसै मिथ्या
जो संसारदुख, ताका नास मिथ्यावेदगुरुसैं होवै है, साचे
वेदगुरु अपेछित नहीं.

जैसै मरुथलके मिथ्याजलतैं तृषाका नास होवै नहीं,
तैसै मिथ्यावेदगूरुतैं संसारदुखका नास होवै नहीं; औ मिथ्या
वेदगुरु मानिके संसारदुखका तिनतैं नास अंगीकार करौगे,
तौ मरुभूमिके जलतैं बी तृषाका नास हुया चाहिये. यह
संका सिष्यनै करीथी,

## ताका समाधान.

### चौपाई.

यद्यपि मिथ्या मरुथलपानी,
तातैं किनहु न प्यास बुझानी;
तदपि विषमदृष्टांत सु तेरो,
सत्ताभेद दुहनमैं हेरो, १४७

टीकाः— यद्यपि मिथ्या जो मरुभूमिका पानी, तातैं किसीनै प्यास नहीं बुझाई; औ मिथ्यागुरुवेदतैं दुखके नासकी न्याई मिथ्याजलसैं प्यासका नास हुवा चाहिये; औ प्यासनास होवै नहीं, तैसै मिथ्यागुरुवेदतैं संसारका नास बनै नहीं; तदपि कहिये तौबी तेरा दृष्टांत विषम है. काहेतैं, इहुनमैं कहिये मरुथलका जल औ प्यास इन दोनुंमैं सत्ताका भेद है, ताकूं हेरो कहिये देखो.

## चौपाई.

समसत्ता भवदुख गुरुवेदा,
यूं गुरुवेद करत भवछेदा;
आपसमैं समसत्ता जिनकी,
लखि साधकबाधकता तिनकी. १४८

टीकाः— भवदुख औ गुरुवेदकी समसत्ता कहिये एकसत्ता है; यातैं गुरुवेदतैं भवदुःखका छेद होवै है. जिनकी आपसमैं समसत्ता होवै, तिनकी आपसमैं साधकता औ बाधकता होवै है; जैसै मृत्तिका औ घटकी समसत्ता है, यातैं मृत्तिका घटका साधक है; अग्नि औ काष्ठकी समसत्ता है, ताहां अग्नि काष्ठका बाधक है. साधक कहिये कारन, औ बाधक कहिये नासक. मरुथलके जलकी औ प्यासकी समसत्ता नहीं, यातैं मरुथलका जल प्यासका बाधक नहीं. यास्थानमैंयह रहस्यहैः— चेतनमैं परमार्थसत्ता है, औ चेतनसैं भिन्न जो मिथ्यापदार्थ, तिनमैं दो प्रकारकी सत्ता हैंः— एक तौ व्यवहारसत्ता है, औ दूसरी प्रतिभासिकसत्ता है,

जा पदार्थका ब्रह्मज्ञान विना बाध होवै नहीं, किंतु ब्रह्मज्ञानसैंही बाध होवै, ता पदार्थमैं व्यवहारसत्ता कहिये है. सो व्यवहारसत्ता ईश्वरसृष्टिमैं है; काहेतैं, देहइंद्रियादिक प्रपंच जो ईश्वरसृष्टि, ताका ब्रह्मज्ञानसैं विनाबाध होवै नहीं ब्रह्मज्ञानसैंही बाध होवै है. यद्यपि ईश्वरसृष्टिके पदार्थनका ब्रह्मज्ञानसैं विना नास तौ होवै वी है, परंतु ब्रह्मज्ञानसैं बिना बाध होवै नहीं. अपरोछमिथ्यानिश्चयका नाम बाध है. सो अपरोछमिथ्यानिश्चय ईश्वरसृष्टिके पदार्थनमैं ब्रह्मज्ञानसैं प्रथम किसीकूं होवै नहीं; ब्रह्मज्ञानसैं अनंतरही होवै है. यातैं मूलअविद्याके कार्य जो जागृतके पदार्थ; ईश्वरसृष्टि. तामैं व्यवहारसत्ता है. जन्ममरण बंधमोछआदिक व्यवहारके सिद्ध करनैवाली जो सत्ता कहिये होना, सो व्यवहारसत्ता कहिये है.

औ ब्रह्मज्ञानसैं विनाही जिनका बाध होवै, तिन पदार्थनमैं प्रतिभाससत्ता कहिये है. जैसे ब्रह्मज्ञानसैं विनाही, सुक्ति, जेवरी, मरुथल, आदिकनके ज्ञानतैं; रूपा, सर्प, जल, आंदिकनका बाध होवै है, तिनमैं प्रतिभाससत्ता है. प्रतिभास कहिये प्रतीतिमात्र जो सत्ता कहिये होना, सो प्रतिभाससत्ता कहिये है. तूलअविद्याके कार्य, रूपाआदिक पदार्थनका प्रतीतिमात्रही होना है; यातैं तिनकी प्रतिभाससत्ता है.

जाका तीनकालमैं बाध होवै नहीं, ताकी परमार्थसत्ता कहिये है. चेतनका बाध कदे होवै नहीं, यातैं परमार्थसत्ता चेतनकी है.

इसरीतिसैं वेदगुरु औ संसारदुख इनकी, एक व्यवहार-सत्ता होंनैंतें आपसमैं समसत्ता है. यातैं मिथ्यावेदगुरुतैं मिथ्याभवदुःखका नास बनै है. औ छुधापिपासा प्रानके धर्म हैं, प्रान औ ताके धर्मनका ब्रह्मज्ञानसैं विना बाध होवै नहीं, यातैं पिपासाकी व्यवहारसत्ता है; मरुथलके जलका ब्रह्मज्ञानसैं विनाही मरुथलके ज्ञानतैं बाध होंनैंतें मरुथलकेजलकी प्रतिभाससत्ता है. यातैं प्यास औ मरुथलके जलकी समसत्ता नहीं होंनैंतें ता जलतैं प्यासका नास होवै नहीं. या प्रकारतैं दार्ष्टांतविषै बाधक वेदगुरु, औ बाध्य संसारदुःख, तिनकी सत्ता एक है, औ दृष्टांतविषै जल औ प्यासकी सत्ताका भेद है, यातैं दृष्टांत विषम कहिये दार्ष्टांतके सम नहीं.

## संका

### चौपाई

ब्रह्मभिन्न मिथ्या सब भाखौ,
तिनको भेद हेतु किहि राखौ;
उपज्यो यह मोकूं संदेहा,
प्रभु ताको अब कीजे छेहा. १४९

टीकाः– हे प्रभु! ब्रह्मसैं भिन्न आप सर्वकूं मिथ्या कहौहौ; तिन मिथ्यापदार्थमैं सुक्तिरूपा रज्जुसर्प मरुथलजल आदिकनका ब्रह्मज्ञानसैं विनाही बाध, औ संसारदुःखका ब्रह्मज्ञानसैं अनंतर बाध; यह भेद कौन हेतुसैं राखौ हौ?

## उत्तर.

### चौपाई

सकल अविद्याकारज मिथ्या,
सिष तामैं रंचकहु न तथ्या;
जा अज्ञानसैं उपजत जोई,
ताके ज्ञान बाध तिहि होई. १५०

टीका:—हे सिष्य! यद्यपि ब्रह्मसैं भिन्न सकल अविद्याका कार्य है, यातैं मिथ्या है; तामैं रंचक बी तथ्या कहिये सत्य नहीं; परंतु जाके अज्ञानसैं जो उपजे है, ताके ज्ञानसैं तिसका बाध होवै है. सुक्ति रज्जु मरुथल आदिकनके अज्ञानतैं, रूपा सर्प जल आदि उपजैहै; तिनका बाध सुक्ति-रज्जु मरुथल आदिकनके ज्ञानतैं होवै है; औ ब्रह्मके अज्ञानसैं जो जन्ममरनादिक संसारदुःख उपजै है, ताका बाध ब्रह्मज्ञानतैं होवै है.

## सिष्य उवाच.

### दोहा.

भगवन् ब्रह्म अज्ञानतैं, जोउपजै संसार;
सो किहि क्रमतैं होत है,कहौ मोहि निरधार. १५१

अर्थ स्पट.

## श्रीगुरुरुवाच.

## चौपाई.

जैसैं स्वप्न होत विन क्रमतैं,
त्यूं मिथ्याजग भासत भ्रमतैं;
जो ताको क्रम जान्यो लौरै,
सो मरुथलजल वसन निचौरै. १५२

अर्थ स्पष्ट.

## दोहा.

उपनिषदनमैं बहुतविधि, जगउत्पत्ति प्रकार;
अभिप्राय तिनको यही, चेतन भिन्न असार. १५

टीका:—यद्यपि उपनिषदनमैं जगतकी उत्पत्ति अनेकप्रकारसैं कही है, छांदोग्यमैं तौ सतरूप परमात्मातैं अग्नि,जल, पृथ्वी. क्रमतैं उपजे हैं, यह कह्या है. औ तैत्तिरीयमैं आकास, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, क्रमतैं होवै हैं. इसरीतिसैं पांचभूतकी उत्पत्ति कही है. औ कहूं सर्वकी परमेश्वर उत्पत्ति करै है, इसरीतिसैं क्रमसैं विनाही उत्पत्ति कही है ऐसैं जगतकी उत्पत्ति वेदमैं अनेकप्रकारसैं कही है. तहां वेदका यह अभिप्राय है:— जगत मिथ्या है. जो जगत कछु पदार्थ होता तौ ताकी उत्पत्ति, अनेक प्रकारसैं वेदनहीं कहता अनेक प्रकारसैं जगतकी उत्पत्ति कही है, यातैं जगतकी उत्पत्ति प्रतिपादनमैं वेदका अभिप्राय नहीं. किन्तु अद्वैतब्रह्म लखावनैकूं जगतके निषेध करनैवास्तै मिथ्याजगतका किसीरीतिसैं आरोप किया है. दृष्टांतः— जैसैं विनोदके निमित्त

दारूका हस्ती उडावनेकूं बनावै है, ताके कानपूछ टेंठे होवै, तो सूधे करनेवास्तै यत्न नहीं करते. तैसे अद्वैतज्ञानके निमित्त प्रपंचके निषेधनकूं प्रपंचका आरोप किया है. यातैं वेदनै प्रपंचकी उत्पत्तिक्रम, एकरूप कहनेमैं यत्न नहीं किया, प्रपंचकी उत्पत्ति एकरूपसैं वेदनै नहीं कही, यातैं यह जानै है:– वेदका अभिप्राय प्रपंचनिषेधनमैं है, ताकी उत्पत्तिमैं अभिप्राय नहीं. और

सूत्रकार भाष्यकारनै द्वितीयअध्यायमैं उत्पत्ति कहनेवाले श्रुतिवचनका विरोध दूरि करिके जो एकरूपसैं तैत्तिरीयश्रुतिके अनुसार, उत्पत्तिमैं सर्वउपनिषदनका अभिप्राय कह्या है, सो मंदजिज्ञासुके निमित्त कह्या है. जो उत्पत्तिवाक्यनके पूर्व कहे अभिप्रायकूं नहीं जानै, ता मंदजिज्ञासुकूं उपनिषदनमैं नानाप्रकारसैं जगतकी उत्पत्ति देखिके आपसमैं उपनिषदनका विरोध है, यह भ्रांति होय जावैगी. ताके दूरि करनेकूं सर्वउपनिषदनमैं एकरूपसैं जगतकी उत्पत्तिप्रतिपादनका प्रकार कह्या है. औ जाकूं ब्रह्मविचारसैं यथार्थज्ञान नहीं होवै, ताकूं लयचिंतनके निमित्त बी उत्पत्तिक्रम कह्या है. जा क्रमतैं उत्पत्ति कही है, तासैं विपरीतक्रमतैं लयचिंतन करै. ता लयचिंतनसैं अद्वैतमैं बुद्धि स्थिर होवै है. सो लयचिंतनका प्रकार पंचीकरनमैं वार्त्तिककार-सुरेश्वराचार्यनै कह्या है. यह ग्रंथ उत्तम जिज्ञासुके निमित्त है, यातैं जगतकी उत्पत्ति औ लयका प्रकार नहीं लिख्या. औ सागररूप है, यातैं संछेपतैं दिखावै है. सुद्धब्रह्मसैं जग-

तकी उत्पत्ति होवै नहीं, काहेतें सुद्धब्रह्म असंग है, औ अक्रियहै; किंतु मायाविसिष्ट जो ईश्वर, तासैं जगतकी उत्पत्ति होवैहै. यातैं माया औ ईस्वरका स्वरूप प्रतिपादन करै हैं.

### कवित्त

जीवईसभेदहीन चेतनस्वरूप मांहि,
माया सो अनादि एक सांत ताहि मानिये;
सत औ असततैं विलछन स्वरूप ताके,
ताहिकूं अविद्या औ अज्ञानहू बखानिये;
चेतनसामान्य न विरोधी ताको साधक है
वृत्तिमैं आरूढ वा विरोधी वृत्ति जानिये;
मायामैं आभास अधिष्ठान अरु माया
मिल, ईससरवज्ञ जगहेतु पहिचानिये. १५४

टीका:—जीवईस्वरभेदरहित जो सुद्धचेतन, ताके आश्रित माया है. सो माया अनादि कहिये आदिरहित है. आदि नाम उत्पत्तिका है. जो मायाकी उत्पत्ति अंगीकार करैं, तौ मायाके कार्य प्रपंचसैं तौ पुत्रसैं पिताकी न्याई मायाकी उत्पत्ति बनै नहीं. चेतनसैंही मायाकी उत्पत्ति माननी होवैगी. तहां जीवभाव औ ईश्वरभाव तौ मायाके कार्य हैं, मायाकी सिद्धि हुएविना जीवईश्वरका स्वरूप असिद्ध है. यातैं जीवचेतन वा ईश्वरचेतनसैं मायाकी उत्पत्ति कहना असंभव है. औ सुद्धचेतन असंग है, अक्रिय है, निर्विकार है, यातैं

मायाकी उत्पत्ति मानै विकारी होवैगा. औ शुद्धचेतनसैं मायाकी उत्पत्ति होवै तौ मोक्षदसाविषै माया फेरि उपजैगी. यातैं मोक्षनिमित्त साधन निष्फल होवैगे, इसरीतिसैं माया उत्पत्तिरहित है; यातैं अनादि है; औ एक है, सांत कहिये अंतवाली है; ज्ञानतैं मायाका अंत होवै है, औ सतअसतसैं विलक्षन है. जाका तीनिकालमैं बाध होवै नहीं, सो सत कहिये है, ऐसा चेतन है. मायाका ज्ञानतैं बाध होवै है; यातैं सतसैं विलक्षन है. जाकी तीनिकालमैं प्रतीति होवै नहीं, सो ससशृंग, वंध्यापुत्र, आकासफूल, आदिक असत कहिये है. ज्ञानसैं पूर्व माया औ ताका कार्य प्रतीत होवै "जाग्रतविषै" मैं अज्ञानी हूं, ब्रह्मकूं नहीं जानूं हूं," इसरीतिसैं माया प्रतीत होवै है, औ स्वप्नकेविषै जो नानापदार्थ प्रतीत होवै हैं—तिनका उपादानकारन माया है.

औ सुषुप्तिसैं अनंतर अज्ञानकी इसरीतिसैं स्मृति होवै है:—"मैं सुखसैं सोया, कछु वी न जानता भया." सो स्मृति अज्ञातवस्तुकी होवै नहीं, यातैं सुषुप्तिमैं अज्ञानका भान होवै है, सो अज्ञान औ माया एकही है; तिनका भेद नहीं. या प्रकारतैं तीनूं अवस्थाविषै मायाकी प्रतीति होवै है; यातैं असतसैं विलक्षन है. इसरीतिसैं सतअसतसैं विलक्षन जो माया, ताका कार्य्य वी सतअसतसैं विलक्षन है. सतअसतसैं विलक्षनकूंही अद्वैतमतमैं मिथ्या कहै है; औ अनिर्वचनीय कहै है. यातैं माया औ ताके कार्यतैं द्वैतकी सिद्धि होवै नहीं. काहेतैं, जैसे चेतन

सतरूप है, तैसैं माया औ ताका कार्य सत् बी अनादि है होवैं, सो माया ओ ताका कार्य सतअसतसैं विलछन होनैंतै मिथ्या है. मिथ्यापदार्थसैं द्वैत होवै नहीं. जैसैं स्वप्नके पदार्थ मिथ्या हैं. तिनतैं द्वैत होवै नहीं,

जीवईश्वरविभागरहित सुद्धब्रह्मके आश्रित माया है; औ सुद्धब्रह्मकूंही आच्छादन करै है; जैसें गेहके आश्रित अंधकार गेहकूं आछादन करै हैं. या पछकूं स्वाश्रयस्वविषयपछ कहै हैं. स्व कहिये सुद्धब्रह्मही आश्रय, औ स्वकहिये सुद्धब्रह्मही विषय, कहिये मायातैं आछादित है. अर्थ यह, ढक्या है. संछेपसारीरक, विवरन, वेदांतमुक्तावली, अद्वैतसिद्धि अद्वैतदीपिका, आदिक ग्रंथकारोंनै स्वाश्रयस्वविषयही अज्ञान अंगीकार किया है.

औ वाचस्पतिका यह मत है:—अज्ञान जीवके आश्रित है, औ ब्रह्मकूं विषय करै है. "मैं अज्ञानी ब्रह्मकूं नहीं जानूं हूं" या प्रतीतिसैं "मैं" सब्दका अर्थ जीव. "अज्ञानी" कहनैंतैं अज्ञानका आश्रयभान होवै है. औ "ब्रह्मकूं नहीं जानूं हूं" यातैं अज्ञानका विषय ब्रह्म प्रतीत होवै है. इसरीतिसैं अज्ञान जीवके आश्रित औ ब्रह्मकूं विषय कहिये आछादन करै है. सो अज्ञान एक नहीं, किंतु अनंत हैं; काहेतैं जो एक अज्ञान मानैं, तो एक अज्ञानकी एकके ज्ञानतैं निवृत्ति हुयेतैं औरनकूं अज्ञान औ ताका कार्य संसार प्रतीत नहीं हुवा चाहिये. जो ऐसैं कहै आजतोरी किसीकूं ज्ञान हुवा नहीं, तौ आगे बी किसीकूं ज्ञान नहीं होवैगा.

यातैं माया कसाधन निष्फल होवैंगे. यातैं अनंतजीवनके आश्रित अज्ञान अनंत हैं, अनंतजीवनके अनंतअज्ञानकल्पित, ईश्वर अनंत औ ब्रह्मांड अनंत हैं. जा जीवकूं ज्ञान होवै ताका अज्ञानईश्वरब्रह्मांडकी निवृत्ति होवै है. जाकूं ज्ञान नहीं होवै, ताकूं बंध रहै है. यह वाचस्पतिका मत है, सो समीचीन नहीं. काहेतें.

" ईश्वर, जीवके अज्ञानसें कल्पित है. " यह कहना श्रुतिस्मृतिपुराननतें विरुद्ध है. ईश्वर अनंत, औ जीव जीवमैं सृष्टिका भेद, यह बी विरुद्ध है. यातैं नानाअज्ञान माननै असंगत है. औ नानाअज्ञान मानिके ईश्वर औ सृष्टि एक मानैं, तो बनै नहीं. काहेतें, जीवईश्वरप्रपंच अज्ञानकल्पित हैं. अनंतअज्ञान माननैतें, एकएक अज्ञानकल्पित जीवकी न्याई ईश्वर औ प्रपंच बी अनंतही होवैंगे. याहीतें वाचस्पतिनैं अनंतईश्वर औ अनंतसृष्टि कही है. यातैं अज्ञान एक है. यह मत समीचीन है.

सो एक अज्ञान बी जीवके आश्रित नहीं; किंतु सुद्धब्रह्मके आश्रित है. काहेतें, जीवभाव अज्ञानका कार्य है. सो अज्ञान स्वतंत्र कहै बी रहै नहीं, यातैं निराश्रयअज्ञानसें तो जीवभाव बनै नहीं. प्रथम किसीके आश्रित अज्ञान होवै; तब अज्ञानका कार्य जीवभाव होवै. जीवपनैकी न्याई ईश्वरता बी अज्ञानका कार्य है. ताके आश्रित बी अज्ञान नहीं, किंतु सुद्धब्रह्मके आश्रित अनादि अज्ञान है. अनादि जो चेतन औ अज्ञान, तिनका संबंध बी अनादिचेतनअ-

ज्ञानके अनादिसंबंधसैं जीवभाव ईश्वरभावअनादि है परंतु जीवभाव औ ईश्वरभाव अज्ञानके आधीन है. यातैं अज्ञानका कार्य कहिये है. यद्यपि "मैं अज्ञानी हूं" इसरीतिसैं जीवके आश्रित अज्ञान, प्रतीत होवै है; तथापि सुद्धब्रह्मके आश्रित जो अज्ञान, ताका जीवकूं "मैं अज्ञानी हूं" यह अभिमान होवै है. औ जीव अज्ञानका कार्य है. यातैं अज्ञानका अधिष्ठानरूप आश्रय जीव बनै नहीं. किंतु सुद्धब्रह्मही अज्ञानका अधिष्ठानरूप आश्रय है. सुद्धब्रह्म-अधिष्ठानके आश्रित जो अज्ञान, सो ता ब्रह्मकूंही आछादन करै है. तिसतैं अनंतर "मैं अज्ञानी हूं" इसरीतिसैं अज्ञानका अभिमानी रूप आश्रय जीव होवै है. या प्रकारतैं स्वाश्रय स्वविषय अज्ञान है.

सो अज्ञान यद्यपि एक है, औ ज्ञानतैं निवृत्त होवै है. परंतु जा अंतःकरनमैं अज्ञान होवै, ता अंतःकरनअवछिन्न-चेतनमैं स्थित जो अज्ञानका अंस ताकी निवृत्ति ज्ञानसैं होवै है. सोई मुक्त होवै है. जा अंतःकरनमैं ज्ञान नहीं होवै, तहां अज्ञानका अंस रहै है, औ बंध रहै है. या रीतिसैं एक-अज्ञानपक्षमैं बंधमोक्षव्यवहार बनै है. औ किसीकूं वाचस्पतिकी रीतिसैं नानाअज्ञानवादही बुद्धिमैं प्रवेस होवै, तौ वह बी अद्वैतज्ञानका उपाय है, ताके खंडनमैं कछु आग्रह नहीं. जिसरीतिसैं जिज्ञासुकूं अद्वैतबोध होवै, तैसे बुद्धिकी स्थिति करै. सुद्धब्रह्मकें आश्रित जो माया, ताकूं अविद्या औ अज्ञान कहै हैं. अचिंत्यसक्ति औ युक्तिकूं नहीं सहार,

यातैं माया कहै हैं. वियातैं नास होवै है, यातैं अविद्या कहै हैं. स्वरूपका आछादन करै है, यातैं अज्ञान कहै हैं. जा चेतनके आश्रित है, सो सामान्यचेतन ताका विरोधी नहीं. किंतु सामान्यचेतन मायाका साधक है, सत्तास्फुरन देवै है. औ वृत्तिमैं आरूढ कहिये स्थित, सो चेतन अथवा चेतनसहित वृत्ति ताकी विरोधी जानिये. कवित्वके तीनी पादनतैं मायाका स्वरूप कह्या.

" मायामैं आभास " इत्यादि चतुर्थपादसैं ईश्वरका स्वरूप कहै हैं. सुद्धसत्वगुनसहित माया औ मायाका अधिष्ठान चेतन; मायामैं आभास, तीनू मिले ईश्वर कहिये है. सो ईश्वर सर्वज्ञ है. सोई जगतका हेतु कहिये कारन है. कारन दोप्रकारका होवै है:—एक तो उपादानकारन होवै है, एक निमित्तकारन होवै है. जाका कार्यके स्वरूपमैं प्रवेस होवै, औ जा विना कार्यकी स्थिति होवै नहीं; सो उपादानकारन कहिये है, जैसै मृत्तिका घटका उपादानकारन है. घटके स्वरूपमैं ताका प्रवेस है. औ मृत्तिका विना घटकी स्थिति नहीं. जाका स्वरूपमैं प्रवेस नहीं. किंतु कार्यकूं भिन्न स्थित होयके करै; औ जाके नासतैं कार्य बिगरै नहीं; सो निमित्तकारन कहिये है. जैसै घटके कुलाल दंड चक्र आदिक निमित्तकारन हैं, घटके स्वरूपमैं तिनका प्रवेस नहीं. घटसैं भिन्न कहिये किनारै स्थित होयके घटकी उत्पत्ति करै है. औ उत्पत्ति हुये पाछे कुलाल दंड

चक्र आदिकनके नासतैं घट विगरै नहीं. इसरीतिसैं उपादान औ निमित्त दोप्रकारका कारन होवै है.

औ जगतका उपादान औ निमित्त दोनू प्रकारतैं ईश्वरही कारन है. जैसैं एकही मकरी जालेका उपादानकारन औ निमित्तकारन है. औ जो ऐसैं कहैं:– मकरीका जडसरीर जालेका उपादानकारन, औ मकरीके सरीरमैं जो चेतनभाग सो निमित्तकारन है; यातैं एक ईश्वरकूं निमित्तकारन, औ उपादानकारन माननैमैं कोई दृष्टांत नहीं. तौ मकरी[illegible] न्याई ईश्वरका सरीरजडमाया जगतका उपादान कार[illegible] औ चेतनभाग निमित्तकारन. इसरीतिसैं एकही ईश्वर ज[illegible]तका उपादान औ निमित्तकारन है. तामैं मकरीका दृष्टां[illegible] औ मुख्यदृष्टांत स्वप्न है. जा समय जीवनके कर्म फ[illegible] दैनेकूं सन्मुख नहीं होवै, तब प्रलय होवै है. औ जीवनके कर्म फल देनेकूं सन्मुख होवै, तब सृष्टि होवै है. इसरीतिसैं जीव कर्मके आधीन सृष्टि है. यातैं,

## जीवका स्वरूप कहै है:-

### दोहा.

मलिनसत्व अज्ञानमैं, जो चेतनआभास;
अधिष्ठानयुत जीव सो, करत कर्म फल आस ५५

टीका:– रजोगुनतमोगुनकूं दाबि लेवै, सो सुद्धसत्वगुन कहिये है. औ रजोगुनतमोगुनसैं आप दबै सो मलिनसत्व

गुन कहिये हैं. ता मलिनसत्वगुनसहित अज्ञानके अंसमैं जो चेतनका आभास, औ अज्ञान, औ ताका अधिष्ठान कूटस्थ, तीनूं मिले जीव कहिये है. सो जीव कर्म करै है औ फलकी आस करै है.

ता जीवके कर्मनके अनुसार उंचनीचभोगके निमित्त ईस्वर स्रष्टि रचै है. यातैं ईस्वरमैं विषमदृष्टि औ क्रूरता नहीं. और जो ऐसै कहैं:— सर्वसैं प्रथम स्रष्टिसैं पूर्व कर्म नहीं. औ प्रथमस्रष्टिमैं उंचनीचसरीर औ भोग ईस्वरनैं रचे हैं, यातैं ईस्वर विषमदृष्टि हैं. सो बनै नहीं. काहेतैं, संसार अनादि है. उत्तरउत्तरस्रष्टिमैं पूर्वपूर्वस्रष्टिके कर्म-हेतु हैं. सर्वसैं प्रथम कोई स्रष्टि नहीं, यातैं ईस्वरमैं दोष नहीं.

## कवित्व.

जीवनके पूर्व स्रष्टि कर्मअनु सार ईस,
इच्छा होय जीवभोग जग उपजाईये;
नभ वायु तेज जल भूमि भूत रचै तहां,
सब्द स्पर्श रूप रस गंध गुन गाईये;
सत्वअंस पंचनको मेलि उपजत सत्व,
रजोगुनअंस मिलि प्रान त्यूं उपाईये;
एक एक भूत सत्वअंस ज्ञानइंद्रि रचै,
कर्मइंद्रि रजोगुनअंसतैं लखाईये. १५६

टीका:—जब जीवनके कर्म भोग देंनेसैं उदासीन होवै तब प्रलय होवैं है. प्रलयमैं सर्वपदार्थनके संस्कार मायामैं रहै हैं. यातैं जीवनके कर्म बी जो बाकी रहेथे सो सूछम होयके मायामैं रहै हैं. जब कर्म भोग देंनेकूं सन्मुखहोवैं, तब ईस्वरकूं यह इच्छा होवै है:—"जीवनके भोगनिमित्त जगत उपजाईये."

ऐसी ईस्वरकी इछातैं माया तमोगुनप्रधान होवै है. ता तमोगुनप्रधानमायातैं नभ, वायु, तेज, जल, भूमि, ये पंचभूत रचे जावै हैं. तिन भूतनमैं क्रमतैं सब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, ये पांचगुन होवै हैं. मायातैं शब्दसहित आकासकी उत्पत्ति औ आकासतैं वायुकी उत्पत्ति, वायु आकासका कार्य है; यातैं आकासका सब्दगुन वायुमैं होवै है; आपना गुन स्पर्श होवै है. वायुतैं तेजकी उत्पत्ति औ तेजमैं आकासका सब्द, वायुका स्पर्श होवै है, अपना रूप होवै है. तेजतैं जलकी उत्पत्ति, आकासका सब्द, वायुका स्पर्श, तेजका रूप, जलमैं होवै है; अपना रस होवै है. जलसैं पृथ्वीकी उत्पत्ति औ आकासका सब्द, वायुकास्पर्स, तेजका रूप, जलका रस, पृथिवीमैं होवै है, पृथिवीका गंध होवै है. आकासमैं प्रतिध्वनिरूप सब्द है. वायुमैं सीसीसब्द, औ उष्नसीतकठिनतैं विलछन स्पर्श है. अग्निरूप तेजमैं भुकभुकसब्द, औ उष्नस्पर्श औ प्रकासरूप है. जलमैं चुलचुलसब्द, सीतस्पर्स सुक्लरूप, मधुरस है. औ क्षार तथा कटु पृथिवीके संबंधसैं जल प्रतीत होवै है,जलका रस

मधुरही है. सो मधुरता हरीतकीआदिक भछन करिके जलपान किये प्रगट होवै है. पृथिवीमैं कटकटशब्द, उष्नसीतसैं विलछन कठिनस्पर्स है. स्वेत, नील, पीत, रक्त, हरीतआदि रूप हैं. मधुर, आम्ल, छार, कटु, कसाय, तिक्त रस हैं. सुगंध औ दुर्गंध दोप्रकारका गंध है, इसरीतिसैं आकासमैं एक, वायुमैं दोय, तेजमैं तीनि, जलमैं च्यारि, पृथिवीमैं पांचगुन हैं. तिनमैं एकएक अपना है, अधिक कारनके हैं. औ सर्वका मूलकारन ईस्वर है. तामैं माया औ चेतन दोभाग हैं. मिथ्यापना मायाका, औ सत्तास्फूर्ति चेतनका सर्वभूतनमैं हैं. कवित्वके दो पादका यह अर्थ है.

पंच भूतनका सत्वगुनअंस मिलिके सत्व कहिये अंतःकरनकूं उपजावै है. अंतकरन ज्ञानका हेतु है. औ ज्ञानकी उत्पत्ति सत्वगुनतैं अंगीकार करी है. यातैं अंतःकरन भूतनके सत्वगुनका कार्य है. औ पंचभूतनके कार्य पंचज्ञानइंद्रिय; तिन सबका सहायक है. यातैं पंचभूतनके मिले सत्वगुनतैं अंतःकरनकी उत्पत्ति कही है. देहके अंतर कहिये भीतर है. औ करन कहिये ज्ञानका साधन है; यातैं अंतःकरन कहिये है. औ भूतनके सत्वगुनका कार्य है. यातैं अंतःकरनका सत्व बी नाम है.

अंतःकरनका जो परिनाम ताकूं वृत्ति कहै हैं. सो अंतःकरनकी वृत्ति च्यारि है. पदार्थके भलेबुरेस्वरूपकूं निश्चय करनेवाली वृत्ति, वुद्धि कहिये है. संकल्पविकल्पवृत्ति मन

कहिये है, चितावृत्ति चित्त कहिये है. " अहं " ऐसी अभिमानवृत्ति अहंकार कहिये है.

पंचभूतनके मिले रजोगुनअंसतैं प्रानकी उत्पत्ति होवै है. सो प्रान, क्रियाभेदतैं औ स्थानभेदतैं पांचप्रकारका है. जाका हृदयस्थान, औ क्षुधापिपासा क्रिया, सो प्रान कहिये है. औ जाका गुदास्थान, मूत्रमल अधोनयनक्रिया सो अपान जाका नाभिस्थान, औ भुक्तपीत अन्नजलकूं पाचनयोग्य सम करै सो समान जाका कंठस्थान, औ स्वासक्रिया; सो उदान जाका सर्वसरीर स्थान, रसमेलनक्रिया, सो व्यान. औ कहूं, नाग, कूर्म कृकल, देवदत्त, धनंजय; पंचप्रान अधिक कहे हैं. तिनकी उद्गार, निमेष, छीक, जृंभाई, मृतसरीरफुलावन; ये क्रमतैं क्रिया कही है. पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकास पंचनके रजोगुनअंसतैं एकएककी क्रमतैं उत्पत्ति कही है. औ अपान समान, प्रान, उदान, व्यान, इनकी बी पृथिवीआदिक एकएकके रजोगुनअंसतैं उत्पत्ति कही है, सर्वके मिले रजोगुनअंसतैं नहीं. परंतु अद्वैतसिद्धांतमैं यह प्रक्रिया नहीं. काहेतैं, विद्यारण्यस्वामीनैं तथा पंचीकरनमैं वार्त्तिककारनैं सूछमसरीरमैं औ पंचकोसनमैं नागकूर्मआदिकनका ग्रहण किया नहीं. औ तिननैं अपानआदिक पंचप्रानकी उत्पत्ति बी भूतनके मिले रजोगुनअंसतैं कही है. यातैं एकएकके रजोगुनअंसनैं अपानआदिकनकी उत्पत्ति कथन असंगत औ सूछमसरीरमैं नागकूर्म आदिकनका ग्रहन असंगत. पंच-

घ्रानकाही सूछमसरीरमैं ग्रहन है. घ्रान विछेपरूप हैं, औ विछेपस्वभाव रजोगुनका है, यातैं भूतनके रजोगुनअंसतैं घ्रानकी उत्पत्ति कही है. यह तृतीयपादका अर्थ है.

एकएकभूतका सत्वगुनअंस पंचज्ञानइंद्रिय रचै है. औ एकएकका रजोगुनअंस एकएक कर्मइंद्रिय रचै है. आकासकें सत्वगुनतैं श्रोत्र, वायुके सत्वगुनअंसतैं त्वक, तेजके सत्वगुनअंसतैं नेत्र, जलके सत्वगुनअंसतैं रसना, पृथिवीके सत्वगुनअंसतैं घ्रान होवै है. ये पंचेंद्रिय ज्ञानके साधन हैं. यातैं ज्ञानेंद्रिय कहिये है. औ ज्ञान सत्वगुनतैं होवै है, यातैं भूतनके सत्वगुनतैं उत्पत्ति कही है. श्रोत्रेंद्रिय आकासके गुनकूं ग्रहन करै है; यातैं श्रोत्रेंद्रियकी आकासतैं उत्पत्ति कही. तैसैं जा भूतके गुनकूं जो इंद्रिय ग्रहन करै, ता भूतसैं ता इंद्रियकी उत्पत्ति कही है.

आकासके रजोगुनअंसतैं वाकइंद्रियकी उत्पत्ति; वायुके रजोगुनअंसतैं पानिकी; तेजके रजोगुनअंसतैं पादकी; जलके रजोगुनअंसतैं उपस्थकी; पृथिवीके रजोगुनअंसतैं गुदाकी उत्पत्ति होवै है. स्त्रीकी योनि औ पुरुषके मेढ्रमैं जो विषयानंदका साधन इंद्रिय सो उपस्थ कहिये है. कर्म नाम क्रियाका हैं. ये पांचइंद्रिय क्रियाके साधन हैं, यातैं कर्मेंद्रिय कहिये है. क्रिया रजोगुनतैं होवै है, यातैं भूतनके रजोगुनअंसतैं इनकी उत्पत्ति कही है.

## सवैयाछंद.

भूत अपंचीकृत औ कारज,
इतनी सूछमसृष्टि पिछान;

पंचीकृतभूतनतैं उपज्यो,
स्थूलपसारो सारो मान;
कारन सूछम स्थूलदेह अरू,
पंचकोस इनहींमैं जान;
करि विवेक लखि आतम न्यारो,
मुंज इषीकातैं ज्यूं भान. १५७

टीकाः— अपंचीकृतभूत औ तिनका कार्य अंतःकरन, प्रान, कर्मइंद्रिय, ज्ञानइंद्रिय, इतनी सूछमसृष्टि कहिये है. सूछमसृष्टिका ज्ञान इंद्रियतैं होवै नहीं. नेत्रनासिकादिकगोलक तौ इंद्रियनके विषय हैं; परंतु तिन गोलकनमैं स्थित जो इंद्रिय; सो काहुके इंद्रियनके विषय नहीं. सूछमसृष्टिकी उत्पत्तिसैं अनंतर ईस्वरकी इच्छातैं स्थूलसृष्टिके निमित्त भूतनका पंचीकरन होता भया.

पंचीकरन दोभांतिसैं कह्या हैः— एकएकभूतके दोदोभाग सम होयके एकएकभागके च्यारिच्यारिभाग भयेपांचभूतनका आधाआधाभाग, प्रथम ज्यूंका त्यूं रह्या है,आधेआधेभागके जो च्यारिच्यारिभाग सो पृथक रहे बडेअर्धभागनमैं अपनैअपनै भागकूं छोडिके मिलेतैं अर्धभाग सबभूतनमैं आपना, औ अर्धभाग अपनैसैं इतरच्यारिभूतनका मिलिके पंचीकरन कहावै है.

औ दूसरा यह प्रकार हैः— एकएकभूतके दोदोभाग भये, सो सम नहीं; किंतु एकभाग च्यारिअंसका, औ पंचम

अंसका एकभाग. इसरीतिसैं न्यूनअधिक दोदोभाग भये. तिनमैं सबके अधिकभाग ज्यूंके त्यूं पृथक्क स्थित रहे. औ पंचभूतनके न्यून जो पंचभाग, तिनके एकएकभागके पंच-पंचभागकरिके पृथकस्थित, अधिकपंचभागनमैं एकएक-भाग मिलिके पंचीकरन होवै है. प्रथमपछमैं एकभागकेच्या-रिभाग पृथक रहे, आधेआधेभागनमैं अपनै भागकूं छोडिके मिले. औ दूसरेपछमैं न्यूनभागके पंचभाग पृथक रहे. अ-धिकपंचभागनमैं अपनै भागसहितमैं मिले. औ प्रथमपछमैं पंचीकृतभूतनमैं अपनाअंस अर्ध, औ अर्धअंस औरनका. दूसरेपछमैं पंचीकरन कियेतैं अपनेअंस इकीस, और इनके अंस च्यारि. औ दूसरेपछकी सुगमरीति यह है:—एकएक-भूतनके पचीसपचीसभाग होय; इकीसइकीसभाग, औ च्या-रिच्यारिभाग पृथक भये. च्यारिच्यारिभागनमैंसैं एकएक-भाग इकीसइकीसभागनमैं मिले,अपनै इकीसभागनकूं छो-डिके. इसरीतिसैं दोप्रकारका पंचीकरन कह्या है. एकएक भूतमैं पांचपांचभूत मिलायके करनेका नाम पंचीकरन है. जिन भूतनका पंचीकरन किया है, तिनकूं पंचीकृत कहै हैं.

तिन पंचीकृतभूतनतैं इंद्रियनका विषय स्थूलब्रह्मांड होता भया ता ब्रह्मांडके अंतर, भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लो-क महर्लोक, जनलोक तपलोक, सत्यलोक; ये सातभुवन ऊपरके होते भये. औ अतल सुतल, पाताल, वितल, रसातल, तलातल, महातल,; ये सांतलोक नीचेके होते भये. तिन चतुर्दसलोकनमैं जीवनके भोगयोग्य अन्नादिक, औ

भोगका स्थान देव मनुष्य पसुआदि स्थूलसरीर होते भये. यह संछेपतें सृष्टिका निरूपन किया. औ मायाके कार्यका विस्तारसैं निरूपन कियेतैं कोटिब्रह्माकीउमरतैं बी मायाकृतपदार्थनिरूपनका अंत होवै नहीं; यह वाल्मीकीनैं अनेकइतिहासनतैं वासिष्ठमैं निरूपन किया है. यह सवैयाके दोपादनका अर्थ है.

तृतीयपादका अर्थ यह हैः—इनहीमैं कहिये, माया औ ताके कार्यमैं तीनीसरीर औ पंचकोस हैं. सुद्धसत्वगुनसहित माया ईस्वरका कारनसरीर औ मलिनसत्वगुनसहित अविद्या अंस जीवका कारनसरीर है. उत्तरसरीरके आरंभक पंचसूछमभूत, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, पंचप्रान, पंचकर्मइंद्रिय; पंचज्ञानइंद्रिय; जीवका सूछमसरीर है. औ सर्वजीवनके सूछमसरीरही मिलिके ईस्वरका सूछमसरीर है. संपूर्न स्थूलब्रह्मांड ईस्वरका स्थूलसरीर है. औ जीवनकेव्यष्टिस्थूलसरीर प्रसिद्ध है. इन तीनिसरीरनमैंही पंचकोस हैं. कारनसरीरकूं आनंदमयकोस कहै है. विज्ञानमय, मनोमय, प्रानमय,तीनिकोस सूछमसरीरमैं हैं. पंचज्ञानेंद्रिय औ निश्चयरूपअंतःकरनकी वृत्ति बुद्धी विज्ञानमयकोस कहिये है. पंचज्ञानेंद्रिय औ संकल्पविकल्प अंतःकरनकी वृत्ति मन, मनोमयकोस कहिये है., पंचप्रान औ पंचकर्मैंद्रिय प्रानमयकोस है स्थूलसरीरकूं अन्नमयकोस कहै हैं. इसरीतिसैं तीनिसरीरनमैंहीपंचकोस हैं ईस्वरके सरीरमैं ईस्वरके कोस औ जीवके सरीरनमैं जीवके कोस है. कोस नाम म्यानका है. म्यानकी न्याईं पंचकोस आत्माके स्वरूपकूं

आच्छादन करै हैं यातैं अन्नमयादिककोस कहिये हैं. अनेकमंदमतिपुरुष पंचकोसनमैं जो अनात्मपदार्थ हैं, तिनमैं किसीएककूं आत्मामानिके मुख्यसाछीआत्मस्वरूपतैं विमुखही रहै हैं. यातैं अन्नमयादिक आत्मस्वरूपकूं आच्छादन करै हैं. तहां

कितनैं पामर विरोचनमनके अनुसारी, स्थूलसरीररूप अन्नमयकोसकूंही आत्मा कहै हैं. औ यह युक्ति कहै हैं:—जामैं अहंबुद्धि होवै सो आत्मा है. सो अहंबुद्धि स्थूलसरीरमैं होवै हैं. "मैं मनुष्य हूं, मैं ब्राह्मण हूं" ऐसी प्रतीतिसर्वकूं होवै हैं. औ मनुष्यपना, ब्राह्मनपना, स्थूलशरीरमैंही है यातैं स्थूलसरीसरही अहंबुद्धिका विषय होनैंतैं आत्मा है. किंवा जामैं मुख्यप्रीति होवै सो आत्मा हैं. स्त्री, पुत्र, धन पसु, आदिक स्थूलसरीरके उपकारक होवैं तौ तिनमैं प्रीति होवै है. औ स्थूलसरीरके उपकारक नहीं होवैं, तौ प्रीति होवै नहीं. जाके निमित्त अन्यपदार्थमें प्रीति होवै ता स्थूलसरीरमैंही मुख्यप्रीति है. यातैं स्थूलसरीरही आत्मा हैं. ताका वस्त्र, भूषन, अंजन, मंजन, नानाविधभोजनसैं सिंगारपोपनही परमपुरुपार्थ है; यह असुरस्वामीविरोचनका सिद्धांत है.

और कोऊ ऐसैं कहै हैं:—स्थूलसरीरही आत्मा नहीं, किंतु स्थूलसरीरमें जाके होनैंतैं जीवनव्यवहार होवै है, औ जाके नहीं होनैंतैं मरनव्यवहार होवै है, सो आत्मा स्थूलसरीरसैं भिन्न है. जीवनमरन इंद्रियनके आधीन है,

जीतनै काल सरीरमैं इंद्रिय होवै उतनै काल जीवन है. औ कोऊ इंद्रिय न होवै तब मरन कहिये है औ "मैं देखुं हूं" "मैं सुनूं हूं," "मैं बोलूं हूं" इसरीतिसैं अहंबुद्धि बी इंद्रियनमैं होवै है. यातैं इंद्रियही आत्मा है.

औ हिरन्यगर्भके उपासी प्रानकूं आत्मा कहै हैं, तामैं यह युक्ति कहै हैं:— जब मरनसमय मूर्छा होवै है; तब ताके संबंधी पुत्रादिक प्रान सेष होवैं तौ जीवन जानै है, औ प्रान सेष न होवैं, तौ मरन जानै हैं. किंवा सरीरमैं नेत्रइंद्रिय नहीं होवै, तौ अंधासरीर रहै है. श्रोत्रसैं विना बधिर रहै है. वाकविना मूक रहै है. ऐसै जो इंद्रिय नहीं होवै ताके व्यापारसैं विना बी सरीर स्थितही रहै. औ प्रानसैंविना तिसीछनमैं स्मसानके समान अमंगल भयंकर होयके गिरै है. औ "मैं देखुं हूं," "सुनूं हूं" या प्रतीतिसैं बी इंद्रियनतैं भिन्नही आत्मा सिद्ध होवै है. काहेतैं, "नेत्रस्वरूप मैं देखुं हूं," श्रवनस्वरूप "मैं सुनूं हूं," जौ ऐसीप्रतीति होवै तौ इंद्रियरूप आत्मा सिद्ध होवै; किंतु "मैं नेत्रवाला देखुं हूं, श्रोत्रवाला मैं सुनूं हूं," ऐसी प्रतीति होवै है. यातैं इंद्रियनतैं भिन्नही आत्मा है. औ सुषुप्तिमैं सर्वइंद्रियनका अभाव है; तौ बी प्रानके होनैतैं जीवनव्यवहार होवै है. यातैं जीवनमरन बी इंद्रियनके आधीन नहीं. किंतु स्थूलसरीर औ प्रानके वियोगकूं मरन कहै हैं. यातैं जीवनमरन प्रानकेही आधीन हैं. सोई आत्मा है.

और कोई ऐसैं कहै हैं:—प्रान जड है, यातैं प्रानकी...

अनात्मा है. औ बंधमोछ मनके आधीन हैं. विषयमैं आसक्त जो मन, सो बंधनका हेतु है. विषयवासनारहीत मन मोछका हेतु है. औ मनके संबंधतैंही इंद्रिय ज्ञानके हेतु हैं मनके संबंधविना इंद्रियतैं ज्ञान होवै नहीं. यातैं सर्वव्यवहारका हेतु मन है; सोई आत्मा है.

औ छनिकविज्ञानवादीबौद्ध यह कहै हैं:—मनका व्यापार बुद्धिके आधीन है, काहेतैं, बुद्धिकाही आकार मनहोवै है. यातैं छनिकविज्ञानरूप बुद्धिही आत्मा है, मन नहीं. यह तिनका अभिप्राय है:—संपूर्नपदार्थ विज्ञानकेही आकार हैं,सो विज्ञान प्रकासरूप है. औ छनछनमैं विज्ञानके उत्पत्तिनास होवैं है. पूर्वविज्ञानके समान अन्यविज्ञानकी उत्पत्ति हुयेतैं पूर्वविज्ञानका नास होवै है. तैसै तृतीयविज्ञानकी उत्पत्ति, औ द्वितीयविज्ञानका नास, चतुर्थकी उत्पत्ति, तृतीयका नास होवै है. यारीतिसैं नदीके प्रवाहकी न्याई विज्ञानकी धारा वनी रहै है. सो विज्ञानकी धारा दोप्रकारकी है. एक तौ आलयविज्ञानधारा है. औ दुसरी प्रवृत्तिविज्ञानधारा है. "अहं, अहं" ऐसी विज्ञानधाराकूं आलयविज्ञानधारा कहै हैं. ताहीकूं बुद्धि कहै हैं. " यह घट है, यह सरीर है" ऐसी विज्ञानधाराकूं प्रवृत्तिविज्ञानधारा कहै हैं. आलयविज्ञानधारासैं प्रवृत्तिविज्ञानधाराकी उत्पत्ति होवै है. मनका स्वरूपबीप्रवृत्तिविज्ञानधारामै है. यातैंआलयविज्ञानधारारूप बुद्धिका कार्य है, सो बुद्धिही,आत्मा है. आलयविज्ञानधाराविषै प्रवृत्तिविज्ञानधाराका बाधचिंतनतैं

निर्विसेषछनिकविज्ञानधाराकी स्थितिही तिनके मतमैं मोछ है. इसरीतिसैं विज्ञानवादी वुद्धिकूंही छनिकरूप औ स्वयंप्रकासरूप कल्पना करिके आत्मा कहै हैं.

औ पूर्वमीमांसाका वार्त्तिककारभट यह कहै हैः- विद्युतकी न्याई छनिकरूप आत्मा नहीं. किंतु स्थिरस्वरूप आत्मा जडस्वरूप औ चेतनरूपहै, यह ताका अभिप्राय हैः सुषुप्तिसैं जागिके पुरुष यह कहै हैः- " मैं जड होयके सोवता भया " यातैं आत्मा जडरूप है. औ जागेकूं स्मृति होवै है, अज्ञातकी स्मृति होवै नहीं.आत्मस्वरूपसैं भिन्न ज्ञानके सुषुप्तिमैं और साधन नहीं. यातैं स्मृतिका हेतु सुषुप्तिमैं ज्ञान है, सो आत्माका स्वरूपही है. इसरीतिसै खद्योतकी न्याई आत्मा प्रकास औ अप्रकासरूप है. ज्ञानरूप है, यातैं प्रकासरूप; औ जड है, यातैं अप्रकासरूप है.सो प्रकासरूप औ अप्रकासरूप आनंदमयकोस है. काहेतैं, सुषुप्तिमैं चेतनके आभाससहित जो अज्ञान, ताकूं आनंदमय कोस कहै हैं. तहां आभास तौ प्रकासरूप औ अज्ञान अप्रकासरूप है. यातैं भटके मतमैं आनंदमयकोसही आत्मा है.

औ सून्यवादीवौद्ध यह कहै हैः— आत्मा निरंस है, यातैं एकआत्माकूं प्रकासरूप औ अप्रकासरूप कहना वनै नहीं. औ खद्योतका तौ एकअंस प्रकासरूप है, औ दूसराअंस अप्रकासरूप है. ताकी न्याई अंसरहित आत्माविषै उभयरूप कहना असंगत है. यातैं उभयरूपकी सिद्धिवास्तै आत्मा अंससहितही मानना होवैगा. जो अंसवाले

पदार्थ घटादिक हैं, सो उत्पत्ति औ नासवाले होवै हैं. तैसैं आत्मा बी अंससहित होनैतैं उत्पत्तिनासवालाही मानना होवैगा. जो उत्पत्तिनासवाला पदार्थ होवै, सो उत्पत्तिसैं पूर्व औ नासतैं अनंतर असत होवै है. जो आदिअंतमैं असतहोवै, सो मध्य बी सत होवै नहीं, किंतु मध्य बी असतही होवै है. यातैं आत्मा असतरूप है. तैसें आत्मासैं भिन्न बी संपूर्नपदार्थ उत्पत्तिनासवाले है, यातैं असतरूप हैं. इसरीतिसैं आत्मा औ अनात्मा समग्रवस्तु असतरूप होनैतैं सून्यही परमतत्व है, यह सून्यवादीमाध्यमिकबौद्धका मत है

सो बी अज्ञानरूप आनंदमयकोसकूं प्रतिपादन करैहैं. काहेतै, अज्ञान तीनिरूपसैं प्रतीत होवै है. अद्वैतसास्त्रके संस्काररहित जो मूढ, तिनकूं तौ जगतरूप परिनामकूं प्राप्त अज्ञान सत्य प्रतीत होवै है. औ अद्वैतसास्त्रके अनुसार युक्तिनिपुनपंडितनकूं सतअसतसैं विलछन अनिर्वचनीयरूप अज्ञान औ ताका कार्य जगत प्रतीत होवै है. ज्ञाननिष्ठाकूं प्राप्त जो जीवन्मुक्तविद्वान, तिनकूं कार्यसहित अज्ञान तुछरूप प्रतीत होवै है. तुछ, असत, सून्य, ये तीनिसब्द एकही अर्थकूं कहै हैं.-इसरीतिसैं जीवनमुक्तनकूं तुछरूप जो प्रतीति होवै अज्ञान, ताकेविषै मोहित सून्यवादी परमपुरुषार्थकूं नहीं जानै हैं; किंतु तुछरूप आनंदमयकोसकूंही आत्मा कहै हैं.

औ पूर्वमीमांसाका एकदेसी प्रभाकर औ नैयायिक यह कहै हैः— आत्मा सून्यरूप नहीं. काहेतैं, जो सून्यरूप

आत्मा मानैं, ताकूं यह पूछै हैं:— सून्यरूपका तैंनै अनुभव किया है, अथवा नहीं? जो ऐंसै कहैं:— सून्यरूपका अनुभव नहीं किया; तौ सून्य नहीं है, यह सिद्ध हुआ. औ जो कहैं सून्यका अनुभव किया है, तौ जानैं सून्यका अनुभव किया है, सो आत्मा सून्यसैं विलछन सिद्ध होवै है. इसरीतिसैं सून्यतैं विलछन आत्मा है. ताकेविषै मनके संयोगतैं ज्ञान होवै है. ता ज्ञानगुनतैं आत्मा चेतन कहिये है. औ स्वरूपसैं आत्मा जड है. तैसैं सुख, दुःख, इछा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, आदिक गुन आत्माविषै हैं, तिनके मतमैं बी आनंदमयकोसही आत्मा है. औ विज्ञानमयकोसमैं जो बुद्धि है, सो आत्माका ज्ञानगुन कहै हैं. काहेतैं आनंदमयकोसमैं चेतन गूढ है, विवेकहीनकूं प्रतीत होवै नहीं. औ प्रभाकर तथा नैयायिक आत्माकूं सुषुप्तिमैं ज्ञानहीन मानिके स्वरूपसैं जड कहै हैं. यातैं गूढचेतन आनंदमयकोसमैंही तिनकूं आत्मभ्रांति है,औ आत्मस्वरूप नित्यज्ञानकूं तौ जीवमैं मानैं नहीं; किंतु अनित्यज्ञान मानैं है. सो अनित्यज्ञान सिद्धांतमै अंतःकरनकी वृत्ति बुद्धिरूप है. यारीतिसैं प्रभाकरनैयायिकमतमैं आनंदमयकोस आत्मा है; औ बुद्धि ताका गुन है. तिनका मत बी समीचीन नहीं. काहेतैं,

ज्ञानसैं भिन्न जो जडवस्तु घटादिक हैं, सो अनित्य हैं तैसैं आत्मा बी ज्ञानस्वरूप नहीं होवै, तौ घटादिकनकी न्याईं जड होनैंतैं अनित्य होवैगा, जो आत्मा अनित्य होवै,

तौ मोछके अर्थ साधन निष्फल होवैगा. इसरीतिसैं वेदांत-वाक्यनमें विस्वासहीन अनेकबहिर्मुख पंचकोसनमैंही किसी पदार्थकूं आत्मा मानैं हैं. औ मुख्यआत्मस्वरूप साछीकूं नहीं जानैं हैं. यातैं अन्नमयादिक आत्माके आछादक-होंनेतैं कोस कहिये हैं.

जैसे जीवके पंचकोसजीवके यथार्थस्वरूप साछीकूं आछादन करै हैं; तैसैंईस्वरके समष्टिपंचकोस ईस्वरके यथार्थस्वरूपकूं आछादन करै हैं. काहेतै, ईस्वरका यथार्थस्वरूप तौ तत्पदका लछ्य है. ताकूं त्यागिके कोई तौ मायारूप आनंदमयकोसविसिष्टजो अंतर्यामी तत्पदका वाच्य, ताकूंही परमतत्त्व कहै है तैसै हिरन्यगर्भ, वैस्वानर, विष्नु. ब्रह्मा, शिव, गनेस, देवी, सूर्यसैं, आदिलेके असि, कुदाल, पीपल, अर्क, वंसपर्यंत पदार्थनमैं परमात्माभ्रांति करै है. यद्यपि सर्वपदार्थनमैं लछ्यभाग परमात्मासैं भिन्न नहीं; तथापि तिसतिस उपाधिसहितकूं जो परमात्मा मानैं हैं, सो तिनकूं भ्रांति है. या रीतिसैं पंचकोसनतैं आवृत्त. जो जीवईस्वरका परमार्थस्वरूप, तासैं विमुख होयके देहादिकनमैं आत्मभ्रांतिकरिके पुन्यपापकर्म करै है. औ अंतर्यामीसैं आदिलेके वंसपर्यंतकूं ईस्वररूप मानिके आराधनकरिके सुखचाहै हैं. जैसी उपाधिका आराधन करै हैं, ताके अनुसारही तिनकूंफल होवै है, काहेतैं; कारन सूछम स्थूलप्रपंच सारा ईस्वरके तीनिसरीरनके अंतर्भूत हैं. तामैं उपासनाके अनुसार फल बी सर्वसैंही होवै है

परंतु ब्रह्मज्ञानविना मोछ होवै नहीं. जो मोछकी इछा होवै, तौ विवेकतैं जीव ईस्वरके स्वरूपकूं पंचकोसनतैं पृथक् करै. दृष्टांतः— जैसैं मुंज औ इषीका कहिये तूली मिली होवै है, तिनकूं तोरीके पृथक् करै हैं; तैसैं विवेकतैं जीवईस्वरके स्वरूपकूं पंचकोसनतैं पृथक् जानैं यह सवैयाका अर्थ है.

## सो विवेकका प्रकार दिखावे हैः-

### सवैया.

स्थूलदेहको भान न होवै,
स्वप्नमांहि लखि आतमज्ञान;
सूछमज्ञान सुषुप्ति समैं नहिं,
सुखस्वरूप व्है आतम भान;
भासै भये समाधिअवस्था,
निरावरनआतम न अज्ञान;
ऐसैं तीनिदेह व्यभिचारी,
आतम अनुगत न्यारो जान. १५८

टीकाः—स्वप्नअवस्थामांही स्थूलदेहकाभान होवै नहीं औ आत्माका भान होवै है. तैसे सुषुप्तिअवस्थामैं सूछमशरीरका ज्ञान होवै नहीं, औ सुखस्वरूप आत्मा स्वयंप्रकासरूप भान कहिये प्रतीत होवै है. सुखका ज्ञान सुषुप्तिमैंनहीं होवै, तौ "मैं सुखसैं सोवता भया" ऐसी स्मृति जागिके नहीं

हुई चाहिये; यातें सुखका ज्ञान सुषुप्तिमैं होवै है. सो सुख विषयजन्य तौ सुषुप्तिमैं है नहीं; किंतु आत्मस्वरूपही है सो आत्मा स्वयंप्रकास है. यातें सुखस्वरूप आत्मा स्वयंप्रकासरूपतें सुषुप्तिमैं भासै है. औ निदिध्यासनका फल निर्विकल्पसमाधिअवस्थामैं निरावरनकहिये अज्ञानकृतआवरनरहित आत्मा भासै है, औ न अज्ञान कहिये कारनसरीर अज्ञान नहीं भासै है, ऐसैं तीनिदेह व्यभिचारी हैं. एकअवस्थाकूं छोडिके दूसरीअवस्थामैं भासै नहीं. आत्मा अनुगत है, सर्वअवस्थामैं भासै है, यातें व्यापक है. या विवेकतें तीनिसरीरनतें आत्माकूं न्यारो जान. स्थूलसरीर तौ अन्नमयकोस है, औ कारनसरीर आनंदमयकोस है. औ सूछमसरीरमैं प्रानमय, मनोमय, विज्ञानमय, तीनिकोस हैं, यातें तीनिसरीरनके विवेकतें पंचकोसकाही विवेक होवै है, जैसै जीवका स्वरूप पंचकोसनतें पृथक् है, तैसैं ईस्वरका स्वरूप बी समष्टिपंचकोसनतें पृथक है. औ चतुर्थतरंगमैं चतुर्विधआकासके दृष्टांतसैं जीवईस्वरके लक्ष्यस्वरूपका विवेक विस्तारसैं करि आये हैं. औ उत्तरतरंगमैं अस्तिभातिप्रियरूपके निरूपनमैं, तथा महावाक्यनके अर्थनिरूपनमैं आत्माका परमार्थस्वरूप प्रतिपादन करैंगे. यातें इहां संछेपतैंही आत्मविवेक कह्या है. इसरीतिसैं,

पंचकोसनतें आत्माकूं न्यारा जाननेसैं बी कृतकृत्य होवै नहीं, किंतु जीवब्रह्मके अभेदनिश्चयवास्तैं फेरि बी विचार कर्तव्य रहै है, यातें कर्तव्यका अभावरूप कृतकृत्यताकी सिद्धिवास्तैं महावाक्यका अर्थ उपदेस करै हैं:—

### सवैया.

पंचकोसतैं आतम न्यारो,
जानि सु जानहु ब्रह्मस्वरूप;
तातैं भिन्न जु दीखै सुनिये,
सो मानहु मिथ्या भ्रमकूप;
मिथ्याअधिष्ठान न विगारै,
स्वप्नभीख न दरिद्री भूप;
सब कछु कर्त्ता तऊ अकर्त्ता,
तव अस अद्भुतरूप अनूप. १५९

टीकाः– हे सिष्य! पंचकोसतैं,आत्माकूं न्यारा जानिके, सु कहिये सो आत्मा ब्रह्मस्वरूप है, यह जानौ. याकिविषे,

## ऐसी संका होवै हैः-

आत्मा पुन्यपाप करै है, तातैं स्वर्गनरक औ मृत्युलोकमैं नानाप्रकारके सुखदुःख भोगै है; ताकी ब्रह्मसैं एकता बनै नहीं.

## ताका समाधानः-

"तातैं भिन्न जु दीखै" इत्यादि तीनिपादनतैं कहै हैः—ता ब्रह्मरूप आत्मासैं भिन्न जो दीखै है, औ सुनिये है सो स्वर्गनरक, पुन्यपाप, सो संपूर्न मिथ्याभ्रम है; ऐसै मानो. औ मिथ्यावस्तु अधिष्ठानकूं विगारै नहीं. जैसै स्वप्नकी भि-

थ्या भीख कहिये भिछा मागनतैं भूप दरिद्री नहीं, होवै है. औ मरुथलके मिथ्याजलतैं भूमि गिली होवै नहीं मिथ्यासर्पतैं रज्जु विषसहित होवै नहीं. यातैं सबकछु कर्त्ता कहिये संपूर्नमिथ्यासुभअसुभक्रियाका कर्त्ता है, तउ कहिये तौबी, अकर्त्ता कहिये परमार्थसैं कर्त्ता नहीं. ऐसा तव कहिये तेरा अद्भुत आश्चर्यरूप,अनुप कहिये उपमारहित है. याका भाव यह है:—ब्रह्मसैं अभिन्न तेरे स्वरूपविषैस्थूलसूछमशरीर, औ तिनकी सुभअसुभक्रिया औ ताका फल जन्ममरन, स्वर्गनरक, सुखदुख:, संपूर्न अविद्यासैं कल्पित है. ता कल्पितसामग्रीसैं तेरा ब्रह्मभाव विगरै नहीं. यातैं ज्ञानतैं प्रथम बी आत्मा ब्रह्मस्वरूपही है. ताकेविषै तिनिकालमैं सरीर औ ताके धर्मनका संबंध नहीं. किंतु आत्मा सदाही नित्यमुक्त है. ताका ब्रह्मसैं कंद बी भेद नहीं.

जो ऐसैं कहैं:— आत्मा सदाही नित्यमुक्तब्रह्मस्वरूप होवै, तौ श्रवनादिक ज्ञानके साधन निष्फल होवैंगे.

## ताका समाधान:-

### इंदव छंद

नाहिं खपुंप्पसमान प्रपंच तु,
ईस कहां करता जु कहावै;
साछ्य नहीं इम साछिस्वरूप न,
हस्य नहीं हक काहि जनावै;

बंधहु होई तु मोछ बनै अरु,
होय अज्ञान तु ज्ञान नसावै;
जानि यही करतव्य तजै सब,
निश्चल होतहि निश्चल पावै. १६०

टीकाः– जीवन्मुक्तविद्वानकी दृष्टिमैं अज्ञान औ ताका कार्य तुछ है. सो जीवन्मुक्तका निश्चय बतावै हैः– हे सिष्य ! यह प्रपंच खपुष्पसमान कहिये आकासके फूलकी न्याई, है यातैं ताका कर्त्ता ईस्वर बी नहीं है. साछीका विषय अज्ञानादिक साछ्य कहिये है; सो साछ्य नहीं, यातैं साछी बी नहीं. तैसे दृस्यका प्रकासक दृक् कहिये है. औ प्रकासनै योग्य देहादिक दृस्य कहिये है. सो देहादिक दृस्य हैं नहीं; यातैं दृक बी नहीं. यद्यपि केवल कूटस्थचेतनकूं साछी औ दृक कहै हैं; ताका निषेध बनै नहीं; तथापि साछ्यकी अपेछातैं साछी नाम, औ दृस्यकी अपेछातैं दृक नाम है. साछ्य औ दृस्यका अभाव है. यातैं साछी औ दृक्, नामका निषेध करै हैं; स्वरूपका नहीं. औ बंध होवै तौ बंधकी निवृत्तिरूप मोछ होवै, बंध नहीं यातैं मोछ बी नहीं. औ अज्ञान होवै तौ ताका ज्ञानसैं नास होवै, अज्ञान है नहीं, यातैं ताका नासक ज्ञान बी नहीं. यह जानिके कर्तव्य तजै, कहिये "मेरेकूं यह करनैयोग्य है" याबुद्धिकूं त्यागै. काहेतैं, यहलोक तथा परलोक तौ तुछ हैं, तिनके निमित्त कछु कर्तव्य नहीं. आत्मामैं बंध नहीं

यातैं मोछके निमित्त बी कर्त्तव्य नहीं. यारीतिसैं आत्माकूं जिव्यमुक्तब्रह्मरूप जानिके जब निश्चल होवै, सबकर्त्तव्य त्यागै; तब निश्चल कहिये अक्रियब्रह्मस्वरूप विदेहमोछकूं प्राप्त होवै. याका अभिप्राय यह है:—

यद्यपि आत्मा, ज्ञानसैं प्रथम बी नित्यमुक्तब्रह्मस्वरूपही है, परंतु ज्ञानसैं पूर्व आत्माकूं कर्त्ताभोक्ता मिथ्या मानिके सुखप्राप्ति औ दुःखकी निवृत्तिवास्तै अनेकसाधन करै हैं. तासैं क्लेसकूंही प्राप्त होवै हैं. जब उत्तमआचार्य मिलै तौ वेदांत वाक्यनका उपदेस करै है, तिन वेदांतवाक्यनकेश्रवनतैं ऐसा ज्ञान होवै है:—"मैं कर्त्ताभोक्ता नहीं, किंतु मैं ब्रह्मस्वरूप हूं, यातैं मेरेकूं किंचित् बी कर्त्तव्य नहीं," ऐसा जाननाही श्रवनादिकनका फल है. औ ब्रह्मकी प्राप्ति वेदांतश्रवनका फल नहीं. काहेतैं, ब्रह्म अपना स्वरूप है, यातैं नित्यप्राप्त है

## दोहा.

येहि चिन्ह अज्ञानको, जो मानै कर्त्तव्य,
सोई ज्ञानी सुघरनर, नहिं जाकूं भवितव्य. १६१

टीका:— जो कर्त्तव्य मानै सो अज्ञानका चिन्ह है, औ जाकूं भवितव्य नहीं कहिये अन्यरूप हुआ नहीं चाहै है, सो नर ज्ञानी कहिये है.

## इंदवछंद.

एक अखंडित ब्रह्म असंग,
अजन्म अदृस्य अरूप अनामैं;

मूलअज्ञान न सूछमथूल,
समष्टि न व्यष्टिपनो नहिं तामैं;
ईस न सूत्र विराट न प्राज्ञ न,
तैजस विस्वस्वरूप न जामैं;
भोग न जोग न बंध न मोछ,
नहिं कछु वामैं रु है सब वामैं. १६२
जाग्रतमैं जु प्रपंच प्रभासत,
सो सब बुद्धिविलास बन्यो है;
ज्यूं सुपनेमहिं भोग्य न भोग,
तऊ इकचित्र विचित्र जन्योहै;
लीन सुषूपतिमैं मति होतहि,
भेद भगै इकरूप सुन्यो है;
बुद्धि रच्यो जु मनोरथमात्र सु,
निश्चल बुद्धि प्रकास भन्यो है. १६३

## सवैयाछंद.

जाके हिय ज्ञानउजियारो,
तम अंधियारो खरो विनास;
सदा असंग एकरस आतम,
ब्रह्मरूप सो स्वयंप्रकास;

ना कछु भयो न है नहिं व्है है,
जगत मनोरथ मात्र विलास;
ताकी प्राप्ति निवृत्ति न चाहत,
ज्यूं ज्ञानीके कोउ न आस. १६४
देखै सुनै न सुनै न देखै,
सब रस ग्रहे रु लेत न स्वाद;
सूंघि परसि परसै न न सूंघै,
बैन न बोलै करै विवाद;
ग्रहि न ग्रहै मल तजै न त्यागै,
चलै नहीं अरु धावत पाद;
भोगै युवति सदा सन्यासी,
सिष लखि यह अद्भुतसंवाद. १६५

याका अभिप्राय कहै हैं:—

## सवैयाछंद.

निजविषयनमैं इंद्रिय वर्तै,
तिनतैं मेरो नाहिं संग;
मैं इंद्रिय नहिं मम इंद्रिय नाहिं,
मैं साछी कूटस्थ असंग;
त्यागहु विषय कि भोगहु इंद्रिय,

मोकूं लगै न रंचक रंग;
यह निश्चय ज्ञानीको जातैं,
कर्त्ता दीखै करै न अंग. १६६

हे अंग, प्रिय अन्य अर्थ स्पष्ट. १६६

इसरीतिसैं आचार्यनैं सिष्यकूं गोप्यतत्त्वका उपदेश किया. तौ बी सिष्यका मुख अत्यंतप्रसन्न नहीं देखिके यह जान्याः— सिष्य कृतार्थ नहीं हुवा. जो कृतार्थ होता, तौ याका मुख प्रसन्न होता यातैं फेरि स्थूलरीतिसैं उपदेस करनैकूं,

## लयचिंतन कहे हैः-

### सवैया छंद.

माटीको कारज घट जैसै,
माटी ताके बाहरि मांहि;
जलतैं फैन तरंग बुदबूदा,
उपजत जलतैं जुदेसु नाहिं;
ऐसै जो जाको है कारज,
कारनरूप पिछानहु ताहि;
कारन ईस सकलको "सो मैं,"
लयचिंतन जानहु विध याहि. १६७

टीकाः— जैसै माटीके कारजके बाहिरभीतरि माटी है; यातें माटीका सर्वकार्य माटीस्वरूपही है. फैनआदिक जलके कार्य जलस्वरूप हैं. ऐसै जो जाका कार्य है, सो ता कारनस्वरूपसैं भिन्न नहीं; किंतु कार्य कारनही स्वरूप है. औ सकलप्रपंचका मूलकारन ईस्वर है. यातैं सर्वकार्यप्रपंच ईस्वरस्वरूपसैं भिन्न नहीं. किंतु सर्वप्रपंचका स्वरूप ईस्वरही है. "सो ईस्वर मैं हूं" या रीतिसैं लयचिंतन जानिके तूं कर.

लयचिंतनका संछेपतैं यह क्रम हैः— स्थूलब्रह्मांड सारा पंचीकृतभूतनका कार्य है, तहां जो पृथ्वीका कार्य सो पृथ्वीस्वरूप, औ जलका कार्य जलस्वरूप, या रीतिसैं जा भूतनका जो कार्य सो ताकाही स्वरूप है. इसरीतिसैं सारास्थूलब्रह्मांड पंचीकृतभूतस्वरूप है. तैसै पंचीकृतभूत बी अपंचीकृतभूतनके कार्य हैं. यातें अपंचीकृतस्वरूपही पंचीकृतभूत है, भिन्न नहीं. औ अंतकरनआदिक सूछमसृष्टि बी, अपंचीकृतभूतनका कार्य होनैतैं अपंचीकृतभूतस्वरूप हैं तामैं अंतःकरन सारे भूतनके सत्वगुनके कार्य है, यातैं सत्वगुनस्वरूप हैं, औ भूतनके रजो गुनअंसके कार्यप्रानर जो गुनस्वरूप हैं. गुदाइंद्रिय पृथ्वीके रजोगुनअंसका कार्य सो पृथ्वीका रजोगुनस्वरूप; घ्रानइंद्रिय पृथ्वीके सत्वगुनका कार्य, सो सत्वगुनस्वरूप; ऐसै रसना औ उपस्थ जलके सत्वगुनरजोगुनस्वरूप; नेत्र औ पाद तेजके सत्वगुनरजोगुनस्वरूप; त्वक औ पानि वायुके सत्वगुनरजोगुनस्वरूप; श्रोत्र औ

वाक आकासके सत्वगुनरजोगुनस्वरूप; या रीतिसैं सारी सूछमसृष्टि अपंचीकृतभूतस्वरूप है.

यह चिंतनकरिके अपंचीकृतभूतनका वी लयचिंतनकरैं. पृथ्वी जलका कार्य है, यातैं जलस्वरूप है. तेजका कार्य जल, तेजस्वरूप है. तेज वायुका कार्य होनेतैं वायुस्वरूप है. आकासका कार्य वायु, आकासस्वरूप है. तमोगुनप्रधान प्रकृतिका कार्य आकास, प्रकृतिस्वरूप है.

औ मायाकी अवस्थाविषैही प्रकृति है, यातैं प्रकृति मायास्वरूप है. एकवस्तुके प्रधान, प्रकृति, माया, अविद्या अज्ञान, ये नाम हैं. सर्वकार्यकूं अपनेमैं लीन करिके प्रलयमैं स्थित उदासीनस्वरूपकूं प्रधान कहै हैं. औ सृष्टिकूं उपादानयोग्य तमोगुनप्रधानस्वरूपकूं प्रकृति कहै हैं. जैसें देसकालादिक सामग्रीविना दुर्घटपदार्थकी इंद्रजालसैं उत्पत्ति होवै है, तहां इंद्रजालकूं माया कहै हैं. तैसैं असंग अद्वितीयब्रह्ममैं इच्छादिक दुर्घट हैं, तिनकूं करै है, यातैं माया कहै हैं. स्वरूपकूं आछादन करै है, यातैं अज्ञान कहै हैं. ब्रह्मविद्यातैं नास होवै है, यातैं अविद्या कहै हैं. औ स्वतंत्र कदे बी रहै नहीं; किंतु चेतनके आश्रितही रहै है, यातैं सक्ति बी कहै हैं. इसरीतिसैं, प्रकृतिआदिक प्रधानकेही भेद हैं; यातैं प्रधानरूप हैं, सो प्रधान ब्रह्मचेतनकी सक्ति है. जैसें पुरुषमैं सामर्थ्यरूप सक्ति पुरुषसैं भिन्न नहीं; तैसैं चेतनकूं प्रधानरूप सक्ति ब्रह्मचेतनसैं भिन्न नहीं. या प्रकारनैं सर्व

अनात्मपदार्थनका ब्रह्मविषै लयचिंतनकरिके " सो अद्वय-ब्रह्म मैं हूं " यह चिंतन करै.

जाकूं महावाक्यविचार कियेतैं बी बुद्धिकी मंदतादिक किसीप्रतिबंधकतें अपरोछज्ञान होवै नहीं; ताकूं यह लय-चिंतनरूप ध्यान कह्या है. ध्यान औ ज्ञानका इतना भेद है:— ज्ञान तौ प्रमान औ प्रमेयके आधीन है, विधि औ पुरुषकी इछाके आधीन नहीं; औ ध्यान, विधिके तथा पुरुषकी इछा औ विस्वास तथा हठके आधीन है. जैसै प्रत्यछज्ञानमैं प्रमाननेत्र औ प्रमेयघटादिक, तहां नेत्रका औ घटका संबंध हुयेतैं पुरुषकी इछाविना बी घटका प्रत्यछज्ञान होवै है. भाद्रपदसुद्धचतुर्थीके दिन चंद्रदर्सनका निषेध है, विधि नहीं, औ पुरुषकूं यह इछा होवै है:— " मेरेकूं आज चंद्रदर्सन नहीं होवै, " तौबी किसीरीतिसैं नेत्रप्रमानका जो प्रमेयचंद्रसैं संबंध होय जावै, तौ चंद्रका प्रत्यछज्ञान अवस्यही होवै है. इसरीतिसैं प्रमानप्रमेयके आधीन ज्ञान है, विधि औ इछाके आधीन नहीं. औ सालिग्राम विष्नुरूप है, यह ध्यान करै, ताकूं उत्तमफल प्राप्त होवै है. तहां साखप्रमानसैं विष्नुकूं तौ चतुर्भुजमूर्त्ति, संख, चक्र, गदा, पद्म लछमीसहित जानै है. औ नेत्रप्रमानतैं सालिग्रामकूं सिला जानै है. तथापि विधिविस्वासइछातैं "सालिग्राम विष्नु है;" यह ध्यान होवै है, परंतु सो ध्यान नानाप्रकारका है. कहूं तौ अन्यवस्तुका अन्यरूपसैं ध्यान, जैसै सालिग्रामका विष्नुरूपसैं ध्यान; याकूं प्रतीकध्यान कहै हैं. औ वैकुंठलोक-

वासीविष्नुका संखचक्रादिकसहित चतुर्भुजमूर्त्तिरूपसैं ध्यान है, तहां अन्यका अन्यरूपसैं ध्यान नहीं; किंतु ध्येयरूपके अनुसार यह ध्यान है. वैकुंठवासीविष्नुका स्वरूप प्रत्यच्छ तौ है नहीं; केवलसास्त्रसैं जानिये है. औ सास्त्रनैं संखचक्रादिकसहित विष्नुका स्वरूप कह्या है. यातैं ध्येयस्वरूपके अनुसारही यह ध्यान है. विधि विस्वास इच्छाविना ध्यान होवै नहीं. " यह उपासना करैं " ऐसा पुरुषका प्रेरकवचन विधि कहिये है. ता वचनमैं श्रद्धाकूं विस्वास कहै है, औ अंतःकरनकी कामनारूप रजोगुनकी वृत्ति इच्छा कहिये है. ध्यानके हेतु यह तीनि हैं; ज्ञानके नहीं. औ ध्यान हठसैं होवै है. ज्ञानमैं हठकी अपेछा नहीं. काहेतैं, निरंतर ध्येयाकार चित्तकी वृत्तिकूं ध्यान कहै हैं. तहां वृत्तिमैं विछेप होवै तौ हठसैं वृत्तिकी स्थिति करै. औ ज्ञानरूप अंतःकरनकी वृत्तिसैं तत्काल आवरनभंग हुयेतैं वृत्तिकी स्थितिका उपयोग नहीं; यातैं हठकी अपेछा नहीं. वैकुंठवासीचतुर्भुजविष्नुके ध्यानकी न्याई " मैं ब्रह्म हूं " यह ध्यान बी ध्येयके अनुसार है; प्रतीक नहीं. परंतु यह अहंग्रहध्यान है. ध्येयस्वरूपका अपनैंसैं अभेद करिके चिंतन, अहंग्रहध्यान कहिये है. जा पुरुषकूं अपरोछज्ञान नहीं होवै, औ वेदकी आज्ञारूप विधिमैं विस्वासकरिके हठतैं निरंतर " मैं ब्रह्म हूं " या वृत्तिकी स्थितिरूप अहंग्रहध्यान करै, ताकूं बी ज्ञान प्राप्त होयके मोछकी प्राप्ति होवै है.

१६७

औररीतिसैं अहंग्रहउपासना कहै हैं:—

## सवैयाछंद.

ध्यान अहंग्रह प्रनवरूपको,
कह्यो सुरेश्वर श्रुति अनुसार;
अछर प्रनव ब्रह्म मम रूपसु,
यूं अनुलव निजमति गति धार;
ध्यानसमान आन नहिं याके,
पंचीकरनप्रकार विचार;
जोयह करत उपासन सो मुनि,
तुरित नसै संसार अपार. १६८

टीका:— हे सिष्य ! प्रनवरूप कहिये ओंकारस्वरूपका अहंग्रहध्यान मांडूक्यप्रस्नआदिकश्रुतिके अनुसार सुरेश्वराचार्यनें कह्या है; सो तूं कर. ताका संछेपतें प्रकार यह है:— प्रनवअछर ब्रह्मस्वरूप है. "सो प्रनवरूप ब्रह्म मैं हूं" या रीतिसें अनुलव कहिये छनमात्रअंतरायरहित निजमतिकीगति कहिये वृत्ति धार, स्थित कर. याके समान आन ध्यान नहीं है. औ या ध्यानका प्रकार कहिये विसेपरीति सुरेस्वरकृत-पंचीकरन नाम ग्रंथसें विचार. चतुर्थपाद स्पष्ट यद्यपि प्रनवउपासना बहुतउपनिषदनमैं हैं; तथापि मांडूक्यउपनिषदमैं विसेष है: ताके व्याख्यानमैं भाष्यकार औ आनंद गिरिनैं ताकीरीति स्पष्ट लिखी है. सोईरीति वार्त्तिककारनैं पंचीकरनमैं लिखी है. तथापि तिन ग्रंथनके विचारनमैं जिनकी

बुद्धि समर्थ नहीं है, तिनके अर्थ प्रनवऊपासनाकी रीति हम लिखै हैं:— दो प्रकारसैं प्रनवका चितन उपनिषदनमैं कह्या है. एक तो परब्रह्मरूपतैं प्रनवका चितन कह्या; औ दूसरा अपरब्रह्मरूपतैं कह्या है. निर्गुनब्रह्मकूं परब्रह्म कहै है. सगुनब्रह्मकूं अपरब्रह्म कहै हैं. परब्रह्मरूपतैं प्रनवका चिंतन करैं, सो मोछकूं प्राप्त होवै है. औ अपरब्रह्मरूपतैं प्रनवका चितन करैं, सो ब्रह्मलोककूं प्राप्त होवै है. ऐसै निर्गुनसगुन-भेदतैं प्रनवउपासना दोप्रकारकी है. तामैं,

निर्गुनउपासनाकी रीति लिखै हैं, सगुनकी नहीं. काहेतैं, जाकूं ब्रह्मलोककी कामना होवै, ताकूं निर्गुनउपासनातैं बी कामनारूप प्रतिबंधकतैं ज्ञानद्वारा तत्काल मोछ होवै नहीं, किंतु ब्रह्मलोककीही प्राप्ति होवै है. तहां हिरन्यगर्भके समान भोगनकुं भोगिके ज्ञान होवै, तब मोछ होवै. औ जाकूं ब्रह्मलोककी कामना नहीं होवै, ताकूं इसलोकमैंही ज्ञान होयके मोछ होवै है. इसरीतिसैं सगुनउपासनाका फल बी निर्गुनउपासनाके अंतर्भूत है. यातैं निर्गुनउपासनाका प्रकार कहै हैं:— जो कछु कारनकार्यवस्तु है, सो ओंकारस्वरूप है. यातैं सर्वरूप ओंकार है. सर्वपदार्थनमैं नाम औ रूप दोभाग हैं. तहां रूपभाग अपनै अपनै नामभागसैं न्यारा नहीं. किंतु नामस्वरूपही रूपभाग है. काहेतैं, पदार्थका रूप कहिये आकार, ताका नामसैं निरूपनकरिके ग्रहन वा त्याग होवै है, नाम जानैविना केवल आकारतैं व्यवहार सिद्ध होवै नहीं; यातैं नामही सार है.

औ आकारके नास हुयेतैं वी नाम सेष रहै है. जैसै घटका नास हुयेतैं मृत्तिका सेष रहै है. तहां घट मृत्तिकासैं पृथक-वस्तु नहीं; मृत्तिका स्वरूप है. तैसै आकारका नास हुयेतैं मृत्तिकाकी नाई सेष रहे जो नाम, तासैं आकार पृथक नहीं; नामस्वरूपही आकार है. किंवा जैसै घटसरावादिकनमैं मृत्तिका अनुगत है, औ घटसरावादिक परस्परव्यभिचारी हैं यातैं घटसरावादिक मिथ्या, तिनमैं अनुगत मृत्तिका सत्य है. तैसै घट आकार अनेक हैं, तिन सबका " घट " यह दोअछर नाम एक है. सो आकार परस्परव्यभिचारी, औ सर्वघटके आकारनमैं नाम एक अनुगत है. यातैं मिथ्याआकार सत्यनामतैं पृथक नहीं. इस रीतिसैं सर्वपदार्थनके आकार अपनै अपनै नामसैं भिन्न नहीं, किंतु नामस्वरूपही आकार है. सो सारे नाम ओंकारसैं भिन्न नहीं. किंतु ओंकारस्वरूपही नाम है. काहेतैं, वाचकसब्दकूं नाम कहै हैं. औ लोकवेदके सारेसब्द ओंकारसैं उत्पन्न हुये हैं; यह श्रुतिमैं प्रसिद्ध है. संपूर्नकार्य कारनस्वरूप होवै है; यातैं ओंकारके कार्य जो वाचक सब्दरूप नाम, सो ओंकारस्वरूप है. इसरीतिसैं रूपभाग जो पदार्थनका आकार सो तौ नामस्वरूप है. औ सर्वनाम ओंकारस्वरूप है. यातैं सर्वस्वरूप ओंकार है.

जैसैं सर्वस्वरूप ओंकार है, तैसै सर्वस्वरूप ब्रह्म है; यातैं ओंकार ब्रह्मरूप है. किंवा ओंकार ब्रह्मका वाचक है, ब्रह्म-वाच्य है. वाच्यका औ वाचकका अभेद होवै है, यातैं

भी ओंकार ब्रह्मरूप है. औ विचारदृष्टितैं जो अछर ब्रह्मविषै अध्यस्त है; ब्रह्मतिसका अधिष्ठान है. अध्यस्तका स्वरूप अधिष्ठानतैं न्यारा होवै नहीं. यातैं बी ओंकार ब्रह्मस्वरूप है. यातैं ओंकारकूं ब्रह्मरूपकरिके चिंतन करै.

ब्रह्मरूप ओंकारका आत्मासैं बी अभेद चिंतन करै. काहेतैं, आत्माका ब्रह्मसैं मुख्यअभेद है. औ ब्रह्मके च्यारिपाद हैं; तैसैं आत्माके बी च्यारिपाद हैं. पाद नाम भागका है, ताहीकूं अंस बी कहै हैं. विराट, हिरण्यगर्भ, ईस्वर औ तत्पदका लछ्य ईस्वरसाछी; ये च्यारिपाद ब्रह्मके हैं विस्व, तैजस, प्राज्ञ, औ त्वंपदका लछ्य, जीवसाछी; ये च्यारिपाद आत्माके हैं जीवसाछीकूंही तुरीय कहै हैं.

समष्टिस्थूलप्रपंचसहित चेतन विराट कहिये है. व्यष्टिस्थूलअभिमानी विस्व कहिये है. विराटकी औ विस्वकी उपाधि स्थूल है; यातैं विराटरूपही विश्व है; विराटतैं न्यारा नहीं. विराटरूप विश्वके सातअंग हैं. स्वर्गलोक मूर्ध है; सूर्य नेत्र हैं; वायु प्रान है; आकास धड है; समुद्रादिरूप जल मूत्रस्थान है; पृथिवी पाद है; जा अग्निमैं होम करिये सो अग्नि मुख है. ये सातअंग विस्वके कहै हैं. मांडूक्यमैं यद्यपि स्वर्गलोकादिक विस्वके अंग बनै नहीं; तथापि विराटके अंग हैं. ता विराटसैं विस्वका अभेद है. यातैं विस्वके अंग कहै हैं.

तैसैं विराटविस्वके उनीसमुख हैं:– पंचप्रान, पंचकर्मइंद्रिय, पंचज्ञानइंद्रिय, च्यारिअंतःकरन; ये उनीसमुखकी

न्याई भोगके साधन हैं; यातैं मुख कहिये हैं. इन उनीसतैं स्थूलसब्दादिकनकूं बाह्यवृत्ति करिके जाग्रतअवस्थाविषै भोगै है, यातैं विराटरूप विश्व, स्थूलका भोक्ता औ बाह्य-वृत्ति कहिये है; औ जाग्रतअवस्थावाला कहिये है.

प्रानादिक उनीस जो भोगके साधन हैं, तिनविषै श्रो-त्रादिक इंद्रिय, औ अंतःकरनच्यारि, ये चतुर्दस अपनै अपनै विषय, औ अपनै अपनै देवताकी सहाय चाहै है. देव-ताविषयकी सहायबिना केवल इनतैं भोग होवै नहीं. यातैं पंचप्रान औ चतुर्दसत्रिपुटी विराटरूप विस्वके मुख कहिये हैं. तिनके समुदायका नाम त्रिपुटी है.

सो त्रिपुटी इसरीतिसैं कही हैः— श्रोत्रइंद्रिय अध्यात्म है; औ ताका विषय सब्द अधिभूत है, दिसाका अभिमानी देवता अधिदैव है. या प्रकरनमैं क्रियासक्तिवाले औ ज्ञान-सक्तिवाले इंद्रिय औ अंतःकरन अध्यात्म कहिये है, तिनके विषय अधिभूत कहिये है, औ तिनके सहायक देवता अ-धिदैव कहिये है. त्वचाइंद्रिय अध्यात्म है, ताका विषय स्पर्स अधिभूत है. वायुतत्त्वका अभिमानी देवता अधिदैव है. नेत्रइंद्रिय अध्यात्म है, रूप अधिभूत है, सूर्य अधिदैव है. रसनाइंद्रिय अध्यात्म है, रस अधिभूत है, वरुन अधि-दैव है. घ्रानइंद्रिय अध्यात्म है, गंध अधिभूत है, अश्वि-नीकुमार अधिदैव है; औ वार्त्तिककारसुरेस्वराचार्यनैं पृथि-वीका अभिमानी देवता घ्रानका अधिदैव कह्या है, सो बी बनै है; काहेतैं, पृथिवीसैं घ्रानकी उत्पत्ति है, यातैं पृथिवी

अधिदैव कह्या है. औ सूर्यकी वडवाकी नासिकातैं अश्वि-नीकुमारकी उत्पत्ति कही है. यातैं नासिकाका अधिदैव कहू अश्विनीकुमारही कहै है. वाकइंद्रिय अध्यात्म है, वक्तव्य अधिभूत है, अग्निदेवता अधिदैव है. हस्तइंद्रिय अध्यात्म है, पदार्थका ग्रहन अधिभूत है, इंद्र अधिदैव है. पादइंद्रिय अध्यात्म, गमन अधिभूत, विष्नु अधिदैव है. गुदाइंद्रिय अध्यात्म, मलका त्याग अधिभूत, यम अधिदैव है. उपस्थइंद्रिय अध्यात्म, ग्राम्यधर्मके सुखकी उत्पत्ति अ-धिभूत है, प्रजापति अधिदैव है. मन अध्यात्म है, मननका विषय अधिभूत है, चंद्रमा अधिदैव है. बुद्धि अध्यात्म है, बौधव्य अधिभूत है. बृहस्पति अधिदैव है, ज्ञानका विषय बौद्धव्य कहिये है. अहंकार अध्यात्म है, अहंकारका विषय अधिभूत है, रुद्र अधिदैव है. चित्त अध्यात्म है, चितनका विषय अधिभूत है, छेत्रज्ञ जो साछी सो अधिदैव है. ये चतुर्दसत्रिपुटी औ पंचप्रान ये उनीस विराटरूप विस्वके मुख हैं. जैसे विराटतैं विस्वका अभेद है, तैसे ओंका-रकी प्रथममात्रा जो अकार, ताका वी विराटरूप विस्वतैं अ-भेद है. काहेतैं, ब्रह्मके च्यारिपादनमैं प्रथमपाद विराट है. औ आत्माके च्यारिपादनमैं प्रथम विश्व है; तैसे ओंकारकी च्यारिमात्रारूप पादनमैं प्रथमपाद अकार है. यातैं प्रथमता तीनूंमैं समानधर्म होनैतैं विस्वविराटअकारका अभेदचिंतन करै. जो सातअंग उनीसमुख विश्वके कहे, सोई;

सातअंग औ उनीसमुख तजसके वी जाननेकूं योग्य

है. परंतु इतना भेद है:— विस्वके जो अंग औ मुख हैं; सो तौ ईस्वररचित है, औ तैजसके जो इंद्रिय देवता विषयरूप त्रिपुटी औ मूर्धादिक अंग सो मनोमय है. तैजसका भोग सूछम है. यद्यपि भोग नाम सुख अथवा दुःखके ज्ञानका है, ताकेविषे स्थूलता औ सूछमता कहना बनै नहीं; तथापि बाह्य जो सब्दादिक विषय हैं; तिनके संबंधतैं जो सुख अथवा दुःखका साछात्कार, सो स्थूल कहिये हैं. औ मानस जो सब्दादिक तिनके संबंधतैं जो भोग होवै, सो सूछम कहिये हैं. इसी कारनतैं विस्व तौ स्थूलका भोक्ता श्रुतिविषै कह्या है. औ तैजस सूछमका भोक्ता कह्या है. काहेतें, तैजसके भोग्य जो सब्दादिक हैं, सो तौ मानस हैं; यातें सूछम है. औ तिनकी अपेछा करिके विस्वके भोग्य बाह्यसब्दादिक हैं; सो स्थूल हैं. औ विस्व बहिरप्रज्ञ है, तैजस अंतरप्रज्ञ है. काहेतें, जो विस्वकी अंतःकरनकी वृत्तिरूप प्रज्ञा है, सो बाहरि जावै है, औ तैजसकी नहीं जावै है.

जैसे विस्वका औ विराटका अभेद है. तैसे तैजसकूं बी हिरन्यगर्भरूप जानै. काहेतें, सूछमउपाधि तैजसकी है, औ सूछमही हिरन्यगर्भकी है. यातें दोनूंवाकी एकता जानै. तैजस हिरन्यगर्भकी एकता जानिके ओंकारकी द्वितीयमात्राउकारसें तिनका अभेदचिंतन करै. काहेतें, आत्माके च्यारिपादनमें द्वितीयपाद तैजस है. ब्रह्मके पादनमें हिरन्यगर्भ दूसरापाद है. ओंकारकी मात्रांमें द्वितीयमात्रा उकार है. द्वितीयता तीनूंमें समानधर्म है; यातें तीनूंकी एकता चिंतनकरै.

औ प्राज्ञकूं ईस्वररूप जानै. काहेतें, प्राज्ञकी कारन-उपाधि है; औ ईस्वरकी बी कारनउपाधि है. ईस्वर औ प्राज्ञ, पादनमें तृतीय है. ओंकारकी तृतीयमात्रा मकार है तीसरापना तीनूंमें समानधर्म है, यातें तीनूंकीएकता जानै औ यह प्राज्ञ प्रज्ञानघन है. काहेतें, जाग्रत औ स्वप्नके जि-तनै ज्ञान हैं, सोसुषुप्तिविषै घन कहिये एक अविद्यारूप होय जावे है, यातें प्रज्ञानघन कहिये है औ आनंदभुक बी यह प्राज्ञ श्रुतिनै कह्या है. काहेतें, अविद्यासैं आवृत जो आनंद है. ताकूं यह प्राज्ञ भोगै है. यातें आनंदभुक कहिये है.

जैसै तैजस औ विस्वका भोगत्रिपुटीसैं होवैं है; तैसे प्रा-ज्ञके भोगकी बी त्रिपुटी कहिये है:—चेतनके प्रतिबिंब सहित जो अविद्याकी वृत्ति है, सो अध्यात्म है, अज्ञानसैं आवृत जो स्वरूप आनंद, सो अधिभूत है, औ ईस्वर अधिदैव है. इसरीतिसैं विस्व तौ वहिरप्रज्ञ है, औ तैजस अंतरप्रज्ञ है; औ प्राज्ञ प्रज्ञानघन है.

ऐसा जो तीनूंका भेद है. सो उपाधिकरिके है. वि-स्वकी स्थूल सूक्ष्म अज्ञान तीनिउपाधि हैं. औ तैजसकी सूक्ष्म अज्ञान दोउपाधि है. औ प्राज्ञकी एक अज्ञान उपा-धि है. इसरीतिसैं उपाधिकी न्यूनताअधिकतासैं तीनूंका भे-द है. परमार्थकरिके स्वरूपसैं भेद नहीं.

विस्व तैजस प्राज्ञ, इन तीनूंविषै अनुगत जो चेतन है, सो परमार्थसैं तीनूंउपाधिके संबंधसैं रहित है. तीनूंउपाधि-

का अधिष्ठान तुरीय है, सो बहिरप्रज्ञ नहीं, औ अंतरप्रज्ञ नहीं, औ प्रज्ञानघन बी नहीं, कर्मइंद्रियका औ ज्ञानइंद्रियका विषय नहीं, औ बुद्धिका विषय नहीं, किसी सब्दका विषय नहीं. ऐसा जो तुरीय है; ताकूं परमात्माका चतुर्थपाद ईस्वरसाछीसुद्धब्रह्मरूप जानैं.

इसरीतीसैं दोप्रकारका आत्माका स्वरूप कह्याएक तौ परमार्थरूप है, औ एक अपरमार्थरूप है. तीनिपाद तौ अपरमार्थरूप हैं, औ एकपाद तुरीय परमार्थरूप है. जैसे आत्माके दोस्वरूप हैं, तैसे ओंकारके बी दोस्वरूप हैं. अकार उकार मकार, ये तीनिमात्रारूप जो वर्न है, सो तौ अपरमार्थरूप है, औ तीनूंमात्राविषै व्यापक जो अस्तिभातिप्रियरूप अधिष्ठानचेतन है, सो परमार्थरूप है. जो ओंकारकापरमार्थरूप है, ताकूं श्रुतिविषै अमात्रसब्दकरिके कह्या है. काहेतें, ता परमार्थस्वरूपविषै मात्राविभाग है नहीं, यातैं अमात्र कहिये है. इसरीतिसैं दोस्वरूपवाला जो ओंकार है, ताका दो स्वरूपवाले आत्मासैं अभेद जानैं.

व्यष्टि औ समष्टि जो स्थूलप्रपंच तासहित विस्व औ विराटका अकारसैं अभेद जानैं. आत्माके जो पाद हैं, तिनविषै विस्व आदि है, औ ओंकारकी मात्राविषै अकार आदि है; यातैं दोनूं एक जानैं. सूछमप्रपंचसहित जो हिरन्यगर्भरूप तैजस है, ताकूं उकाररूप जानैं तैजस बी दूसरा है, औ उकार बी दूसरा है. यातैं दोनूंकूं एक जानैं

कारनउपाधिसहित जो ईस्वररूप प्राज्ञ है, ताकूं मकाररूप जानै. जैसें ईस्वररूप प्राज्ञ तीसरा है, तैसें मकार वी तीसरा है, औ उकार ईस्वररूप प्राज्ञ औ मकारकूं एक जानै. तीनूंविषै अनुगत जो परमार्थरूप तुरीय है; ताकूंओंकारवर्नकी तीनिमात्राविषै अनुगत जो ओंकारका परमार्थरूप अमात्र है, तासैं अभिन्न जांन. जैसें विस्वादिकविषै तुरीय अनुगत है, तैसें अकारादिक तीनिमात्राविषै अमात्र अनुगत है. यातैं ओंकारके अमात्ररूपकूं औ तुरीयकूं एक जानै. इसरीतिसैं आत्माके पाद औ ओंकारकी जो मात्रा है, तिनकी एकता जानिके लयचिंतन करै.

सो लयचिंतन कहिये है:— विस्वरूप जो अकार है; सो तैजसरूप उकारसैं न्यारा नहीं; किंतु उकाररूप है. ऐसैं जो चिंतन करना, सो या स्थानमैं लय कहिये है. ऐसाही औरमात्रविषै वी जानि लेना. और जा उकारविषै अकारका लय किया है, ता तैजसरूप उकारका प्राज्ञरूप जो मकार है ताकेविषै लय करै. औ प्राज्ञरूप जो मकार है ताकूं तुरीयरूप जो ओंकारका परमार्थरूप अमात्र है, ताकेविषै लीन करै. काहेतैं, स्थूलकी उत्पत्ति औ लय सूछमविषै होवै है. यातैं विस्वरूप जो अकार है, ताका तैजसरूप उकारसैं लय बनै है. औ सूछमकी उत्पत्ति औ लय सूछमविषै होवै है. यातैं विस्वरूप जो आकार है,ताका तैजसरूप उकारमैं लय बनै है. औ सूछमकी उत्पत्ति औ लय कारनमैं होवै है. यातैं तैजसरूप जो उकार है, ताका कारन

प्राज्ञरूप जो मकार है; ताकेविषै लय बनै हैं. या स्थान-विषै विश्वआदिकनके ग्रहनतैं समष्टि जो विराटआदिक है, तिनका; औ अपनी अपनी जो त्रिपुटी हैं, तिन सर्वका ग्रहन जानना. जा प्राज्ञरूप मकारविषै उकार लय किया है तामकारकूं तुरीयरूप जो ओंकारका परमार्थरूप अमात्र है, ताकेविषै लीन करै. काहेतैं, ओंकारके परमार्थस्वरूपका तुरीयसैं अभेद है. सो तुरीय ब्रह्मरूप है. औ सुद्धविषै ईस्वर प्राज्ञ दोनूं कल्पित हैं. जो जाकेविषै कल्पित होवै है, सो ताका स्वरूप होवै है. यातैं ईस्वरसहित प्राज्ञरूप मकारका लय बनै है. इसरीतिसैं जो ओंकारके परमार्थस्वरूप अमात्रविषै सर्वका लय किया है; "सो मैं हूं" ऐसा एकाग्र[illegible] होयके चिंतन करै. स्थावरजंगमरूप, औ असंग, अद्वय, असंसारी, नित्यमुक्त, निर्भय, ब्रह्मरूप जो ओंकारका परमार्थस्वरूप, "सो मैं हूं." ऐसा चिंतन करनेसैं ज्ञान उदय होवै है. यातैं ज्ञानद्वारा मुक्तिरूप फलका देनेवला यह ओंकारका निर्गुनउपासन है. सो सर्वसैं उत्तम है.

जो पूर्वरीतिसैं ओंकारके स्वरूपकूं जानै है, सो मुनि है. जो नहीं जानै है, सो मुनि नहीं. काहेतैं, मुनि नाम मनन करनैवालेका है. यह ओंकारका चिंतन मननरूप है. जाके ओंकारका चिंतनरूप मनन नहीं, सो मुनि नहीं, यह मांडूक्यउपनिषदकी रीतिसैं संछेपतैं ओंकारका चिंतन कह्या है. औंर बी नृसिंहतापनी आदिक उपनिषदनमैं याका प्रकार है. यह ओंकारका चिंतन परमहंसोंका गोप्य

धन है. वहिरमुखपुरुषका याविषै अधिकार नहीं: अत्यंत-अंतरमुखका अधिकार है. गृहस्थका यामैं अधिकार नहीं. धन पुत्र स्त्रीसंगादिकरहित परमहंसका अधिकार है.

पूर्वप्रकारतैं ओंकारका ब्रह्मरूपतैं ध्यान कियेतैं ज्ञान-द्वारा मोक्ष होवैं है. परंतु जा पुरुषकी इसलोकके भोगनमैं अथवा ब्रह्मलोकके भोगनमैं कामना होवै तीव्रवैराग्य नहीं होवै, औ हठसैं कामनाकूं रोकिके, धनपुत्रादिकनकूं त्यागिके, परमहंसगुरुके उपदेसतैं ओंकाररूप ब्रह्मका ध्यान करै; ताकूं भोगकी कामना ज्ञानमैं प्रतिबंध है. यातैं ज्ञान नहीं होवै है. किंतु ध्यान करतेही सरीरत्यागतैं अनंतर अन्यसरीरकी प्राप्ति होवै. जो इसलोकके भोगनकी कामना रोकिके ध्यानमैं लगा होवै, तौ इसलोकमैं अत्यंतविभूतिवाले पवित्रसत्संगीकुलमैं जन्म होवै है. तहां पूर्वकामनाकोविषै सारेभोग प्राप्त होवै है. औ पूर्व जन्मके ध्यानके संस्कारनतैं फेरि विचारमैं अथवा ध्यानमैं प्रवृत्ति होवै है. तातैं ज्ञान होयके मोक्ष होवै है.

औ ब्रह्मलोकके भोगनकी कामना रोकिके ओंकाररूप ब्रह्मके ध्यानमैं लग्या होवै, तौ सरीर त्यागिके ब्रह्मलोककूं जावै है. तहांमनुष्यनकूं पितरनकूं, देवनकूं. दुर्लभ जो स्वतंत्रता है, ताके आनंदकों भोगै है. जितनी हिरन्यगर्भकी विभूति है, सो सारी सत्यसंकल्पादिक विभूति इसकूं प्राप्त होवै हैं.

जा मार्गतैं ब्रह्मलोककूं जावै है, सो मार्गका क्रम यह

है:– जो पुरुष ब्रह्मकी उपासनामैं तत्पर है, ताके मरनसमय इंद्रिय अंतःकरन यद्यपि सारे मूर्छित हैं, कहीं जानैंमैं समर्थ नहीं, औ यमके दूत ताके समीप आवै नहीं, जो ताके लिंगसरीरकूं ले जावै. परंतु अग्निका अभिमानी देवता ताकूं मरनसमय सरीरसैं निकासिके अपनैं लोककूं ले जावै है ता अग्निलोकतैं दिनका अभिमानी देवता ले जावै है. तिसतैं सुक्लपछका अभिमानी देवता अपनैंलोककूं ले जावै है. तिसतैं आगे उत्तरायन जो षटमास है, तिनका अभिमानी देवता ले जावै है. तिसतैं आगे संवत्सरका अभिमानी देवता ले जावै है. तिसतैं आगे देवलोकका अभिमानी देवता ले जावै है. तिसतैं आगे वायुका अभिमानी देवता ले जावै है. तिसतैं आगे सूर्यदेवता ले जावै हैं. तिसतैं आगे चंद्रदेवता ले जावै है. तिसतैं आगे विजलीका अभिमानी देवता अपनैंलोकामैं ले जावै है. तहां विजलीके लोकमैं तिस उपासकके सामनैं हिरन्यगर्भकी आज्ञातैं दिव्यपुरुष हिरन्यगर्भलोकवासी हिरन्यगर्भसमानरूप ताके लेनैंकूं आवैं है; सो पुरुष विजलीके लोकतैं वरुनलोककूं ले जावै है. विजलीका अभिमानी देवता साथि आवै है. वरुनलोकतैं इंद्रलोककूं ले जावै है. औ वरुनदेवता बी इंद्रलोकतोडी हिरन्यगर्भलोकवासीपुरुष औ उपासकके साथि रहै है तिसतैं आगे इंद्रदेवता प्रजापतिके लोकतोडी दोनूंके साथि रहै है. तिसतैं आगे प्रजापति तिन दोनूंके साथ ब्रह्मलोक लेजानैविषै समर्थ नहीं, यातैं ब्रह्मलोकमैं ता दिव्य-

पुरुषके साथि सो उपासक प्राप्त होवै है. ब्रह्मलोकका अधिपति हिरन्यगर्भ है. सूछमसमष्टिका अभिमानी चेतन हिरन्यगर्भ कहिये है; ताहीकूं कार्यब्रह्म कहै है. कार्यब्रह्मके निवासस्थानकूं ब्रह्मलोक कहै है.

यद्यपि पूर्वरीतिसैं ओंकारकी उपसना सुद्धब्रह्मनरूपकरिके कही है. सुद्धब्रह्मके उपासककूं सुद्धब्रह्मकी प्राप्ति चाहिये; तथापि सुद्धब्रह्मकी प्राप्ति ज्ञानतैंही होवै है. औ कामनारूप प्रतिबंधतैं जाकूं ज्ञान हुया नहीं, ताकूं कार्यब्रह्मकी सायुज्यरूप मोछ होवै है, ब्रह्मलोकमैं प्राप्त जो उपासक है, ताकूं हिरन्यगर्भके समान विभूति प्राप्त होवै है, सत्यसंकल्प होवै है. जैसे सरीरकी इछा करै तैसाई उसका सरीर होवै है. जिन भोगनकी वांछा करै, सो सारेभोग संकल्पतैंही प्राप्त होवै है. जो एकसमय हजारसरीरनसैं जुदेजुदे भोगनकी इछा करै, तौं ताहीसमय हजारसरीर औ उनके भोगनकी जुदीजुदीसामग्री उपजै है. औ बहुत क्या कहै; जो कछु संकल्प करै, सोई सिद्ध होवै है. परंतु जगतकी उत्पत्ति पालन संहार छोडिके औरसारीविभूति ईस्वरके समान होवैं है. याहीकूं सायुज्यमोछ कहै है. ऐसैं हिरन्यगर्भके समान हुवा बहुतकाल संकल्पसिद्ध दिव्यपदार्थनकूंभोगिके प्रलयकालमैं जब हिरन्यगर्भके लोकका नास होवै, तब ज्ञान होयके उपासककूं विदेहमोछकी प्राप्ति होवै है.

जैसे ओंकाररूप ब्रह्मकी उपासना करनेवाला ब्रह्मलो-

ककी प्राप्तिद्वारा मोछकूं प्राप्त होवै है; तैसै औरबी उपनिषदोंमें ब्रह्मकी उपासना कही है, तीनतैं यही फल होवै है. परंतु अहंग्रहउपासनाविना औरउपासनातैं ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवै नहीं. यह वार्त्ता सूत्रकारनै औ भाष्यकारनै चतुर्थअध्यायमें प्रतिपादन करी है. जैसै नर्बदेस्वरका सिवरूपतैं औ सालिग्रामका विष्नुरूपतैं ध्यान कह्या है, सो प्रतीकध्यान है, अहंग्रह नहीं. औ मनका ब्रह्मरूपतैं आदित्यका ब्रह्मरूपतैं ध्यान कह्या है, सो वी प्रतीकध्यान है, अहंग्रह नहीं. तिनतैं ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवै नहीं. सगुन अथवा निर्गुनब्रह्मकूं अपनेतैं अभेदकरिके चिंतन करै, ताकूं अहंग्रहध्यान कहै हैं. ताहीतैं ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवै है.

पूर्वकह्या जो मार्ग है ताकूं उत्तरायनमार्ग, कहै हैं; औ देवमार्ग वी कहै हैं. ता देवमार्गतैं ब्रह्मलोककूं जो उपासक जावै है. तिनकूं फेरी संसार नहीं होता, किंतु ज्ञान होयके विदेहमुक्तिकूं प्राप्त होवै है. तहां ज्ञानके साधन जो गुरुउपदेसादिक हैं, तिनकी वी अपेछा नहीं. किंतु ब्रह्मलोकमें गुरुउपदेसादिक साधनविनाही ज्ञान होवै है. काहेतैं ब्रह्मलोकमें तमोगुनरजोगुनका तौ लेस बी नहीं. केवल सत्वगुनप्रधान वहलोक है. तमोगुन नहीं; यातैं जडता आलस्यादिक नहीं. रजोगुन नहीं, यातैं कामक्रोधादिरूप रजोगुनका कार्य विछेप नहीं. केवलसत्वगुन है, यातैं सत्वगुनका कार्य ज्ञानरूप प्रकास तालोकमें प्रधान है.

ओंकारकी ब्रह्मरूपतैं जो पूर्व उपासना करी है, तब

ओंकारकी मात्राका अर्थ इसरीतिसैं चिंतन किया है:—
स्थूलउपाधिसहित विराटविस्वचेतन अकारका वाच्य है.
सुछमउपाधिसहित चेतन हिरन्यगर्भतैजस उकारका वाच्य
कारनउपाधिसहित चेतन ईस्वरप्राज्ञ मकारका वाच्य है.
ऐसा अर्थ जो पूर्व चिंतन किया है, ताकी ब्रह्मलोकमैं स्मृ-
ति होवैं है. औ सत्वगुनप्रभावते ऐसा विवेचन होवै है:—
स्थूलउपाधिकरिके चेतनमैंविराटपना औ विस्वपना प्रतीत
होवैं है. स्थूलसमष्टिकी दृष्टितैं विराटपना औ स्थूलव्यष्टि-
की दृष्टितैं विस्वपना है. औ समष्टिव्यष्टिस्थूलकी दृष्टिविना
विराटभाव औ विस्वभाव प्रतीत होवै नहीं, किंतु चेतनमा-
त्रही प्रतीत होवै है. तैसै सूछमउपाधिसहित हिरन्यगर्भतैज-
सचेतन उकारका वाच्य है. तहां समष्टिसूछमउपाधिकी
ष्टितैं चेतनमैं हिरन्यगर्भता, औ व्यष्टिसूछमउपाधिकी दृष्टि-
तैं तैजसता प्रतीत होवै है. सूछमउपाधिकी दृष्टिविना हिर-
न्यगर्भता औ तैजसता प्रतीत होवै नहीं तैसै मकारका वा-
च्य ईस्वरप्राज्ञ है. तहां समष्टिअज्ञानउपाधिकी दृष्टितैं चेतन-
मैं ईस्वरता, औ व्यष्टिअज्ञानउपाधिकी दृष्टितैं चेतनमैं प्रा-
ज्ञता प्रतीतहोवै है. अज्ञानउपाधिकी दृष्टिविना ईस्वरता औ
प्राज्ञता प्रतीत होवे नहीं. जो वस्तु जाकेविषै अन्यकी दृष्टितैं
प्रतीत होवै, सो ताकेविषै परमार्थसैं होवै नहीं. जो जाका
रूप अन्यकी दृष्टिविनां प्रतीत होवै, सो ताका परमार्थसैं
होवै है. जैसै एक पुरुषमैं पिताकी दृष्टितैं पुत्रता, औ दादा-
की दृष्टितैं पौत्रतादिकरूप भान होवै है, सो परमार्थसैं नहीं

पुरुषका पिंडही परमार्थ है. तैसे स्थूलसूछमकारनउपाधिकी .ष्टितें जो विराटविस्वादिकरूप भान होवै है सो मिथ्या है; चेतनमात्रही सत्य है. सो चेतन सर्वभेदरहित है. काहेतें, विराट औ विस्वका जो भेद है, सो उपाधि तौ दोनूंकी यद्यपि स्थूल है, तथापि समष्टिउपाधि विराटकी, औ व्यष्टिउपाधि विस्वकी, सो समष्टिव्यष्टिउपाधितें तिनका भेद है; यातें स्वरूपतें भेद नहीं. तैसे तैजसका हिरन्यगर्भतें भेद बी समष्टिव्यष्टिउपाधितें है; स्वरूपतें नहीं. तैसे ईस्वरतें प्राज्ञका भेद बी समष्टिव्यष्टिउपाधिके भेदतें है, स्वरूपतें नहीं. ऐसे प्राज्ञका ईस्वरतें अभेद, औ तैजसका हिरन्यगर्भतें अभेद, तथा विस्वका विराटतें अभेद है. या प्रकारतें स्थूलउपाधि-...का सूछमउपाधिवालेतें, वा कारनउपाधिवालेतें भेद नहीं. काहेतें स्थूलसूछमकारनउपाधिकी दृष्टि त्यागेतें चेतनस्वरूपमें किसीप्रकारका भेद प्रतीत होवै नहीं. औ अनात्मासें बी चेतनका भेद नहीं. काहेतें, अनात्मदेहादिक अविद्याकालमें प्रतीत होवै हैं. परमार्थसें नहीं. तिनका बी चेतनसें भेद बनै नहीं. ऐसे सर्वभेदरहित, असंग, निर्विकार, नित्यमुक्त, ब्रह्मरूप आत्मा, ओंकारका लछ स्वयंप्रकासरूप तिस उपासककूं भान होवै है. तातें हिरन्यगर्भलोकवासीकूं संसार होवै नहीं.

यद्यपि महावाक्यके विवेकविना ज्ञान होवै नहीं, तथापि ओंकारका विवेकही महावाक्यका विवेक है. स्थूलउपाधिसहित चेतन अकारका, वाच्य, स्थूलउपाधिकूं त्या-

गिके चेतनमात्र अकारका, लछ्य, तैसैं सूछमउपाधिसहित चेतन उकारका वाच्य; सूछमउपाधिकूं त्यागिके चेतनमात्र लछ्य कारनउपाधिसहित चेतन मकारका वाच्य, कारन उपाधिकूंत्यागिके चेतनमात्र लछ्य. इसरीतिसैं उपाधिसहित विश्वादिक अकारादिमात्राके वाच्य, औ उपाधिरहित चेतन सर्वमात्राके लछ्य हैं. तैसैं नाम रूप सकलउपाधिसहित चेतन ओंकारवर्नका वाच्य है. औ नामरूप सकलउपाधिरहित चेतन ओंकारवर्नका लछ्य है. ऐसैं ओंकारका औ महावाक्यनका अर्थ एकही है. यातैं ओंकारके विवेकतैं अद्वैतज्ञान होवै है. ऐसैं आचार्यके मुखतैं श्रवनकरिके अदृष्ट नाम जो मध्यमसिष्य, सो उपासनामैं प्रवृत्त होयके ज्ञानद्वारा परमपुरुपार्थमोछकूं प्राप्त हुवा. १६८

निर्गुनउपासनामैं जाका अधिकार नहीं, ताकूं कर्तव्यक है हैं

## सवैयाछंद.

जो यह निर्गुनध्यान न व्है तौ,
सगुनईस करि मनको धाम,
सगुनउपासन हू नहिं व्है तौ,
करि निष्कामकर्म भजि राम,
जो निष्कामकर्म हू नहीं व्है,
तौ करिये सुभकर्म सकाम,

जौ सकामकर्महू नहीं होवै,

तौ सठ वारवार मरि जाम. १६९.

दोहा.

ओंकारको अर्थ लखि, भयो कृतार्थ अदृष्टि,

पढै जु याहि तरंग तिहि, दादू करहु सुदृष्टि. १७०

इति श्रीगुरुवेदादिव्यावहारिक प्रतिपादन मध्यमाधिकारी साधनवर्णनं नाम पंचमस्तरंगः

समाप्त. ५

श्रीगणेशाय नमः

# अथ श्रीविचारसागरे

षष्ठस्तरंगः प्रारंभः ६

# अथ गुरुवेदादि साधन मिथ्या वर्ननं.

## दोहा.

चेतन भिन्न अनात्म सब, मिथ्या स्वप्नसमान;
यूं सुनि बोल्यो तीसरो, तर्कदृष्टि मतिमान. १

टीकाः— चतुर्थतरंगमैं उत्तमअधिकारीकूं उपदेसका प्रकार कह्या. पंचमतरंगमैं मध्यमकूं कह्या. या तरंगमैं कनिष्ठअधिकारीकूं उपदेसका प्रकार कहै हैंः— जाकूं संका बहुत उपजै, ताकी यद्यपि बुद्धि तीव्र होवै है, तथापि वह कनिष्टअधिकारी है. यह तरंग युक्तिप्रधान है; यातैं सुने अर्थमैं जाकूं कुतर्क उपजै, ताकूं इसतरंगका उपयोग है. कुतर्कदुषितबुद्धि कनिष्टअधिकारी होवै है. ताकूं उपदेसका प्रकार या तरंगमैं है. पेहलेतरंगमैं प्रनवउपासना औ जगतकी उत्पत्तिनिरूपनसैं पूर्व यह कह्याः— जो चेतनसैं भिन्न अज्ञान औ ताका कार्य अनात्म कहिये हैं. सो अनात्मपदार्थ

सारे स्वमकी न्याई मिथ्या है. इस वार्ताकूं सुनिके दोनुं भा-
ईकूं प्रश्नतें उपराम देखिके,

तर्कदृष्टिप्रश्न करै है:—

## दोहा.

पहिली जानै वस्तुकी, स्मृति स्वप्नमें होय;
जाग्रतमैं अज्ञात अति, ताहि लखै नहीं कोय. २

टीका:— पूर्व जो अत्यंतअज्ञातपदार्थ है, ताका स्वममैं ज्ञान होवै नहीं, किंतु जाग्रतमैं जाका अनुभवज्ञान होवै ताकी स्वममैं स्मृति होवै है. यातैं स्मृतिज्ञानके विषय जाग्रतके पदार्थ सत्य होनेतें तिनका स्वममैं स्मृतिरूप ज्ञान बी सत्य है; यातैं स्वमके दृष्टांतसैं जागृतके पदार्थनकूं मिथ्या कहना संभवै नहीं.

अन्यप्रकारतैं स्वमज्ञानके विषय पदार्थनकूं सत्यता प्रतिपादन करै हैं.

## दोहा.

अथवा स्थूलहि लिंग तजि, बाहरि देखत जाय
गिरि समुद्र वना वाजी गज, सो मिथ्या किहिं भाय.

टीका:— अथवा कहिये औप्रकारतैं स्वमका ज्ञान औ ताके विषय पदार्थ सत्य हैं; मिथ्या नहीं. काहेतें, स्वमअवस्थामैं स्थूलसरीरकूं त्यागिके लिंगसरीर बाहरि निकसिके साचे गिरिसमुद्रादिकनकूं देखै है; यातैं स्वम मिथ्या नहीं.

# उत्तर. दोहा.

यह हस्ती आगै खरो, ऐसो होवै ज्ञान;
स्वप्नमांहि स्मृतिरूप सो कैसै होय सुजान. ४

टीकाः— पूर्वकालसंबंधीपदार्थका ज्ञान स्मृति होवै है जैसै पूर्व देखे हस्तिकी "सो हस्ती," ऐसी स्मृति होवै है यह हस्ती सन्मुख स्थित है" ऐसा ज्ञान स्मृति नहीं किंतु प्रत्यक्ष कहिये हैं. औ स्वप्नमैं "तौ यह हस्ती आगे स्थित है, यह पर्वत है, यह नदी है," ऐसा ज्ञान होवै है, यातैं जागृतमैं देखे पदार्थनकी स्वप्नमैं स्मृति नहीं; किंतु हस्तिआदिकनका प्रत्यक्षज्ञान होवै है.

और जो ऐसै कहैं:—"जागृतमैं जानै पदार्थनकाही स्वप्नमैं ज्ञान होवै है,अज्ञातपदार्थका ज्ञान नहीं होवै, यातैं जागृतपदार्थनके ज्ञानके संस्कारनतैं स्वप्नके ज्ञानकी उत्पत्ति होवै है. संस्कारजन्य ज्ञान स्मृति कहिये है. यातैं स्वप्नका ज्ञान स्मृतिरूप है." सो संका बनै नहीं. काहैतैं, प्रत्यक्षज्ञान दोप्रकारका होवै है एक अभिज्ञारूप प्रत्यक्ष होवै है. दूसरा प्रत्यभिज्ञारूप प्रत्यक्ष होवै है. केवल इंद्रियसंबंधतैं जो ज्ञान होवै. सो अभिज्ञाप्रत्यक्ष कहिये है. जैसै नेत्रके संबंधतैं हस्तीका "यह हस्ती है" ऐसा ज्ञानअभिज्ञाप्रत्यक्ष है. औ पूर्वज्ञानके संस्कारनतैं औ इंद्रियसंबंधतैं जो ज्ञान होवै सो प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्ष कहिये है. जैसै पूर्वदेखे हस्तीका "सो हस्ती यह है" ऐसा ज्ञान होवै, सो प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्ष कहि-

ये है. तहां पूर्व हस्तीके ज्ञानके संस्कार औ हस्तीसैं नेत्रका संबंध, प्रत्यभिज्ञाप्रत्यछका हेतु है. यातैं "संस्कारजन्य ज्ञान स्मृतिरूपही होवै है," यह नियम नहीं. किंतु प्रत्यभिज्ञाप्रत्यछ बी संस्कारजन्य होवै है. परंतु इंद्रियसंबंधविना केवलसंस्कारजन्य ज्ञान होवै, सो स्मृतिज्ञान कहिये है. स्वप्नमैं हस्तीआदिकनका ज्ञान केवलसंस्कारजन्य नहीं, किंतु निद्रारूप दोषजन्य है. औ हस्तीआदिकनकी न्याई स्वप्नमैं कल्पितइंद्रिय बी हैं. यातैं इंद्रियजन्य हैं. यद्यपि स्वप्नके पदार्थ साछीभास्य है, इंद्रियजन्य ज्ञानके विषय नहीं; तथापि अविवेकीकी दृष्टितैं स्वप्नका ज्ञान इंद्रियजन्य कहिये है. इसरीतिसैं स्वप्नका ज्ञान जागृतके पदार्थनकी स्मृति नहीं. औ निद्रासैं जागिके पुरुष ऐसै कहै हैः—"मैं स्वप्नमैं हस्तीआदिकनकूं देखता भया" जो हस्तीआदिकनकी स्वप्नमैं स्मृति होवै, तौ जागिके ऐसा कह्या चाहिये "मैं स्वप्नमैं हस्ती आदिकनकूं स्मरन करता भया" ऐसै कोई नहीं कहता, यातैं जागृतके पदार्थनकी स्वप्नमैं स्मृति नहीं. औ "जागृतमैं जो देखे सुने पदार्थ हैं, तिनकाही स्वप्नमैं ज्ञान होवै" यह नियम नहीं. किंतु जागृतमैं अज्ञातपदार्थनका बी स्वप्नमैं ज्ञान होवै है. कदाचित स्वप्नमैं ऐसै विलछनपदार्थ प्रतीत होवै है, जो सारेजन्मविषै कदी देखे सुने होवै नहीं, यातैं तिनका ज्ञान स्मृति नहीं.

यद्यपि "इसजन्मके पदार्थनके ज्ञानके संस्कारही स्मृतिके हेतु हैं," यह नियम नहीं. किंतु अन्यजन्मके ज्ञान-

के संस्कारनतें वी स्मृति होवै है. काहेतें, अनुकूलज्ञानतें प्रवृत्ति होवै हैं, अनुकूलज्ञानविना प्रवृत्ति होवै नहीं. यातें वालककी स्तनपानमें जो प्रथमप्रवृत्ति होवै है, ताका हेतु वालककूं वी "स्तनपान मेरे अनुकूल हैं" ऐसा ज्ञान होवै है. तहां अन्यजन्मविषै स्तनपानमें जो अनुकूलता अनुभव करी है, ताके संस्कारनतें वालककूं प्रथमअनुकूलताकी स्मृति होवै है. यातें जन्मांतरके ज्ञानसंस्कारनतें वी स्मृति होवै हैं. तैसें इसजन्मविषै अज्ञातपदार्थनकी वी अन्यजन्मके ज्ञानके संस्कारनतें स्वप्नविषै स्मृति संभवै है. तथापि कोई पदार्थ स्वप्नमें ऐसें प्रतीत होवै हैं; जिनका जागृतमें किसी जन्मविषै ज्ञान संभवै नहीं. जैसें अपनें मस्तकछेदनकूं आप नेत्रनसें स्वप्नमें देखै हैं, तहां अपना मस्तकछेदन नेत्रनसें जागृतमें देखै नहीं. यातें जागृतपदार्थनके ज्ञानके संस्कारनतें स्वप्नमें स्मृति नहीं. ऐसें स्वप्नकूं स्मृतिरूप खंडनमें अनेकयुक्तिग्रंथकारोंनें कही हैं. परंतु स्वप्नकूं स्मृति माननेंमें पूर्वउक्त दूषन अतिप्रबल है. जो स्मृतिज्ञानका विषय सन्मुख प्रतीत होवै नहीं, औ स्वप्नके हस्ती आदिक सन्मुख प्रतीत स्वप्नकालमें होवै हैं; यातें हस्ती आदिकनकी स्वप्नमें स्मृति नहीं.

"लिंगसरीर बाहरि निकसिके साचेगिरिसमुद्रादिकनकूं देखै है." याका

# उत्तर. दोहा.

वाहरि लिंग जु नीकसै, देह अमंगल होय;
प्रानसहित सुंदर लसै, यातैं लिंगहि जोय. ५

टीकाः— जो स्थूलसरीरतैं निकसिके लिंगसरीर वाहरि साचेगिरिसमुद्रादिकनकूं देखै, तौ लिंगसरीरके निकसनैतैं जैसैं मरनअवस्थामैं सरीर भयंकररूप प्रतीत होवै है, तैसैं, स्वप्नअवस्थाविषै वी लिंगके अभावतैं स्थूलसरीर अमंगल कहिये भयंकर हुवा चाहिये; तैसैं प्रानरहित मृतकसमान हुवा चाहिये. औ स्वप्नअवस्थामैं ऐसा होवैं नहीं; किंतु स्वप्नअवस्थामैं स्थूलसरीर प्रानसहित होवै है. औ जाग्रतकी न्याई सुंदर कहिये मंगलरूप होवै हैं. यातैं स्थूलसरीरके वाहरि लिंगसरीर स्वप्नावस्थामैं निकसै नहीं औ जो ऐसैं कहैं:— स्वप्नअवस्थामैं प्रान तौ जावैं नहीं, किंतु अंतःकरन औ इंद्रिय वाहरि पर्वतादिकनमैं जायके तिनकूं देखै है. वाहरि नहीं जावैं, यातैं स्थूलसरीर मरन-अवस्थाके समान भयंकर होवै नहीं. औ प्रानका वाहरि जानेका कछु प्रयोजन वी नहीं. काहेतैं, प्रानमैं ज्ञानसक्ति नहीं; किंतु क्रियासक्ति है; यातैं वाहरिके पदार्थनके ज्ञान-की जिनमैं सामर्थ्य है, सोई जावै हैं. ज्ञानसक्ति अंतःकरन औ ज्ञानइंद्रियनमैं है. प्रानकी न्याई कर्मइंद्रियनमैं वी ज्ञानसक्ति नहीं; क्रियासक्ति है. यातैं प्रान औ कर्मइंद्रिय स-

रीरमैं रहै हैं. यातैं मरननिमित्ततैं दाहादिकनकी रिछा होवै हैं. औ बाहरि अंतःकरन ज्ञानइंद्रिय जावै है, सो प्रेपर्वतादिकनकूं देखिके प्रान औ कर्मइंद्रियनके समीप आवै है; सो बी बनै नहीं. काहेतैं स्थूलसूछमसमाजमैं सर्वका स्वामी प्रान है. प्रानबिना सरीरकूं देखिके छनमात्र बी रहनै नहीं देते. बाहरि लेजावै है, दाह करै है; स्पर्सतैं स्नान करै है. यातैं स्थूलसरीरका सार प्रान है. तैसै सूछमसरीरमैं बी प्रधान प्रान हैं.

प्रानइंद्रियादिक परस्पर श्रेष्ठता विवाद करिके प्रजापतिके समीप जायके कह्या; हे भगवन् ! हमारेविषै कौन श्रेष्ट है ? तब प्रजापतिने कह्या; तुम सारे स्थूल सरीरमैं प्रवेश करिके एक एक निकसते जावो, जिसके निकसैतैं सरीर अमंगलरूप होईके गिरि पडै, सो तुमारेमैं श्रेष्ठ है, प्रजापतिके वचनतैं नेत्रादिकइंद्रियनतैं एकएकके अभावतैं अंधादिरूप सरीरकी स्थिति देखी, औ प्रानके निकसैनैका उद्योग करतेही सरीर गिरनै लगा, तब सर्वनै यह निश्चय किया, हमारा सर्वका स्वामी प्रान है. इस कारनतैं जितनैं सरीरमैं प्रान रहै, उतनैं रहै है. सरीरतैं प्रानके निकसतैंही सारे निकस जावै हैं. यातैं सूछमसमाजका राजाकी न्याई प्रानही प्रधान है. ताके निकसै बिना अंतःकरन ज्ञानइंद्रिय बाहरि निकसैं नहीं. किंवा,

अंतःकरन औ ज्ञानइंद्रिय भूतनके सत्वगुनके कार्य है तिनमैं ज्ञानसक्ति है; क्रियासक्ति नहीं; प्रानमैं क्रियासक्ति

हैं. ताके बलतैं मरनसमय लिंगसरीर इस स्थूलकूं त्यागिके लोकांतरकूं जावै है; औ प्रानकेही बलतैं इंद्रियद्वारा अंतःकरनकी वृत्ति बाहरि घटादिकनके समीप जावै है. औ प्रानके सहारे बिना अंतःकरनादिकनका बाहरि गमन संभवै नहीं. इसी कारनतैं योगसास्त्रमैं कह्या हैः– "प्रान निरोधविना मनका निरोध होवै नहीं. प्रानके संचारतैं मनका संचार होवै है. प्राननिरोध तैं मनका निरोध होवै है," यातैं मनका निरोधरूप जो राजयोग, ताकी जिसकूं इच्छा होवै, सो प्राननिरोधरूप हठयोगका अनुष्ठान करै; यातैं भी प्रानके आधीन अंतःकरनका गमन है. ताके निकसै बिना अंतःकरन ज्ञानइंद्रिय बाहरि निकसै नहीं. औं स्वप्नअवस्थामैं स्थूलसरीर प्रानसमेत प्रतीत होवै है. यातैं "बाहरि जायके साचे पदार्थनकूं स्वप्नमैं देखै है; यह संभवै नहीं. किंवा,

कोईपुरुष अपनै संबंधीसैं स्वप्नमैं मिलीके जो व्यवहार करै, तौ जागिके वह संबंधी मिलै, तब ऐसैं नहीं कहता, जो रात्रिकु हम मिलेथे, औ अमुकव्यवहार कियाथा. औ पूर्वपछकी रीतिसैं तौ बाहरि निकसिके ता संबंधीसैं मिलिके व्यवहार साचा किया है. ता मिलनैका औ व्यवहारका ज्ञान संबंधीकुं चाहिये, औ मिले जब संबंधीनैं कह्या चाहिये; औ सिद्धांतमैं तौ संबंधी औ ताका मिलाप सब अंतरही कल्पित है. किंवा,

जो बाहरि जायके साचेपदार्थनकूं देखै, तौ रात्रिमैं सो-

या पुरुष हरिद्वारमैं मध्यानके सूर्यतैं तपेमहल गंगातैं पूर्व, औ नीलपर्वत गंगातैं पश्चिम देखै है. तहां रात्रिमैं मध्यानका सूर्य नहीं, गंगातैं पूर्वदिसामैं हरिद्वारपुरी नहीं; औ गंगातैं पश्चिम नीलपर्वत नहीं. यातैं बी साचे पदार्थनका देखना स्वप्नमैं असंभव है. औ जाग्रतकी स्मृति, अथवा ईस्वरकृत पर्वतादिनका बाहरि निकसिके स्वप्नमैं ज्ञान होवै है; इन दोनूंपक्षनका निराकरन किया.

## सिद्धांत कहै हैः—

### दोहा.

यातैं अंतर ऊपजै, त्रिपुटी सकलसमाज;
वेद कहत या अर्थकूं, सब प्रमान सिरताजः ६

टीकाः—जाग्रतके पदार्थनकी स्मृति, औ बाहरि लिंगका निकसना तौ संभवै नहीं. तथापि जाग्रतकी न्याई ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय, त्रिपुटी स्वप्नमैं प्रतीत होवै है. यातैं कंठकी नाडीके अंतरही सबकुछ उत्पन्न होवै है. सबप्रमानका सिरताज कहिये प्रधान जो वेद है, तानै यह कह्या हैः—उपनिषदमैं यह प्रसंग हैः—"जाग्रतके पदार्थ स्वप्नमैं नहीं प्रतीत होवै है; किंतु रथ औ घोडे तथा मार्ग, तैसे रथमैं बैठनवाले स्वप्नमैं नवीन उत्पन्न होवै है. यातैं पर्वतसमुद्र नदी वन ग्राम पुरी सूर्य चंद्र जो कुछ स्वप्नमैं दीखै है, सो नवीन उपजै हैं. जो स्वप्नमैं पर्वतादिक नहीं होवै, तौ तिनका प्रत्यक्षज्ञान स्वप्नमैं

होवै है सो नहीं हुवा चाहिये. काहेतैं, विषयतैं इंद्रियका संबंध, वा अंतःकरनकी वृत्तिका संबंध, प्रत्यछज्ञानका हेतु है. यातैं पर्वतादिक विषय, औ तिनके ज्ञानके साधन इंद्रिय; तथा अंतःकरन सारे अंतर उत्पन्न होवै है.

यद्यपि स्वप्नके पदार्थ सुक्तिरजतादिकनकी न्याई साछीभास्य हैं अंतःकरन इंद्रियनका स्वप्नके ज्ञानमैं उपयोग नहीं यातैं ज्ञेय जो पर्वतादिक हैं, तिनकीही उत्पत्ति स्वप्नमैं माननी योग्य है, ज्ञाता ज्ञान औ इंद्रियनकी उत्पत्ति माननी योग्य नहीं. तथापि जैसै स्वप्नमैं पर्वतादिक प्रतीत होवै हैं तैसै इंद्रिय अंतःकरन प्रानसहित स्थूलसरीर वी स्वप्नमैं प्रतीत होवै है; याते तिनकी वी उत्पत्ति मानी चाहिये. किंवा, स्वप्नके पदार्थनविषै नेत्रादिकनकी विषयता भान होवै है. सो व्यावहारिक नेत्रादिकनकी विषयता तौ स्वप्नके प्रातिभासिकपदार्थनविषै बनै नहीं. काहेतैं, समसत्तावाले पदार्थही आपसमैं साधकबाधक होवै हैं. यह पंचमतरंगमैं प्रतिपादन करी है. यातैं व्यावहारिकनेत्रादिक सरीरमैं है वी, तिनतैं स्वप्नके पदार्थनकी विषमसत्ता होनेतैं तिनके ज्ञानकी विषयता स्वप्नके पर्वतादिकनकूं बनै नहीं. किंवा व्यावहारिक जो इंद्रिय हैं, सो अपनै अपनै गोलकोंकूं त्यागिके कार्य करनेमैं समर्थ होवैं नहीं. औ स्वप्नअवस्थामैं हस्त पाद वाकके गोलक तौ निश्चल दूसरेकूं दीखै हैं; औ हस्तमैं द्रव्य ग्रहनकरिके पुकारता धावन करै है. यातैं स्वप्नमैं इंद्रियनकी उत्पत्ति अवस्य मानी चाहिये. तैसै सुखदुःख औ तिनका ज्ञान, तथा सुखदुःखज्ञानका आश्रय प्रमाता

स्वप्नमैं प्रतीत होवै है. औ विनाहुये पदार्थकी प्रतीति होवै नहीं, यातैं साराञिपुटीसमाज स्वप्नमैं उत्पन्न होवै है.

अनिर्वचनीयख्यातीकी यह रीति हैः—जितनैं भ्रमज्ञान हैं, तिनके विषय सारेअनिर्वचनीय उत्पन्न होवै हैं. विषयविना कोई ज्ञान होवै नहीं, यह सिद्धांत है. और सास्त्रनके मतमैं तौ अन्यपदार्थका अन्यरूपतैं भान होवै, सो भ्रम कहियेहै. सिद्धांतमैं तौ जैसा पदार्थ होवै तैसाही ज्ञान होवै हैं. यातैं भ्रमस्थलमैं वी विषयकी उत्पत्ति अवस्य होवै है. विषयविना ज्ञान होवै नहीं. इसरीतिसैं स्वप्नमैं त्रिपुटीकी प्रतीति होनैतैं सारासमाज उत्पन्न होवै है.

याकेविषै ऐसी संका होवै हैः— स्वप्नके जो पदार्थ प्रतीत होवै हैं, तिनकी उत्पत्ति अंगीकार होवै, तौ जैसैं स्वप्नदृष्टांतसैं जाग्रतके पदार्थ मिथ्या सिद्धांतमैं कहे हैं; तैसै जाग्रतके पदार्थनकी न्याई उत्पत्तिवाले होनैतैं स्वप्नके पदार्थंही सत्य हुये चाहिये. औ स्वप्नकें प्रती पदार्थनकी उत्पत्ति नहीं मानैं तव यह दोष नहीं. काहेतैं, जाग्रतके पदार्थ तौ उत्पन्न हुये प्रतीत होवै हैं, औ स्वप्नमैं पदार्थ विनाहुये प्रतीत होवै हैं. यातैं स्वप्नमैं विनाहुये पदार्थनका ज्ञान भ्रमरूप होवै है. तिनकी उत्पत्ति माननी योग्य नहीं; ता

# संकाका समाधान

## दोहा.

साधनसामग्रीविना, उपजै झूठ सु होय;<br>
विन सामग्री ऊपजै, यूं तिहि मिथ्या जोय. ७

टीकाः—जिस वस्तुकी उत्पत्तिमैं जितना देसकालादि सामग्री, साधन कहिये कारन है, उतनी सामग्रीविना उपजै सो मिथ्या कहिये हैं. औ स्वप्नके हस्तीआदिकनकी उत्पत्तिके योग्य देसकाल है नहीं. बहुतकालनैं औ बहुतदेसनैं उपजनै योग्य हस्तीआदिक छनमात्रकालमैं सूछमकंठदेसमैं उपजै हैं; यातैं मिथ्या हैं. यद्यपि स्वप्नअवस्थामैं कालदेस बी अधिक प्रतीत होवै है; तथापि अन्यपदार्थनकी न्याई स्वप्नमैं अधिककाल औ अधिकदेस बी अनिर्वचनीय प्रातिभासिक उत्पन्न होवै हैं. काहेतैं, विषयविना प्रत्यछज्ञान होवै नहीं औ स्वप्नमैं अधिकदेसकालका ज्ञान होवै है. व्यावहारिकदेसकाल न्यून है, यातैं प्रातिभासिक उत्पन्न होवै है. परंतु स्वप्नअवस्थामैं उपजे जो प्रातिभासिकदेसकाल, सो स्वप्नअवस्थाके हस्तीआदिकनके कारन नहीं. काहेतैं, कारन होवै सो पहली उपजै है, औ कार्य पाछे उपजै है. स्वप्नके देसकाल औ हस्तीआदिक एकही समयमैं होवै हैं, यातैं तिनका कार्यकारनभाव बनै नहीं. औ व्यावहारिकदेसकाल न्यून हैं, हस्तीआदिकनके योग्य नहीं, यातैं देसकालरूप सामग्रीविनी उपजै हैं. यातैं स्वप्नके पदार्थ मिथ्या हैं. और बी मातासैं आदिलेके हस्तीआदिकनकी सामग्री स्वप्नमैं नहीं है. यद्यपि स्वप्नमैं प्रानीपदार्थनके मातापिता बी प्रतीत होवै हैं, तथापि स्वप्नके मातापिता, पुत्रकी उत्पत्तिके कारन नहीं, काहेतैं, मातापिता औ पुत्र, एकछनमैं साथ उपजै हैं, यातैं तिनका कार्यकारनभाव नहीं. जा निद्रासहित अवि-

यासैं स्वप्नके पदार्थ उपजै हैं, सोई अविद्या तिन पदार्थन-विषे मातापना पितापना औ पुत्रपना उपजावै है. इसरीति-तिसैं स्वप्नके पदार्थनकी उत्पत्तिमैं औरकोई सामग्री नहीं; किंतु अविद्याही निद्रारूप दोषसहित कारन है. जो दोषस-हित अविद्यासैं जन्य होवै, सो सुक्तिरजतकी न्याईं मिथ्या होवै है. यातैं स्वप्नके पदार्थ सत्य नहीं, मिथ्या हैं. तिनका उपादानकारन अंतःकरन है; अथवा साछातअविद्याही ति-नका उपादानकारन है. पहलेपछमैं साछीचेतन स्वप्नका अधिष्ठान है, औ दुसरेपछमैं ब्रह्मचेतन स्वप्नका अधिष्ठान है. इसरीतिसैं अंतःकरनका अथवा अविद्याका परिनाम, औ चेतनका विवर्त, स्वप्न है.

याकेविषे ऐसी संका होवै हैः— दूसरे पछमैं ब्रह्म चेतन स्वप्नका अधिष्ठान कह्या, औ अविद्या उपादानकारन कही. तहां अधिष्ठानज्ञानसैं कल्पितकी निवृत्ति होवै है. औ स्वप्न-का अधिष्ठान ब्रह्म है, यातैं ब्रह्मज्ञानविना अज्ञानीकूं जाग-रनमैं स्वप्नकी निवृत्ति नहीं हुई चाहिये.

अन्यसंकाः— जैसैं स्वप्नका अधिष्ठान ब्रह्म, औ उपादा-नकारन अविद्या है; तैसैं वेदांत सिद्धांतमैं जाग्रतके व्याव-हारिकपदार्थनका बी अधिष्ठान ब्रह्म है, औ उपादानकारन अविद्या है; यातैं जाग्रतके पदार्थनकूं व्यावहारिक कहै हैं औ स्वप्नकूं प्रातिभासिक कहै हैं, ऐसा भेद नहीं हुवा चाहिये. काहेतैं, दोनूंका अधिष्ठान ब्रह्म है; औ उपादान-कारन अविद्या है. यातैं जाग्रतस्वप्न दोनूं व्यावहारिक हुये

चाहिये; अथवा दोनूं प्रातिभासिक हुये चाहिये.

सो दोनूंसंका बनै नहीं. काहेतें, प्रथमसंकाका यह समाधान है:- निवृत्ति दोप्रकारकी होवै है, यह पूर्व ख्यातिनिरूपनमैं कही है. कारनसहित कार्यका विनासरूप अत्यंतनिवृत्ति तौ स्वमकी जाग्रतमैं ब्रह्मज्ञानविना बनै नहीं, परंतु दंडके प्रहारतें जैसें घटका मृतिकामैं लय होवै है; तैसे स्वमकी हेतु जो निद्रादोष ताके नासतें, वा स्वमकी विरोधी जाग्रतकी उत्पत्तितें अविद्यामैं लयरूप निवृत्ति स्वमकी ब्रह्मज्ञानविना संभवै है.

और जो संका करी:- "जाग्रतस्वम दोनूं समान हुये चाहिये." सो बनै नहीं. काहेतें, जाग्रतके देहादिक पदार्थनकी उत्पत्तिमैं तौ अन्यदोषरहित केवल अनादिअविद्याही उपादानकारन है, औ स्वमके पदार्थनमैं तौ सादिनिद्रादोष बी अविद्याका सहायक है. यातें अन्यदोषरहित केवल अविद्याजन्य व्यावहारिक कहिये हैं. औ सादिदोषसहित अविद्याजन्य प्रातिभासिक कहिये हैं.स्वमके पदार्थ निद्रादोषसहित अविद्याजन्य होनेतें प्रातिभासिक है. औ जाग्रतके पदार्थ अन्यदोषरहित अविद्याजन्य होनेतें व्यावहारिक कहिये हैं. इसरीतिसैं स्वमके पदार्थनमैं जाग्रतपदार्थनतें विलछनता है, परंतु यह संपूर्न तीनप्रकारकी सत्ता मानिके स्थूलदृष्टिसैं कही हैं, विचारदृष्टिसैं तौ तीनिप्रकारकी सत्ता बनै नहीं. औ जाग्रतस्वमकी परस्पर विलछनता बी बनै नहीं.

यद्यपि वेदांतपरिभाषादिक ग्रंथनमैं पूर्व प्रकारतें व्यव-

हारिक औ प्रातिभासिकपदार्थनका भेद कह्या है, यातैं तीनिसत्ता मानी है. तैसै विद्यारन्यस्वामीनैं बी तीनिसत्ता मानी है. काहेतैं, यह प्रसंग तिन्होंनै लिख्या हैः— दोप्रकारके देहादिक पदार्थ हैं, एक तौ ईस्वररचित हैं, सो बाह्य हैं, औ दूसरे जीवके संकल्परचित हैं, सो मनोमय कहिये हैं औ अंतर है, तिन दोनूमैं जीवसंकल्पतैं रचित अंतर मनोमय साक्षीभास्य हैं. औ ईस्वररचित बाह्य हैं, सो प्रमाताप्रमानके विषय है. औ अंतर मनोमयदेहादिकही जीवकूं सुखदुःखके हेतु हैं; औ बाह्य जो ईस्वररचित हैं, सो सुखदुःखके हेतु नहीं. यातैं मनोमयपदार्थनकी निवृत्ति मुमुक्षुकूं अपेक्षित है. औ बाह्यप्रपंच, सुखदुःखका हेतु नहीं; यातैं ताकी निवृत्ति अपेक्षित नहीं. जैसै दोपुरुषनके दोपुत्र विदेसमैं गये होवैं, तिनमैं एकका पुत्र मरि जावै, एकका जीवता होवै, सो जीवता पुत्र बडीविभूतिकूं प्राप्त होयके किसीपुरुषद्वारा अपनै पिताकूं अपनी विभूतिप्राप्तिका, औ द्वितीयके मरनका समाचार भेजै; तहां समाचार सुनावनवाला दुष्ट होवै, यातैं जीवतेपुत्रके पिताकूं कहै, तेरा पुत्र मरी गया; औ मरेपुत्रके पिताकूं कहै, तेरा पुत्र सरीरतैं निरोग है, बडी विभूतिकूं प्राप्त हुवा है; थोडेकालमैं हस्तीआरूढ बडेसमाजतैं आवैगा. ता वंचकवचनकूं सुनिके जीवतेपुत्रका पिता रोवै है, बडेदुःखको अनुभव करै है; औ मरेपुत्रका पिता बडेहरपकूं प्राप्त होवै है. इसरीतिसैं देसांतरविषै ईस्वररचितपुत्र जीवै है. तौ बी मनोमयपुत्र मरि गया, यातैं दुःख

होवै है. ईश्वररचित जीवतेका सुख होवै नहीं. तैसे दूसरेका ईश्वररचितपुत्र मरि गया है, ताका दुःख होवै नहीं, मनोमय जीवै है, ताका सुख होवै है, यातैं जीवसृष्टिहि सुखदुःखकी हेतु है, ईश्वरसृष्टि सुखदुःखकी हेतु नहीं. इसरीतिसैं विद्यारन्यस्वामीनै जीवसृष्टि दोप्रकारकी कही है. तहां जीवसृष्टि प्रातिभासिक है, औ ईश्वरसृष्टि व्यावहारिक है, ऐसैं औरग्रंथकारोंनैं बी सत्ता तीनिप्रकारकी कही है चेतनकी परमार्थसत्ता है, औ चेतनसैं भिन्न जडपदार्थनकी दोप्रकारकी सत्ता है. एक व्यावहारिकसत्ता औ दूसरी प्रातिभासिकसत्ता है. सृष्टिके आदिकालमैं ईश्वरसंकल्पतैं उपजे जो केवल अविद्याके कार्य, पंचभूत औ तिनके कार्यनकी व्यावहारिकसत्ता है. दोषसहित अविद्याके कार्य स्वप्न सुक्तिरजतादिकनकी प्रातिभासिकसत्ता है. इसरीतिसैं जाग्रतपदार्थनकी व्यावहारिकसत्ता, औ स्वप्नकी प्रातिभासिकसत्ता कही है.

तथापि अनात्मपदार्थनकी सर्वकी प्रातिभासिकही सत्ता है, यातैं दोप्रकारकीही सत्ता है. चेतनकी परमार्थ सत्ता औ चेतनसैं भिन्न सकलअनात्माकी प्रातिभासिकही सत्ता है, जागृतस्वप्नके पदार्थनकी किंचितमात्र बी विलछनता सिद्ध होवै नहीं. या उत्तमसिद्धांतकूं प्रतिपादन करै हैं:—

**चौपाई:**

विन सामग्री उपजत यातैं,
स्वप्नसृष्टि सब मिथ्या तातैं;

देसकालको लेस न जामैं
सर्वजगत उपजत है तामैं.
स्वप्नसमान झूठजग जानहु,
लेस सत्य ताकूं मति मानहु;
जाग्रतमांहि स्वप्न नहिं जैसैं,
स्वप्नमांहि जाग्रत नहिं तैसैं. ९

टीकाः—देसकालसामग्रीविना स्वप्नके हस्तीपर्वतादिक उपजै हैं, यातैं मिथ्या कहिये हैं. तैसैं आकासादि प्रपंचकी सृष्टि ब्रह्मतैं होवै है, ता ब्रह्मविषै देसकालका लेस बी नहीं है. स्वप्नविषै हस्तीपर्वतादिकनके योग्य तौ देसकाल नहीं हैं, तथापि अल्पदेसकाल है; तैसैं आकासादिकनकी सृष्टिमैं अल्पदेसकाल बी नहीं है; काहेतैं, देसकालरहित परमात्मासैं आकासादिकनकी सृष्टि कही है. इसकारनतैं तैत्तिरीयश्रुतिमैं आकासादिकनकी क्रमतैं सृष्टि कही है, देसकालकी सृष्टि नहीं कही. औ सूत्रकार भाष्यकारनैं बी देसकालकी सृष्टि नहीं कही. सृष्टि नाम उत्पत्तिका है. तहां तैत्तिरीयश्रुतिका औ सूत्रकार भाष्यकारका यही अभिप्राय हैः— आकासादिक प्रपंचकी उत्पत्ति देसकालसामग्रीविना होवै है; यातैं आकासादिक स्वप्नकी न्याई मिथ्या है.

यद्यपि मधुसूदनस्वामीनैं देसकाल साक्षातअविद्याके कार्य कहे है. यातै मायाविसिष्टपरमात्मासैं पहली मायाके परिनाम देसकाल होवै है. तिसैं अनंतर आकासादिक-

नकी उत्पत्ति होवै है. यातैं योग्यदेसकालतैं आकासादिक प्रपंचकी उत्पत्ति संभवै है.

तथापि मधुसूदनस्वामीका यह अभिप्राय नहीं:– जो देसकाल प्रथम होवै है; औ आकासादिक उत्तर होवै हैं. काहेतैं, अतीतकालमैं होवै सो प्रथम औ पूर्व कहिये हैं. औ भविष्यकालमैं होवै सो उत्तर कहिये है; जाकू पाछे कहै है. आकासादिकनकी उत्पत्तितैं प्रथम देसकाल उपजै हैं. या कहनेतैं आकासादिकनकी उत्पत्तिकालतैं पूर्वकाल उपहितपरमात्मा देसकालका अधिष्ठान है; यह सिद्ध होवैगा. यातैं देसकालकी उत्पत्तिमैं पूर्वकालकी अपेछा होवैगी औ कालकी उत्पत्तिविना पूर्वकाल असिद्ध है. यातैं आकासादिकनतैं पूर्वकालमैं देसकालादिक होवै हैं; यह कहना बनै नहीं. किंतु,

मधुसूदनस्वामीका यह अभिप्राय है:– जैसे भूतभौतिक प्रपंच प्रतीत होवै है, तैसे देसकाल बी प्रतीत होवै है. औ आत्मासैं भिन्न कोई नित्य है नहीं. यातैं देसकाल नित्य नहीं. औ विनाशुयेकी प्रतीति होवै नहीं. यातैं आकासादिकनकी न्याई देसकालकी बी उत्पत्ति होवै है. सो देसकाल मायाके परिनाम हैं; औ चेतनके विवर्त हैं. जो विवर्त होवै सो किसीका कारन होवै नहीं. यातैं आकासादिक प्रपंचकी उत्पत्तिमैं देसकालकूं कारनता बनै नहीं. किंवा, कारन प्रथम होवै है, कार्य उत्तर होवै है. आकासादिक प्रपंचतैं देसकाल प्रथम होवै है, यह कहना बनै नहीं;

यह वार्ता नैंडेही कही आये है. यातै बी देसकालकूं आका-सादिक प्रपंचकी कारनता बनै नहीं; किंतु स्वप्नके पिता पुत्रकी न्याई देसकालसहित आकासादिक प्रपंच मायाविसिष्टपरमात्मातै उत्पन्न होवै है. औ कोईपदार्थ किसीदेसमैं किसीकालमै उपजै है, अन्यदेसमें अन्यकालमें नहीं उपजै है. इसरीतिसैं सारेपदार्थ प्रलयकालमैं नहीं उपजै है; सृष्टिकालमैं उपजै है. यातैं देसकालकूं कारनता प्रतीत बी होवै है, तौ बी जा मायातैं देसकालसहित प्रपंचकी उत्पत्ति होवै है; ता मायातैंही देसकालमैं कारनता, अन्य प्रपंचमैं कार्यता, प्रतीत होवै है; औ आकासादि प्रपंचके देसकालैं कारन नहीं. याकेविषे,

ऐसी संका होवै है:— विनाहुये पदार्थनकी तौ प्रतीति होवै नहीं; औ सिद्धांतमैं अंगीकार नहीं. जो विनाहूयेकी प्रतीति मानै; तौ असतख्यातिका अंगीकार होवैगा औ विनाहूये वंध्यापुत्र ससस्रृंगादिकनकी प्रतीति हूई चाहिये. यातैं बिनाहूयेकी प्रतीति होवै, नहीं. यातै देसकालमैं कारनता नहीं होवै, तौ देसकालमैं सर्वपदार्थनकी कारनता मायाके बलतैं बि प्रतीति नहीं हुई चाहिये. औ कारनता देसकालमै प्रतीत होवै है, यातै देसकाल सर्वप्रपंचके कारन हैं. औ

जो सिद्धांती ऐसैं कहैः:— सर्वप्रपंचका कारन ब्रह्म है. ब्रह्मकी कारनता देसकालमैं प्रतीति होवै है. औ देसकालमैं कारनता नहीं, सो बी बनै नहीं. काहेतें, जैसै देसकालका अधिष्ठान ब्रह्म है, तैसै सर्वप्रपंचका अधिष्ठान ब्रह्म है. देस-

कालमैंही ब्रह्मकी कारनता प्रतीत होवै, अन्यमैं नहीं; या कहनैंमै कोई हेतु नहीं. यातै अधिष्ठानब्रह्मकी कारनता देस-कालमैं प्रतीत होवै तौ ब्रह्म सर्वप्रपंचका अधिष्ठान है, यातै सर्वप्रपंचमैं कारनता प्रतीत हुई चाहिये; किसीमै कारनता किसीमैं कार्यता, ऐसा भेद नहीं चाहिये. किंवा देसकालमै कारनता नहीं है, औ ब्रह्ममैं कारनता है, सो ब्रह्मकी कारनता देसकालमै प्रतीत होवै है. या कहनैंतें अन्यथाख्यातिका अंगीकार होवैगा. काहेतैं, अन्यवस्तुकी अन्यरूपतैं प्रतीतिकूं अन्यथाख्याति कहै हैं. देसकाल कारन नहीं, यातैं कारनतैं अन्य अकारन है तिनकी अन्यरूपतैं कहिये कारनरूपतैं प्रतीत माननैंमै अन्यथाख्यातिका अंगीकार होवैगा; औ सि-द्धांतमैं अन्यथाख्याति अंगीकार नहीं. जो या स्थानमैं अ-न्यथाख्याति मानै तौ सुक्तिमैं अनिर्वचनीयरूपकी उत्पत्ति सिद्धांतमैं मानी है, सो निष्फल होवैगी. काहेतैं अन्यथा ख्यातिमैं दो मत हैं:— एक तौ अन्यदेसमैं स्थित पदार्थकी अन्यदेसमैं प्रतीति अन्यथाख्याति. जैसै कांताकरमैं स्थित रजतका सन्मुख सुक्तिदेसमैं प्रतीति अन्यथाख्याति. अथवा अन्यपदार्थकी अन्यरूपतैं प्रतीति अन्यथाख्याति जैसै सु-क्तिकीही रजतरूपतैं प्रतीति अन्यथाख्याति. ऐसै सारेभ्रम: स्थलमैं अन्यथाख्यातिसैं निर्वाह संभवैं हैं. अनिर्वचनीयर-जतादिनकी उत्पत्ति कथन असंगत होवैगा. औ

सिद्धांती ऐसैं कहैं:— विषयके समानाकारज्ञान होवै है. अन्यवस्तुका अन्यरूपतैं ज्ञान संभवै नहीं. यातैं रजताकार-

ज्ञानका विषय वी अनिर्वचनीयरजत उत्पन्न होवै है. या अद्वैतसिद्धांतमैं कारनत अन्य जो देसकाल, तिनविषै ब्रह्मकी कारनताका ज्ञान संभवै नहीं. यातैं देसकालमैं कारनता जो प्रतीत होवै है, ताका विनाहूयेका अथवा ब्रह्ममैं स्थितका भान संभवै नहीं, किंतु देसकालमैंही कारनता है; ताका भान होवै है. इसरीतिसैं " आकासादिक प्रपंचके कारन देसकाल नहीं" यह कथन असंगत है.

सो संका बनै नहीं. काहेतैं, ब्रह्मकी कारनता देसकालमैं प्रतीत होवै है. जैसैं जपापुष्पसंबंधीस्फटिकमैं पुष्पकी रक्तता प्रतीत होवै है. अधिष्ठानकी सत्यता स्वप्नकालमैं मिथ्याहस्तीपर्वतादिकनमैं प्रतीत होवै है. तहां स्फटिकमैं अनिर्वचनीयरक्तताकी उत्पत्तिका अंगीकार नहीं; किंतु पुष्पकी रक्तता स्फटिकमैं प्रतीत होवै है. यातैं स्वेतस्फटिककी रक्तरूपतैं प्रतीत होनैतैं रक्तताके ज्ञानमैं अन्यथाख्यातिही मानी है. तैसैं स्वप्नमैं मिथ्यापदार्थनविषै सत्यता प्रतीत होवै. तहां अनिर्वचनीयसत्यता तिन पदार्थनविषै उत्पन्न होवै है ) यह कथन तौ "सत्य; मिथ्या है, " इस ( व्याघातदोषवाले ) वचनकी न्याई संभवै नहीं. औ विनाहूयेकी प्रतीति होवै नहीं. किंतुस्वप्नके अधिष्ठानचेतनकी सत्यता मिथ्या पदार्थनमैं प्रतीत होवै है. यातैं मिथ्यापदार्थनकी सत्यरूपतैं प्रतीति होनैतैं सत्यताके ज्ञानमैं अन्यथाख्यातिही मानी है. तैसैं अधिष्ठानब्रह्मकी कारनता देसकालमैं अन्यथाख्यातिसैं प्रितीत होवै है. और

जो ऐसै कहैं—इतनै स्थानमै अन्यथाख्याति मानैं, तौ सर्वभ्रममैं अन्यथाख्यातिही मानी चाहिये. सो संका बनै नहीं. काहेतैं, सुक्तिरजतादिकनमैं अन्यथाख्याति माननै मैं यह दोष कह्या है:— विषयतैं विलछन ज्ञान बनै नहीं-औ जहां स्फटिकमै रक्तताका ज्ञान होवै, तहां रक्तपुष्पका स्फटिकतैं संबंध है. यातैं स्फटिकसंबंधीपुष्पकी रक्तता स्फटिकमैं प्रतीत होवै है. काहेतैं अंतःकरनकी वृत्ति जब रक्तपुष्पाकार होवै; ताही वृत्तिका विषय रक्तपुष्पसंबंधी स्फटिक है; यातैं पुष्पकी रक्तता स्फटिकमैं प्रतीत होवै है. औ सुक्तिका तौ रजतरूपतैं ज्ञान संभवै नहीं. काहेतैं, सुक्तिदेसमैं अनिर्वचनीय तथा व्यावहारिकरजत तौ अन्यमतमैं है नहीं, किंतु सुक्तिहै ता सुक्तिके संबंधसैं सुक्तिके समानाकारही अंतःकरनकी वृत्ति होवैगी. रजताकार अंतःकरनकी वृत्ति होवै नहीं. यातैं अविद्याका परिनाम, चेतनका विवर्त अनिर्वचनीयरजत, औ ताका ज्ञान, दोनूं उत्पन्न होवै हैं. औ स्फटिकमैं रक्तता प्रतीत होवै, तहां वृत्तिका संबंध स्फटिक औ रक्तपुष्प दोनूंसैं होवै हैं. रक्तपुष्पके संबंधतैं रक्ताकारवृत्ति होवै है. ता वृत्तिका स्फटिकतैं बी संबंध है. औ स्फटिकमै रक्तताकी छांया है. यातैं पुष्पका धर्म रक्तता, स्फटिकमैं, ताही वृत्तिका विषय है. इसरीतिसैं, जहां दोपदार्थनका संबंध है, तहां एकके धर्मकी दूसरेमैं प्रतीत संभवै है. तहां अन्यथाख्यातिही संभवै है. जहां दोनूंपदार्थनका संबंध नहीं, तहां अन्यथाख्याति नहीं, किंतु अनिर्वचनीयख्याति है. जैसैं पु-

परसंबंधी स्फटिकमें पुष्पकी रक्तता प्रतीत होवै है; तैसै स्वप्नके हस्ती पर्वतादिकनका बी अधिष्ठानचेतननैं संबंध है। यातैं चेतनका धर्म सत्यता बीचेतनसंबंधी हस्तीपर्वतादिकमैं प्रतीत होवै है; सो अन्यथाख्याति है. तैसै अधिष्ठानचेतनका धर्म कारनताअधिष्ठानचेतनसंबंधी देसकालमैं प्रतीत होवै है.

और जो पूर्व संका करीः— " अधिष्ठान चेतनका संबंध सर्वप्रपंचनैं हैं. जो संबंधीका धर्म अन्यथाख्यातिसैं अन्यमैं प्रतीत होवै,तौ चेतनकी कारनता सर्वप्रपंचमैं प्रतीत हुई चाहिये. " सोसंकाबनै नहीं. काहेतैं, जैसै स्वप्नमैं दो सरीर उत्पन्न होवै है. एकसरीर पितारूप प्रतीत होवै है, औ दूसरा सरीर पुत्ररूप प्रतीत होवै है. तहां दोनूंसरीरनका स्वप्नके अधिष्ठानचेतननैं संबंध बी है; तथापि पितासरीरमैं अधिष्ठानचेतनकी कारनता प्रतीत होवै हैं, औ पुत्रसरीरमैं कारनता प्रतीत होवै नहीं; किंतु पिताजन्य पुत्र है,इसरीतीसैं पुत्रसरीरमैं कार्यता प्रतीत होवै हैं,इसरीतिसैं अधिष्ठानचेतनसैं संबंध तौ सर्वका है, तथापि देसकालमैं चेतनधर्म कारनताकी प्रतीति होवै है; औरनमैं कार्यताकी प्रतीति होवै है. अथवा,

अधिष्ठानचेतन असंग है. सो कीसीका परमार्थतैं कारन नहीं. मायामैं आभास यद्यपि कारन है, तथापि आभासका स्वरूप मिथ्या होवै है. जो आपही मिथ्या होवै सो दूसरेका कारन बनै नहीं. यातैं परमात्माविषै प्रपंचकी कारनता होवै, तौ ताकी देसकालमैं भ्रमतैं प्रतीति संभवै, सो परमात्माविषै कारनता है नहीं. परमात्मा, कारनतादिक

धर्मरहित असंग है. ताकी कारनता देसकालमैं प्रतीत हावै है, यह कहना संभवै नहीं. किंतु मायाकृत अनिर्वचनीयदेस-काल अनिर्वचनीयकारनतावाले होवै हैं. औ परमार्थसैं देस काल कारन नहीं. जैसै पुत्रहीनपुरुष स्वप्नमैं पुत्रपौत्र दोनुंवाकूं देखै; तहां पुत्रपौत्रसरीर अनिर्वचनीय होवै है, औ पुत्रसरीरमैं पौत्रसरीरकी अनिर्वचनीयकारनता होवै है. तहां परमार्थसैं पुत्रसरीर औ पौत्रसरीरका परस्पर कार्यकारनभाव नहीं, होवै है. तैसै अनिर्वचनीयकारन देसकाल प्रतीत होवै है, परमार्थसैं देसकाल औ आकासादिकप्रपंचका कार्यकारन-भाव है नहीं. इसरीतिसै देसकाल सामग्रीविना जाग्रतप्रपंच-की उत्पत्ति होवै है. यातैं स्वप्नकी न्याई जाग्रत बी मिथ्या है. और जैसै स्वप्नके स्त्रीपुत्रादिक स्वप्नमैंही सुखदुःखके हेतु हैं; जाग्रतमैं तिनका अभाव है; तैसै जाग्रतके पदार्थनका स्वप्नमैं अभाव होवै है. दोनूं सम है. और

जो ऐसैं कहैं:— जाग्रतसैं स्वप्न होयके फिरी जाग्रत होवै तहां, पहलीजाग्रतके जो पदार्थ हैं; सोई स्वप्नव्यवहित दूसरेजाग्रतमैं रहै हैं. औ प्रथमस्वप्नके पदार्थ दूसरे स्वप्नमैं नहीं रहै हैं. यातैं स्वप्नके पदार्थनतैं जाग्रतके पदार्थ विलछन है.

सो संका बी सिद्धांतके आज्ञानी मूढनकी दृष्टितैं होवै है. काहेतैं, ऐसी मूर्खनकी दृष्टि है. संसारप्रवाह अनादि है, तामैं जीवनकूं जाग्रतस्वप्नसुषुप्ति होवै है. जाग्रतकालमैं स्व-

मसुषुप्ति नष्ट होवै हैं, औ स्वमकालमैं जागृतसुषुप्तिनष्ट होवै है. तैसै सुषुप्तिकालमैं जागृतस्वम नष्ट होवै है. परंतु स्व मसुषुप्ति होवै, तब जागृतकालके स्त्रीपुत्रपसुधनादिक दूरि होवै नहीं; किंतु बनै रहैं, तिनका ज्ञानही दूरी होवै हैं. फिरि जागृत होवै तब प्रथमजागृतके विद्यमानपदार्थनका ज्ञान होवै है. यह अज्ञानीमुर्खनकी दृष्टी है. औ

सिद्धांत यह हैः– सारेपदार्थ चेतनका विवर्त है- अविद्याका परिनाम है. यातैं सुक्तिरजतकी न्याई जिसका- लमैं जो पदार्थ प्रतीत होवै; तिसकालमैं अधिष्ठानचेतनआ- श्रितअविद्याका द्विविधपरिनाम होवै है. अविद्याके त- मोगुनअंसका घटादि विपयरूप परिनाम होवै है. औ अ- विद्याके सत्वगुनका ज्ञानरूप परिनाम होवै है. यद्यपि चे- तनकूं ज्ञान कहै हैं, यातै सत्वगुनका परिनाम ज्ञान है, यह कहना बनै नहीं; तथापि सारेव्यापकचेतन ज्ञान नहीं किंतु साभासवृत्तिमैं आरूढ चेतनकूं ज्ञान कहै है. यातैं चे- तनमैं ज्ञानव्यवहारकी संपादक वृत्ति है. इसरीतिसैं चे- तनमैं ज्ञानपनेकी संपादक वृत्ति है. इसरीतिसैं चेतनमैं ज्ञानपनेकी उपाधि वृत्ति है. ताके विषै बी ज्ञानसब्दका प्रयोग होवै है. जैसै लोकमैं कहै हैं, " घटका ज्ञान उत्पन्न हुवा, पटका ज्ञान नष्ट हुवा. " तहां वृत्तिमैं आरूढ चेतनका तौ उत्पत्ति नास संभवै नहीं, वृत्तिके उत्पत्ति नास होवै है; औ ज्ञानके उत्पत्ति नास कहै है. यातैं वृत्तीमैं बी ज्ञानसब्दका प्रयोग होवै है. सो वृत्तिरूप ज्ञान त्वगुनकास

परिनाम है; यह कहना संभवै है. ता वृत्तिरूप परिनाममैं चेतनका आभास होवै है, घटादिक विषयरूप परिनाममैं चेतनका आभास होवै नहीं. काहेतें विषय औ वृत्ति यद्यपिदोनूं अविद्याके परिनाम हैं; तथापि घटादिक विषय तौ अविद्याके तमोगुनका परिनाम है; यातैं मलिन है, तिनमैं आभास होवै नहीं. औ वृत्ति, सत्वगुनका परिनाम स्वछ हैं, तामैं आभास होवै है. इसरीतिसैं वृत्तिकुं चेतनके आभास ग्रहनकी योग्यता होनैतें, वृत्तिअवछिन्नचेतनकुं ज्ञान कहै हैं; औ साछी कहै हैं. घटादिक विषयकूं आभासग्रहनकी योग्यता नहीं. इसकारनतें विषयअवछिन्नचेतन ज्ञान नहीं; औ साछी बी नहीं. इसरीतिसैं जाग्रतके पदार्थ औ तिनका ज्ञान दोनूं साथिही उत्पन्न होवै हैं, औ साथिही नष्ट होवै हैं. यह वेदका गूढसिद्धांत है. यातैं जागृतके पदार्थ दूसरीजाग्रतमैं रहै हैं; यह कहना संभवै नहीं.

यद्यपि स्वप्नतैं जागेपुरुषकूं ऐसी प्रतिभिज्ञा होवै है "जो पूर्वपदार्थ थे, सोई यह पदार्थ है." यातैं जागृतके पदार्थनका ज्ञानके समकाल उत्पत्तिनास नहीं होवै है, किंतु ज्ञानसैं प्रथम विद्यमान होवै हैं, औ ज्ञान, नासैंं, अनंतर बीरहै हैं;

तथापि जैसें स्वप्नके पदार्थ तिसछनमैं उत्पन्न होवै हैं औ ऐसैं प्रतीत होवै हैं:—"मेरे जन्मसैं बी प्रथम उपजे ये पर्वतसमुद्रादिक हैं;" तहां तत्काल उपजे पदार्थनमैं बहुकाल स्थिरताकी भ्रांति होवै है. यातैं जा अविद्यानैं मिथ्यापर्वत

समुद्रादिक उपजाये हैं; तिसी अविद्यासैं बहुकालस्थिरता औ स्थिरताकी प्रतीति अनिर्वचनीय उपजै है. तैसें जाग्रतके पदार्थनविषै बी अनेकदिनस्थिरता है नहीं; किंतु अविद्याबलसैं मिथ्यास्थिरता बी तिन पदार्थनके साथि उपजिके प्रतीत होवै है. और

जो ऐसै कहैं:— स्वप्नके पदार्थ साछातअविद्याके परिनाम हैं; औ जागृतके पदार्थ साछातअविद्याके परिनाम नहीं. किंतु घटकी उत्पत्ति दंडचक्रकुलालसैं होवै है. तैसै सर्वपदार्थनकी उत्पत्ति अपनै अपनै कारनतैं होवै है; साछातअविद्यासैं नहीं. जो साछातअविद्याके परिनाम होवैं, तौ आकासादिक क्रमतैं पंचभूतनकी उत्पत्ति, औ पंचीकरन, तिनसैं ब्रह्मांडकी उत्पत्ति श्रुतिमें कही है; सो असंगत होवैगी. यातैं ईस्वरसृष्टि जागृतके पदार्थ अपनै अपनै उपादानके परिनाम हैं, अविद्याके साछातपरिनाम नहीं. स्वप्नकेतौ सारेपदार्थ अविद्याके परिनाम हैं. तिनका एकअविद्या उपादान होनैतैं, तिन पदार्थनकी औ तिनके ज्ञानकी एकअविद्यासैं, एककालमैं उत्पत्ति संभवै है. जाग्रतके पदार्थ भिन्नभिन्न कारनसैं उत्पन्न होवै हैं. कार्यतैं पहली कारन होवै है. औ कारनमैं कार्यका लय होवै है. यातैं घटकी उत्पत्तिसैं प्रथम, औ घटनासतैं आगे मृत्पिंड रहै है, इस, रीतिसैं कोईपदार्थ अल्पकालस्थिर, औ कोई अधिककालस्थिर, कार्यकारन है; तैसै स्वप्नके नहीं.

सो संका बनै नहीं. काहेतैं, जाग्रतके पदार्थनकी न्याई

स्वप्नके पदार्थनविषै-वी कार्यकारनभाव प्रतीत होवै है. जैसें किसीकूं ऐसा स्वप्न होवैः— मेरी गउके वछा हुवा है, अथवा मेरी स्त्रीके पुत्र हुवा है. तहां गउ औ स्त्रीविषै कारनताकी प्रतीति, औ वहुकालस्थायिताकी प्रतीति होवै है. वत्स औ पुत्रविषै कार्यता औ अल्पकालस्थिरता प्रतीत होवैं है, औ सारेसमकाल है, कोई किसीका कारन नहीं; किंतु गउ वत्स स्त्रीआदिकनका अविद्याही उपादान है. तैसै जाग्रतविषै वी कोई अधिककालस्थायि कारनरूपतें; कोई न्यूकालस्थायि कार्यरूपतें प्रतीत स्वप्नकी न्याई होवै है. कोई किसीका परस्पर कार्यकारन नहीं; किंतु साछातअविद्याके कार्य हैं. और

श्रुतिविषै जो क्रमतें सृष्टि कही है; तहां सृष्टिप्रतिपादनमें श्रुतिका अभिप्राय नहीं; किंतु अद्वैतबोधनमें अभिप्राय है. सारेपदार्थ परमात्मासें उपजै है; यातें ताके विवर्त हैं. जो जाका विवर्त होवै सो ताकाही स्वरूप होवै है. यातें सारानामरूप ब्रह्मतें पृथक नहीं; ब्रह्मही है. इस अर्थबोधन करनैकूं सृष्टि कही है, सृष्टिका और प्रयोजन नहीं. तहां क्रमका जो कथन है, सो स्थूलदृष्टिकूं विपरीतक्रमतें लयचिंतनके निमित्त है, ताका वी अद्वैतबोधही प्रयोजन है. यातें क्रमकथनमैं वी अभिप्राय नहीं सृष्टिमैं क्रम नहीं है, किंतु सारेपदार्थ एकअविद्यासें उपजै है, तिनका परस्पर कार्यकारनभाव, औ पूर्वउत्तरभाव, अविद्याकृतस्वप्नकी न्याई मिथ्या प्रतीत होवै है. औ श्रुतिनैं तिनकी आपसमैं

कार्यकारनता औ पूर्वउत्तरता कही हैं; सो लयचिंतनके निमित्त कही है. ध्यानमैं यह नियम नहीं, जैसा स्वरूप होवै तैसाही ध्यान होवै है. यातैं जाग्रतके पदार्थनका आपसमैं कारनकार्यभाव नहीं. किंतु,

सारेपदार्थ साछातअविद्याके कार्य हैं, सुक्तिरजतकी न्याई वा स्वप्नकी न्याई अविद्याकी वृत्तिउपहितसाछीतैं तिनका प्रकास होवै है यातैं सारेपदार्थ साछीभास्य हैं. औ ज्ञानाकार औ ज्ञेयाकार अविद्याका परिनाम एकही कालमैं उपजै है. साथही नष्ट होवै है. यातैं जब पदार्थकी प्रतीति होवै, तबही प्रतीतिका विषय पदार्थ होवै है. अन्यकालमैं नहीं होवै है. याहीकूं दृष्टिसृष्टिवाद कहै हैं.

यापछमैं पदार्थकी अज्ञातसत्ता नहीं, ज्ञातसत्ता है. अद्वैतवादमैं यह सिद्धांतपछ हैं, या पछमैं द्वैसत्ता हैं; तीनि नहीं काहेतैं, अनात्मपदार्थ सारेस्वप्नकी न्याई प्रातिभासिक हैं. प्रतीतिकालमैं भिन्नकालमैं अनात्माकी सत्ता नहीं. यातैं तीसरी व्यावहारिकसत्ता नहीं. या पछमैं सारेअनात्मपदार्थ साछीभास्य हैं. प्रमाताप्रमानका विषय कोई बी नहीं. काहेतैं, अंतःकरन औ इंद्रिय तथा घटादिक, सारीत्रिपुटी औ ज्ञान, स्वप्नकी न्याई एककालमैं उपजै हैं; तिनका विषयविषयीभाव बनै नहीं. जो घटादिक विषय औ नेत्रादिक इंद्रिय, तैसें अंतःकरन ये ज्ञानतैं प्रथम होवै; तौ नेत्रादिद्वारा अंतःकरनकी वृत्तिरूप ज्ञान प्रमानजन्य होवै सो अंतःकरन, इंद्रिय, विषय, तीनूं ज्ञानके पूर्वकालमैं हैं

नहीं; किंतु ज्ञानसमकालही स्वमकी न्याई त्रिपुटी उपजै है. याते त्रिपुटीजन्य ज्ञान कोई वी नहीं. तथापि ज्ञानविषे स्वमकी न्याई त्रिपुटीजन्यता प्रतीत होवै है. यातें जाग्रतके पदार्थ साक्षीभास्य हैं. प्रमानजन्यज्ञानके विषय नहीं, यातें बी स्वमके समान मिथ्या है. किंवा जाग्रतमैं कितनै पदार्थनकूं मिथ्यारूपकरिके जानै हैं, औरनकूं सत्यरूपकरिके ऐसें जानै हैः— अनादिकालके पदार्थ हैं, तिनमैं कोई नष्ट होवै हैं, और तिसके समान उत्पन्न होवै है. ऐसें प्रपंचधाराका उच्छेद कदै होवै नहि. जाकूं ज्ञान होवै है, ताकूं प्रपंचकी प्रतीति होवै नहि, औरनकूं प्रपंचकी प्रतीति होवै है. ताज्ञानके साधन वेदगुरु हैं. तिनतैं परमसत्यकी प्राप्ति होवै है; ऐसी प्रतीति जाग्रतमैं होवै है. तहां किसी पदार्थमैं मिथ्यापना, किसीमैं नास, किसीमैं उत्पत्ति, वेदगुरुतैं परमपुरुषार्थकी प्राप्ति; ये सारीअविद्याकृतस्वमकी न्याई मिथ्याहै. वासिष्टमैं ऐसें अनंतइतिहास कहे हैं. छनमात्रके स्वममैं बहुकाल प्रतीत होवैं, औ जागृतकी न्याई स्थाईपदार्थ प्रतीत होवैं, औ तिनतैं बहुकालभोग होवैं; यातें जागृत पदार्थकी स्वमतैं किंचितविलछनता नहीं. किंतु आत्मभिन्न सर्व मिथ्या है.

## सिष्यउवाच.

### दोहा.

लाख हजारन कल्पको, यह उपज्यो संसार;
यातें ज्ञानी मुक्त व्है, बंधे अज्ञ हजार. ११

**झूठो स्वप्नसमान जो, छन घटिका व्है जाम;**
**बद्ध कौनको मुक्त है, श्रवनादिक किह काम. १२**

टीकाः— ईश्वरसृष्टि अनंतकल्पतैं अनादि है तामैं ज्ञानी मुक्त होवै है, अज्ञानीकूं बंध रहै है. जो स्वप्नसमान होवै तौ स्वप्न एकछन घडी तथा पहर होवै है; तैसें संसार बी छन अथवा घडी वा पहरकाल, वा किंचितअधिककाःल होवैगा. स्वप्नकी न्याई स्वल्पकालस्थायिसंसार होवै; तौ अनादिकालका बंध नहीं होवैगा. बंधनिवृत्तिरूप मोछके निमित्त श्रवनादिक साधन निष्फल होवैगे.

यद्यपि पूर्वउक्त सिद्धांतमैं, बंधमोछ वेदगुरु अंगिकार नहीं, किंतु चेतन नित्यमुक्त है. अविद्याके परिनाम, चेतनमैं नानाविवर्त होवै है; तातैं आत्मरूपकी किंचितमात्र बी हानी नहीं. आत्मा सदाअसंग एकरस है. आजतोडी कोई मुक्त हुवा नहीं; आगे होवै नहीं; किंतु चेतन नित्यमुक्त है. अविद्या औ ताके परिनामका चेतनसैं किसीकालमैं संबंध नहींयातैं बंध औ वेदगुरु श्रवनादिक; औ समाधि तथा मोछ, इनकी प्रतीति बीस्वप्नकी न्याई अविद्याजन्य है; यातै मिथ्या है. इनविषै बहुकालस्थायिता बी अविद्याजन्य है. तथापि या सिद्धांतकूं नहीं जानिकै स्थूल दृष्टिका प्रश्न है.

## गुरुवाक्य.

### दोहा.

**अग्रधदेवकूं स्वप्नमैं, भ्रम उपज्यो जिहि रीति;**

सिष तोकूं यह ऊपजी, वंधमोछ परतीति. १३

टीका:— हे सिष्य! जैसै निद्रादोषतैं स्वप्नमैं, अध्यापक, अध्ययन, वेदसास्त्र, पुरान, धर्मसास्त्र, औ अध्ययनकर्त्ता, कर्म, औ तिनका फल प्रतीति होवै है, औ तिन सर्वपदार्थ-नमैं सत्यताकी भ्रांति होवै है; तथापि सो स्वप्नके सारेपदार्थ मिथ्या है. तैसें जाग्रनके सारेपदार्थ मिथ्या है. तिनवि-षै सत्यता प्रतीति भ्रम है. दोहेमैं बंधमोछ ग्रहनतैं सर्व अ-नात्माका ग्रहन है. जैसै तेरेकूं हम गुरु प्रतीति होवै हैं; वेद अर्थका बंधविघातकउपदेस करै है; सो तेरेकूं मिथ्या प्र-तीति है. जैसें अपधदेवकूं स्वप्नमैं मिथ्याप्रतीतिके विषय, गुरुवेदादिक अनिर्वचनीय उपजे है; तैसें तेरी प्रतीतिके विषै मेरेसें आदिलेके सारे अनिर्वचनीय मिथ्या हैं. सो

अपधदेवका ऐसा स्वप्न हुवा है:—एक अपध नाम देवता अनादिकालका निद्रामैं सोवता हुवा स्वप्नकूं देखता भया. ता स्वप्नमैं तिस पुरुषकूं ऐसी प्रतीति हुई:— जो मैं चंडाल हूं, औ महादुःखी हूं, औ अस्थि मज्जा रुधिर त्वचा मांस मेद वीर्यरूप सप्तधातुसैं मेरा मुख भऱ्या है. औ महा-घोर भयंकर सर्पहस्तीआदिकसैं युक्त जो वन, ताकेविषै मैं भ्रमन करूं हूं. सो देवता भ्रमन कर्ता हुवा ता वनमैं अनं-तअस्थान देखता हुवा. कहूं नानाभयंकरप्रानी सन्मुख भ-क्षन करनेंकूं धावन करै हैं. औ कहूं राधिरुधिरसैं भरे कूंड हैं; तिन्हमैं पडे प्रानी हाहाकारसब्द करै हैं, औ कहूं लो-हेके तप्तस्तंभ हैं, तिन्हसैं बंधे पुरुष रोवै हैं, औ कहूं तप्तवा-

लुयुक्त मार्ग होईके नग्नपादपुरुष जावै हैं, औ तिन्ह पुरु-षनकूं राजभट लोहमयदंडनसैं ताडना करै हैं. इसरीतिमैं नाना जो भयंकर स्थान हैं. तिनकूं सो देवता देखता हुवा औ कदाचित आप बी अपराधकरीके स्वमंमैं तिन्ह दुःखन कूं प्राप्त होता भया. औ

कहूं दिव्य स्थान देखता हुवा तिन्ह स्थानमैं उत्तम, देव विराजै हैं. तिन्ह देवनके दिव्य भोग हैं. अम्रतके दर्स-नमात्रसैं तिन्हकूं तृप्ति रहै हैं. क्षुधातृषाकी बाधा तिन्ह दे-वनकूं होंवै नहीं. औ मलमूत्ररहित जिनका प्रकासमान सरीर है. औ उत्तमविमानमैं स्थित होयके कोई देव रमन करै हैं. सो विमान ता देवकी इछाके अनुसार गमन करै हैं, औ कहूं रंभा उर्वसीसैं आदिलेके अप्सरा नृत्य करैं हैं. तिन्हके संपूर्नअंग दोषरहित हैं. औ संपुर्नस्त्री गुनयुक्त हैं उत्तमसुगंध तिन्हके सरीरसैं कामकी प्रकासक आवै हैं. औ कहूं तिन्हसैं देव रमन करैं हैं. औ कदाचित आप बी देव-भावकूं प्राप्त होयके , तिन्हसैं बहुतकाल रमन करै है. औ कदाचित तिन्ह अप्सरानसैं दिव्यस्थानमैं रमन करता हुवा अकस्मात रुधिरमलपूरित जो कुंड हैं, तिन्हविषैं मज्जन करै है. औ,

एक स्थानमैं सर्वका अधिपति पुरुष स्थित है. ताके आज्ञाकारीअनुचर ताके आगें स्थित हैं. कितनै पुरुषकूं सो अधिपति औ ताके अनुचर सौम्यरूप प्रतीत होंवै हैं. औ कितनै पुरुषनकूं महाभयंकररूप प्रतीत होंवै हैं. औ ता

वनमैं स्थित पुरुषनकूं कर्मके अनुसार फल देवै हैं. इसरीः तिसैं अयध नाम देवता स्वमकालमैं नाना जो स्थान हैं, तिन्हकूं देखता हुवा. औ कहूं अन्यस्थानमैं ब्राह्मन वेदकी ध्वनि करै हैं. औ कहूं यज्ञसालामैं उत्तमकर्म करै हैं. औ कहूं उत्तम नदी वहै हैं, तिन्हमैं पुन्यके निमित्त लोक स्नान करै हैं. औ कहूं ज्ञानवानआचार्य सिष्यनकूं ब्रह्मविद्याका उपदेस करै हैं. ता ब्रह्मविद्याकूं प्राप्त होयके ता वनसैं निकसि जावै. है

इसरीतिसैं स्वमविषै अयध नाम देवता छनमात्रमैं नाना आश्चर्यरूप पदार्थ ता वनमैं देखता हुवा, ताकूं ऐसी प्रतीति स्वममैं हुईः— जो मैं अनंतकालका या वनमैं स्थित हूं, या वनका कदी उच्छेद होवै नहीं. कदाचित् बागवान च्यारिमुखनसैं नानाविज निकासिके वनकी उत्पत्ति करै हैं, औ जलसेचनसैं पालन करैहै, औ कदाचित् घोरहास्यकरिके मुखसैं अग्नि निकासिके वनका दाह करै है. वनकी उत्पत्तिके संगि मेरी उत्पत्ति होवै है, औ वनके दाहसंगि मेरा दाह होवै है. औ सर्व वनका दाह करिके सो बागवान-एकही रहै है. ताके सरीरमैं वनके बीज रहै हैं. यह प्रतीत स्वमवेदके श्रवनसैं ता अयधदेवताकूं स्वमहीविषै हुई. तव,

वारंवार अपना जन्ममरन सुनिके तानैं विचार किया, जो किसी प्रकारसैं वनके बाहरि निकसी जाउं. औ वनके बाहरि नहीं बी निकसूं, तौ बी चांडालभाव मेरा दूरि होय

जावैं औ देवभाव सदा बन्या रहै. सो औरतौ कोई उपाय बनतैं निकसनैका है नहीं, ब्रह्मविद्याके उपदेस करनैवाले आचार्य अपनै सिष्यनकूं बनके बाहरि निकासैं हैं. यह विचारके आचार्यकूं स्वप्नकालमैंही सो अपथदेवता प्राप्त हुवा. सो विधिपूर्वक प्राप्त हुवा जो सिष्य, ताकूं आचार्य देववानीरूप मिथ्यापंथ उपदेस करता हुवा.

संस्कृतग्रंथ जो मिथ्याआचार्यनैं मिथ्यासिष्यकूं उपदेस किया, ता ग्रंथकूं भाषाकरिके लिखै हैं. संस्कृतग्रंथके भाषाकरनैंमैं मंगल करै हैं. काहेतें, मंगल करनैतैं जो ग्रंथकी समाप्तिके प्रतिबंधकविघ्न हैं, तिन्हका नास होवै हैं. विघ्न नाम पापका हैं. पापतैं सुभकार्यकी समाप्ति होवै नहीं. तरे पापका मंगलतैं नास होवै हैं. औ जो पापरहित होवै सो बी ग्रंथके आरंभमैं मंगल अवस्य करै. काहेतैं, जो ग्रंथआरंभमैं मंगल नहीं किया होवै तौ ग्रंथकर्त्ताविषै पुरुषनकूं नास्तिकभ्रांति होयके ग्रंथमैं प्रवृत्ति होवै नहीं.

सो मंगल तीनिप्रकारका है. एक वस्तूनिर्देसरूप है, औ दुसरा नमस्काररूप है. औतीसरा आसिर्वादरूप है, सगुण अथवा निर्गुन जो परमात्मा, सो वस्तु कहिये है, ताके कीर्तनका नाम वस्तुनिर्देस कहिये है. अपना अथवा सिष्यनका जो वांछितवस्तु ताके प्रार्थनका नाम आसिर्वादरूप मंगल कहिये है. सो अपनै वांछितका प्रार्थन चतुर्थदोहेमैं स्पष्ट है. सिष्यके इष्टका प्रार्थन पंचमदोहेमैंस्पष्ट हैं.

गनेस औ देवीकूं ईस्वरता पुरानमैं प्रसिद्ध है. यातैं अ-

नीस्वरका चिंतन नहीं; औ पुरानमैं गनेसका जो जन्महै, सो जीवकी न्याई कर्मका फल नहीं; किंतु रामकृस्नादिकन कीन्याई भक्तजनके अनुग्रहवास्तै परमात्माकाही आविर्भाव होवै है; यह व्यासभगवानका परमअभिप्राय है. या स्थानमैं यह रहस्य है:—परमार्थदृष्टिसैं जीव वी परमात्मासैं भिन्न नहीं, परंतु जन्ममानादिक बंधका आत्माविषै जो अध्यास सो जीवका जीवपना है. सो जन्मादिक बंध गनेसादिकनकूं आत्माभैं प्रतीत होवै नहीं; यातैं जीव नहीं इसरीतिसैं गनेसादिकनकूं ईश्वरता है. यातैं ग्रंथके आरंभमैं तिन्हका चिंतन योग्य है. नानारूप ईस्वरका जो कथन है, सो सर्वकूं ईस्वरता द्योतन करनैवासते है. औ ईस्वरभक्ति औ गुरुभक्ति विद्याकी प्राप्तिका मुख्यसाधन है; इसअर्थकूं वी द्योतन करनैवासतैं है.

## अथ निर्गुनवस्तुनिर्देसरूप मंगल.

### दोहा.

जा विभु सत्य प्रकासतैं, परकासत रवि चंद;
सो साछी मैं बुद्धिको, सुद्धरूप आनंद. १

## अथ सगुनवस्तुनिर्देस मंगल.

### दोहा.

नासै विघ्न समूलतैं, श्रीगनपतिको नाम;

जा चिंतन बिन व्है नहीं, देवनहूंके काम. २

टीकाः-त्रिपुरवधमैं यह वार्ता प्रसिद्ध है.

## अथ नमस्काररूप मंगल.

सोरठा.

असुरनको संहार, लछमी पारवतीपती;
तिन्हे प्रनाम हमार, भजतनकूं संतत भजै. ३

## अथ स्ववांछितप्रार्थनरूप आसिर्वाद.

## मंगल.

दोहा.

जा सक्तीकी सक्ति लहि, करै ईस यह साज;
मेरी बानीमैं वसहु, ग्रंथ सिद्धिके काज. ४

## अथ सिष्यवांछितं प्रार्थनरूप आसिर्वाद.

दोहा.

बंधहरन सुख करन श्री दादू दीनदयाल;
पढै सुनै जो ग्रंथ यह, ताके हरहु जंजाल. ५

# अथ वेदांतसास्त्रकर्त्ता आचार्य नमस्कार.

## कवित्व.

वेदवादवृछ बन भेदवादीवायु आय;
पकर हलाय क्रिया कंटक पसारिके;
सरल सुसुद्ध सिष्य कंज पुनि तोरि गेरि,
सूलनमैं फेरत फिरत फेरि फारिके;
पेखि सु पथिक भगवान जानि अनुचित,
अंकमैं उठाय ध्याय व्यासरूप धारिके;
सूत्रको बनाई जाल बनको विभाग कीन्ह,
करत प्रनाम ताहि निश्चल पुकारिके. ६

टीका:– जैसैवायु, वनमैं पैठिके, वृछनकूं हलायके, तिन्हके कंटक पसारिके, सुंदर कमलनके पुष्पनकूं स्वस्थानसैं तोरिके, कंटकनविषै भ्रमावै. तिन्ह भ्रमतें पुष्पनकूं देखिके, पथिकके चित्तमैं ऐसी आवै :—जो ये सुंदरकमल या स्थानयोग्य नहीं. किंतु उत्तमस्थानयोग्य है. यह विचारिकै तिन्ह पूष्पनकूं उठाइ लेवै, औ फेरि विचार करै, जो आगे बी पवन कंटकनविषै पुष्पनकूं तोडिकै भ्रमन करावैगा; यातैं ऐसा उपाय करूं, जातैं फेरि वायु कंटकनमैं पुष्पनकूं भ्रमावै नहीं. यह विचारिकै सूत्रके जालसैं कंटकयुक्त वृछनका

विभाग करि देवै. ता जालसैं पुष्पनका कंटकनमैं प्रवेस हो-वै नहीं.

तैसै भेदवादी आचार्यरूप जो वायु है, सो वेदरूपी वनमैं वाद कहिये अर्थवादरूप जो कंटकसहित वृछ हैं, तिन्हतैं सकामकर्मरूप कंटक प्रवर्त करिकै, सरल कहियेकपटरहित औ सुसुद्ध कहिये अतिसुद्ध रागादि दोषरहित जो सिष्यरू-प कमलपुष्प, तिन्हकूं समादिरूप जो स्वस्थानतासों तोरके सकामकर्मरूप कंटकनविषै भ्रमावतें देखिके, पथिकसमान व्यापकविस्नुनैं विचार किया; जो यह सुद्धपुरुष या स्थान जोग नहीं हैं, किंतु मेरै स्वरूपकूं प्राप्त होनैयोग्य है. यह वि चारिकेव्यासरूप धारिके, तिन्ह सिष्यनकूं उपदेसरूप अंकमैं स्थापन किया. जैसैपुरुषके अंकमैं स्थित पुष्पकूं वात उडा-वनेंविषै समर्थ नहीं, तैसै ब्रह्मनिष्ठआचार्यके उपदेसमैं स्थित पुरुषनकूं भेदवादि बहकावनैमैं समर्थ नहीं. यातैं उपदेसही अंक कहिये गोद है. फेरि व्यासभगवाननैं विचार कियाजो भेदवादि औरपुरुषनकूं आगै बी सकामकर्म रूप कंटकन-मैं भ्रमावैंगे. यातैं ऐसा उपाय होवै, जातैं आगे सिष्य भ्रमै नहीं. यह विचारिके सूत्ररूपी जालसैं वेदके वाक्यरूप वृ-छनका विभाग करि दिया.

जैसैं वनमैं दोप्रकारके वृछ होवै; सकंटक औ कंटकर-हित; तिन्हका जालसैं विभाग करि देवै; औ जालतैं पुष्प-नका कंटकसहित वृछनमैं प्रवेस होवै नहीं तैसै वेदमैं दो

प्रकारके वाक्य है. एक तौ कर्मकी स्तुति करिके कर्मविषै बहिर्मुखपुरुषकी प्रवृत्ति करावै है; औ दूसरे कर्मके फलकूं अनित्य बोधन करिके पुरुषकी निवृत्ति कराव हैं. तिन्ह वाक्यनका

वेदव्यासनै विभागकरिके सुत्रनसैं यह बोधन कियाः— जो सर्व वाक्यनका निवृत्तिमैं तात्पर्य है, प्रवृत्तिमैं किसी वाक्यका बी तात्पर्य नहीं. जो प्रवृत्तिबोधकवाक्य हैं, तिन्हका बी स्वाभाविक, औ निषिद्ध जो प्रवृत्ति हैं, तासैं निवृत्ति करिके विहितप्रवृत्तिसैं अंतःकरन सुद्ध होयके, तासैं बीनिवृत्ति होयके, ज्ञाननिष्ठपुरुष होवै. इसरीतिसैं निवृत्तिमैं तात्पर्य हैं. औ अर्थवादवाक्यनै जो कर्मका फलबोधन किया है, सो गुडजिह्वान्यायतैं किया है. फलमैं तिनका तात्पर्य नहीं. यह अर्थ सूत्रनसैं व्यासजीनै बोधन किया है. या अर्थकूं सूत्रनसैं जानिके पुरुषकी सकाम कर्ममैं प्रवृत्ति होवै नहीं. जैसै सूतका जाल पुष्पनकूं कंटकनसैं निरोध करै है; तैसै व्यासभगवानके सूत्र, सकामकर्मनसैं निरोध करै हैं; यातैं जालरूप कहे.

## दोहा.

कौतुक सिष्य उदारमति, गुरुके सरनै जाइ;
प्रश्न कियो कर जोरिके, पाद पद्म सिर नाइ. ७

# सिष्य उवाच

## दोहा.

भोभगवन मैं कोन यह, संसृति कातैं होइ.
हेतुमुक्तिको ज्ञान वा, कर्म उपासन दोइ. ८

टीकाः– हे भगवन्‌ ? मैं कोन हूं देहस्वरूप हूं अथवा देहसैं भिन्न हूं ! मैं मनुष्य हूं, औ मेरा सरीर है. यह दो प्रतीति होवै हैं, यातैं मेरैकूं संसय है. औ देहसैं भिन्न वी जो आप कहो, तौ मैं कर्त्ताभोक्ता हूं, अथवा अक्रिय हूं? जो अक्रिय कहो, तौ वी सर्वसरीरविषै एक हूं, अथवा नाना हूं ? यह प्रथमप्रश्नका अभिप्राय है. औ.

यह संसृत कहिये संसार, ताका कर्त्ता कौन हैं. याका यह अभिप्राय हैः– या संसारका कोई कर्त्ता है, अथवा आपही होवै है, जो कर्त्ता कहो तौ वी कोई जीव कर्त्ता है, अथवा ईश्वर है, जो ईस्वर कहो तौ वी एकदेसमैं सो ईस्वर स्थित है अथवा व्यापक है ? जो व्यापक है, तौ वी जैसैं व्यापक आकासतैं जीव भिन्न है, तैसे ता ईस्वरतैं जीव भिन्न है, अथवा अभिन्न है ! औ

मुक्तिका हेतु ज्ञान है अथवा कर्म है, अथवा उपासना है, अथवा दो है? जो दो कहो, तौ वी ज्ञानकर्म है, अथवा ज्ञानउपासना हैं, अथवा कर्म उपासना है.

# श्रीगुरुरुवाच.

## अर्धदोहा.

**सत चित आनंद एक तूं, ब्रह्म अजन्म असंग.**

टीकाः– प्रथम जो सिष्यनै प्रश्न किया, ताका उत्तर कहै हैंः– "तूं सत चित आनंद स्वरूप है." या कहनैतैं देहतैं भिन्न कह्या. काहेतैं देह असतरूप है. औ जडरूप है' औ दुःखरूप है; औ कर्त्ताभोक्ता बी नहीं. काहेतैं,

जाकेविषै दुःख होवै, सो दुःखकी निवृत्ति औ सुखकी प्राप्तिवास्तै क्रिया करै, सो कर्त्ता कहिये है. सो तेरेविषै दुःख है नहीं; यातैं दुःखकी निवृत्तिवास्ते क्रियाका कर्त्ता नहीं. तूं आनंदस्वरूप है, यातैं सुखकी प्राप्तिके निमित्त बी तूं क्रियाका कर्त्ता नहीं. जो कर्त्ता होवै, सोई भोक्ता होवै है. तू कर्त्ता नहीं, यातैं भोक्ता बी नहीं. पुन्यपापका जनक जो कर्म है, ताका कर्त्ता औ सुखदुःखका भोक्ता स्थूलसूछमसंघात है; तूं नहीं. तूं संघातका साछी है. याहीतैं

आत्मा एक है, नाना नहीं. जो आत्मा कर्त्ताभोक्ता होवै तब तौ नाना होवै. काहेतैं, कोई सुखी है. कोई दुःखी है. औ कर्त्ताभोक्ता एकही अंगीकार होवै तौ एकके सुख होनैतैं तथा दुःख होनैतैं, सर्वकूं सुख तथा दुःख हुवा चाहिये. यातैं भोक्ता नाना है, औ आत्मा भोक्ता है नहीं; यातैं एक है.

सांख्यके मतमैं आत्मा कर्त्ताभोक्ता अंगीकार नहीं करिके नानापुरुष जो अंगीकार किये, सो अत्यंतविरुद्ध है. काहेतें, यह सांख्यका सिद्धांत है:— सत्वरजतमगुनकी समअवस्थाका नाम प्रधान कहै हैं. सो प्रधान प्रकृति है, विकृति नहीं. विकृति नाम कार्यका है, औ प्रकृति नाम उपादानकारनका है. सो प्रधान महत्तत्त्वका उपादानकारन है; यातैं प्रकृति है, औ अनादि है, यातैं विकृति नहीं. औ महत्तत्त्व अहंकार पंचतन्मात्रा, ये सातप्रकृति, विकृति हैं. उत्तरउत्तरके प्रकृति हैं. औ पूर्व पूर्वके विकृति हैं. तन्मात्रा बी भूतनके प्रकृति हैं. इसरीतिसैं सातप्रकृति विकृति हैं. औ पंचभूत, औ दसइंद्रिय, औ मन, ये सोलहविकृति हैं; प्रकृति नहीं. औ पुरुष; प्रकृतिविकृति नहीं काहेतें, जो हेतु किसी पदार्थका होवै, तौ प्रकृति होवै; औ कार्य होवै तौ विकृति होवै, सो पुरुष किसीका हेतु नहीं. यातैं प्रकृति नहीं, औ कार्य नहीं; यातैं विकृति नहीं; यातैं पुरुष असंग है. इसरीतिसैं सांख्यमतमैं पचीसतत्त्व हैं. तत्त्व नाम पदार्थका है. सांख्यमतमैं ईश्वरका अंगीकार नहीं. स्वतंत्रप्रकृति जगतका कारन है. औ पुरुषके भोगमोछके निमित्त प्रकृतिही प्रवृत्त होवै है; पुरुष नहीं. प्रकृतिके विषयरूप परिनामतैं पुरुषनकूं भोग होवै हैं; औ बुद्धिद्वारा विवेकरूप प्रकृतिके परिनामतैं मोछ होवै है. यद्यपि पुरुष असंग है, ताकैविषै भोगमोछ बनै नहीं; तथापि ज्ञान सुखदुःख रागद्वेषसैं आदिलेके बुद्धिके परिनाम हैं. ता बुद्धिका

आत्मासैं अविवेक है. विवेक नहीं, यातैं आत्मामैं आरोपित बंधमोछ है, परमार्थसैं नहीं, अविवेकसिद्ध जो आत्मामैं भोग, तासैंही आत्माकूं सांख्यमतमैं भोक्ता कहै है. औ परमार्थसैं आत्मा भोक्ता नहीं, बुद्धिही भोक्ता है. बुद्धि, आत्मासैं भिन्न है; इस ज्ञानका नाम विवेक है. ताके अभावका नाम अविवेक है. इसरीतिसैं सांख्यमतमैं आत्मा असंगहै.

औ सुखादिक बुद्धिके परिनामै है, यातैं बुद्धिके धर्म हैं. औ आत्मा नाना है, सो वार्त्ता अत्यंतविरुद्ध है. जो सुख दुःख आत्माके धर्म होवैं, तौ सुखदुःखके प्रतिसरीर भेद होनैतैं, आत्माका भेद होवै. सो सुखदुःख आत्माके धर्म तौ है नहीं, किंतु बुद्धिके धर्म हैं. यातैं, सुखदुःखके भेदसैं बुद्धिकाही भेद सिद्ध होवै है; आत्माका भेद सिद्ध होवै नहीं. जैसैं एकही व्यापकआकासमैं नानाउपाधिके धर्म, उपाधि औ आकासके अविवेकसैं प्रतीत होवै है; तैसैं एकही व्यापकआत्मामैं नानाबुद्धिके धर्म अविवेकसैं प्रतीत होवैं है, यह वार्त्ता सांख्यमतमैं अंगीकार करनी उचित है. आत्माकूं असंग मानिके नानाअंगीकार करनै निष्फल हैं. औ कोई आत्मा मुक्त है, औरनकूं बंध है; इसरीतिसैं बंधमोछके भेदसैं जो आत्माका भेद अंगीकार करैं, सो बी बनै नहीं- काहेतैं, जो बंधमोछ आत्मामैं अंगीकार करैं तौ बंधमोछके भेदसैं आत्माका भेद सिद्ध होवै, सो बंधमोछ सांख्यमतमैं असंगआत्मामैं अंगीकार किये नहीं. किंतु, बुद्धिके अविवेकसैं बंध अंगीकार किया है, औ बुद्धि-

के अविवेकसैं बंधका मोछ अंगीकार किया है, जो वस्तु अविवेकसैं होवै, औ विवेकसैं दूरि होवै, सो वस्तु रज्जुसर्पकी न्याई मिथ्या होवै है. आत्माविषै बी बुद्धिके अविवेकसैं बंध है, औ विवेकसैं दूरि होवै है, यातैं बंध मिथ्या है. जैसैं बंध मिथ्या है, तैसै आत्माका मोछ बी मिथ्या है. जामैं बंध सत्य होवै, ताकाही मोछ सत्य होवै है. औ आत्मामैं बंधमिथ्या है, यातैं मोछ बी मिथ्याही है. इसरीतिसैं मिथ्या जो बंधमोछ सो आकासकी न्याई एकआत्मामैं बी बनै है, तिन्हके भेदसैं आत्माका भेद सिद्ध होवै नहीं, यातैं सांख्यमतमैं आत्माका भेद असंगत है. तैसैं,

न्यायमतमैं बीआत्माका भेद असंगत है, काहेतैं, यह न्यायका सिद्धांत है:— सुख, दुःख, ज्ञान, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, ज्ञानके संस्कार, संख्या, परिमान, पृथक्, संयोग, विभाग; ये चतुर्दसगुन जीवरूप आत्माविषै हैं. संख्या, परिमान, पृथक्, संयोग, विभाग, ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न; ये अष्टगुन ईस्वरमैं हैं. इतना भेद है:— ईस्वरके ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न, नित्य है; औ जीवके तीनूं अनित्य हैं. ईस्वर व्यापक है, औ नित्य है, जीव नाना है, औ संपूर्न व्यापक है, नित्य है. औ जीवका ज्ञान अनित्य है, यातैं जब ज्ञानगुन होवै, तब तौ जीवचेतन है; औ ज्ञानगुनका नास होवै, तब जडरूप रहै हैं. ईस्वरजीवकी न्याई आकास, काल, दिसा, मन, नित्य हैं, औ

पृथिवी, जल, तेज, वायुके परमानु, नित्य हैं. जो झरोखे-

मैं सूछमरज प्रतीत होवै है; ताके छठैभागका नाम परमानु है. परमानु आत्माकी न्याई नित्य हैं. और वी जातिसैं आदि लेके कितनैं पदार्थ-न्यायमतमैं नित्य हैं. वेदविरुद्धसिद्धांतका वह्नुतलिखनैका जिज्ञासूकूं उपयोग नहीं; यातैं लिखे नहीं. "मैंमनुष्य हूं,ब्राह्मन हूं" ऐसी जो देहविषै आत्म भ्रांति; तासैं रागद्वेष होवै हैं. ता रागद्वेषतैं धर्मअधर्मके निमित्त प्रवृत्त होवै है. तिन्हतैं सरीरके संबंधद्वारा सुखदुःख होवै है. इसरीतिसैं न्यायमतमैं आत्माकूं संसारका हेतुभ्रांतिज्ञान है.

सो भ्रांतिज्ञान तत्त्वज्ञानसैं दूरि होवै है. देहादिक संपूर्न पदार्थनसैं "आत्मा भिन्न है; या निश्चयका नाम तत्त्वज्ञान है. ता तत्त्वज्ञानसैं "मैं ब्राह्मण हूं, मनुष्य हूं," यह भ्रांति दूरि होवै हैं. भ्रांतिके नासतैं रागद्वेषका अभाव होवै है; तिन्हके अभावतैं धर्मअधर्मके निमित्त प्रवृत्तिका अभाव होवै हैं, प्रवृत्तिके अभावतैं सरीरसंबंधरूप जन्मका अभाव होवै है, औ प्रारब्धका भोगतैं नास होवै है. सरीरसंबंध-के अभावतैं इकीसदुःखका नासहोवै है. सो दुःखका ना-सरूपही न्यायमतमैं मोछ है. एक सरीर औ श्रोत्र त्वकू-नेत्र, रसना, घ्रान, मन; ये षटइंद्रियके विषय औ षटइं-द्रियके विषय, औ षटइंद्रियके ज्ञान, औ सुख, दुःख, ये इकीसदुःख हैं, सरीरादिक वी दुःखके जनक हैं, यातैं दुःख कहिये हैं. औ स्वर्गादिकनका सुख वी नासके भयतैं दुः-खका हेतु है; यातैं दुःख कहिये हैं.

यद्यपि न्यायमतमैं श्रोत्र मन नित्य हैं, तिन्हका नास बनै

नहीं; तथापि जिसरूपकरिके श्रोत्र मन दुःखके हेतु हैं; तिसरू-पका नास होवै है. पदार्थनके ज्ञानकी उत्पत्ति करिके दुःखके हेतु हैं. सो पदार्थनका ज्ञान मोछकालमैं श्रोत्र औ मन करै नहीं. काहैतें, जो कर्नगोलकमैं स्थित आकास है, सो श्रोत्र कहिये हैं. ता कर्नगोलकका मोछकालमैं अभाव है. यातैं आकासरूप श्रोत्र इंद्रिय है बी, परंतु गोलकके अभावतैं ज्ञान होवै नहीं. इसरीतिसैं ज्ञानका जनक जो श्रोत्र इंद्रियका स्वरूप, सोई दुःख है; औ ताका ही नास होवै है. औ

आत्माके साथि मनके संयोगतैं ज्ञान होवै है. सो मनका संयोग न्यायसिद्धांतमैं एककी क्रियातैं अथवा दोकी क्रियातैं होवै हैं. जैसैं बाजवृछका संयोग एकबाजकी क्रियातैं होवै है, औ दोमेषनका संयोग दोकी क्रियातैं होवै है; तैसैं विभूआत्मामैं तौ क्रिया कदे बी होवै नहीं. औ मोछकालमैं मनमैं बी क्रिया होवै नहीं. यातैं संयोगवानमनकाही मोछकालमैं अभाव होवै हैं. और

कोई एकदेसी त्वचाके साथ मनके संयोगकूं ज्ञानका हेतु कहै है; आत्माके संयोगकूं नहीं. सुषुप्तिमैं पुरीतत नाम नाडीविषे मन प्रवेश करैहै. त्वचासैं मनका संयोग है नहीं. यातैं सुषुप्तिमै ज्ञान होवै नहीं. तिन्हके मतमैं त्वचासैं संयोगवाला मनही ज्ञानद्वारा दुःखका हेतु होनैतैं दुःख है; केवल मन नहीं. मोछमैं त्वचाके नास होनैतैं ताके साथि संयोग है नहीं; यातैं ज्ञान होवै नहीं. मोछकालमैं मन है बी परंतु दुःखका हेतु जो ज्ञानका जनक त्वचासैं संयोगवाला मन-

ताका संयोगके नासतैं नास होवै है. इसरीतिसैं मोछकालमैं परमात्मासैं भिन्नही दु:खरहित होयके, व्यापकआत्मा जलरूप स्थित होवै है. काहेतैं, ज्ञानगुनतैं आत्माका प्रकास होवै है. सो जीवका ज्ञान संपूर्न इंद्रियजन्यही है; नित्य है नहीं. ता इंद्रियजन्य ज्ञानका मोछकालमैं नास होवै है, यातैं प्रकासरहित जडरूप होयके आत्मा मोछकालमैं स्थित होवै है; यह न्यायका सिद्धांत है औ

न्यायमतमैं पूर्वउक्तप्रकारसैं सुखदुःख औ बंधमोछ आत्माकूं होवै हैं, यातैं आत्मा नाना हैं, औ संपूर्न व्यापक है. सर्वअल्पपदार्थनसैं जो संयोग, सोई न्यायमतमैं व्यापकका लछन है. औ सजातीय, विजातीय, स्वगतभेदका अभाव, व्यापकका लछन नहीं. काहेतैं, न्यायमतमैं यद्यपि आत्मा निरवयव है, यातैं स्वगतभेदका तौ ताकेविषै अभाव है बी, परंतु सजातीय, औ विजातीयके भेदका अभाव नहीं, किंतु सजातीय जो दूसरा आत्मा, ताका भेद आत्मामैं है. औ विजातीयघटादिकनका भेद बी आत्मामैं है. यातैं सजातीय, विजातीय, स्वगतभेदका अभाव व्यापकका लछन नहीं; किंतु सर्व अल्पपदार्थनसैं संयोगही व्यापकका लछन है.

याकेविषै कोई संका करै है:—न्यायमतमैं आत्माकी न्याई आकास, काल, दिसा बी व्यापक हैं. औ परमानु सूछम हैं, निरवयव हैं; तिनसैं सर्व व्यापकपदार्थनका

संयोग बनै नहीं. काहेतैं, जो परमानु सावयव होवैं, तब तौ किसीदेसमैं आत्माका संयोग होवै, औ किसीदेसमैं अन्यव्यापकपदार्थनका संयोग होवै. सो परमानु सावयव हैं नहीं; किंतु निरवयव हैं; औ अतिसूक्ष्म है, तिन्हके साथि एकही देसमैं सर्व व्यापकपदार्थनका संयोग होवैगा; सो बनै नहीं. काहेतैं, जो एकके संयोगसैं स्थान निरुद्ध है; ता देसमैं अन्यपदार्थका संयोग बनै नहीं. यातैं नानापदार्थनकूं व्यापकता बनै नहीं; एकही कोईपदार्थ व्यापक बनै है.

यह संका बनै नहीं. काहेतैं, जो सावयववस्तुका संयोग है, सो तौ अन्यके संयोगका विरोधी है. जैसे जा पृथिवीदेसमैं हस्तका संयोग होवै, ता देसमैं पादका संयोग होवै नहीं औ निरवयवका संयोग, स्थानकूं रोकै नहीं, यातैं अन्यके संयोगका विरोधी नहीं. यह वार्त्ता अनुभवसिद्ध है. जैसें घटके जा देसमैं आकासका संयोग है; ता देसमैंही कालका औ दिसाका संयोग बी है. जो कोई घटका देस, आकास काल, दिसासै बाहिर होवै; तौ ता देसमैं आकास काल दिसाका संयोग होवै नहीं; सो बाहिर तौ कोई देस है नहीं, किंतु सर्वपदार्थनके सर्वदेस आकास, काल, दिसामैंही हैं. यातैं सर्वपदार्थनके सर्वदेसनविषै आकास, काल, दिसाका संयोग हैं. इसरीतिसैं परमानुविषै बी एकही देसमैं नानानिरवयवविभुका संयोग बनै है; कोई दोष नहीं; यातैं आत्मा नाना है; औ संपूर्न व्यापक है.

सर्वका सर्वपदार्थनसैं संयोग है; यह न्यायका सिद्धांत है;

सो समीचीन नहीं. काहेतैं, जो व्यापक आत्मा नाना अंगीकार करैं, तौ सर्वसरीरमैं सर्वआत्माका संबंध अंगीकार करना होवैगा. यातैं कौनसरीर किसका है, यह निश्चय नहीं होवैगा. किंतु एकएक आत्माके सर्वसरीर हुये चाहिये. जो ऐसै कहैः— जाके कर्मसैं जो सरीर उत्पन्न हुवा है, ता आत्माका सो सरीर है; सो बी बनै नहीं. काहेतैं, कर्म, जा सरीरसैं होवै है, ता कर्म करनैवाले पूर्वसरीरमै बी सर्वआत्माका संबंध है, यातैं कर्म बी सर्व आत्माकेही होवैंगे; एकके नहीं. और ऐसै कहैः— जा आत्माके मनसहित सरीर हैं, ता आत्माका सो सरीर है. सो बी बनै नहीं. काहेतैं, सरीरकी न्याई मनके साथ बी सर्व आत्माका संबंध है. ताकेविषै यह निश्चय होवै नहीं; जो कौनसा मन किस आत्माका है; किंतु सर्व आत्माके सर्व मन हुए चाहिये. तैसै इंद्रिय बी सर्व आत्माके सर्वही होवैंगे. बाहरिके पदार्थनविषै यह मेरा है. "यह औरका है" ऐसा व्यवहार बी सरीरनिमित्तक है. सो सरीर सर्व आत्माके सर्व हैं,यातैं बाहरिके पदार्थ बी सर्व आत्माके सर्व हूए चाहिये. और

जो ऐसैं कहैः— जा आत्माकूं जा सरीरमैं अहंबुद्धि औ ममबुद्धि होवै; ता आत्माका सो सरीर है. सो अहंबुद्धि औ ममबुद्धि एक है; यातैं सर्व आत्मामैं रहै नहीं. किंतु एकधर्म एकही धर्मीविषै रहै है. यातैं एकही आत्माका सरीर है. जा आत्माका जो सरीर है, ता सरीरके संबंधी मनइंद्रिय औ बाहरिके पदार्थ ता आत्माके हैं. यातैं

व्यापक नानाआत्मा अंगीकार करनैमैं बी दोष नहीं. सो वार्त्ता बी बनै नहीं. काहेतैं, यद्यपि अहंबुद्धि एकदेहमैं एकही आत्माकूं होवै है, तथापि सो न्यायमतमैं बनै नहीं. किंतु सर्व आत्माकूं एकदेहमैं अहंबुद्धि हुई चाहिये. काहेतैं, न्यायमतमैं बुद्धि नाम ज्ञानका है. सो ज्ञान आत्मा औ मनके संयोगतैं होवै है. सो मनके साथि संयोग सर्वआत्माका है. यातैं मनके संयोगसैं जैसै एक देहमैं एक आत्माकूं अहंबुद्धि होवै है; तैसै एक देहमैं सर्व आत्माकूं अहंबुद्धि हुई चाहिये. जो ऐसैं कहैः— यद्यपि मनका संयोग तौ सर्व आत्मासैं है; तथापि जा आत्मामैं ज्ञानका जनक अदृष्ट है; ता आत्माकूंही अहंबुद्धि होवै है, तौ बी सर्वकूंही ज्ञान हुवा चाहिये. काहेतैं; जो व्यापक नानाआत्मा अंगीकार करैं, तौ एकसरीरकी सुभअसुभक्रियातैं, सरीरमैं स्थित सर्व आत्मामैंही अदृष्ट हुये चाहिये; यह वार्त्ता पूर्व कही आये. यातैं व्यापक जो नानाआत्मा अंगीकार करैं, तौ एक देहमैं सर्वकूं सुखदुःखका भोग हुया चाहिये, यातैं व्यापक नानाकर्त्ताभोक्ता आत्मा है; यह न्यायका सिद्धांत समीचीन नहीं. औ

हमारे सिद्धांतमैं तौ कर्त्ताभोक्ता अंतःकरन है, सो अंतःकरन नाना हैं, व्यापक औ अनु नहीं; किंतु सरीरके समान ता अंतःकरनका परिमान है. दीपकके प्रकासकी न्याई बडे सरीरकूं प्राप्ति होवै, तब अंतःकरनका विकास होवै है, औ न्यूनसरीरमैं संकोच होवै है. यह वार्त्ता सिद्धांतबिंदु-

के व्याख्यानमैं मधुसूदनस्वामीनैं प्रतिपादन करी है. जा अंतःकरनका जा सरीसैं संबंधहै; ता अंतःकरनकूं ता सरीरसैं भोग होवै है.

जो अंतःकरनकूं व्यापक अंगीकार करैं, तौ सर्वसरीर सर्वके होवै; औ भोग बी सर्वकूं होवैं; सो व्यापक अंतःकरन नहीं, यातैं दोष नहीं. औ अंतःकरनकूं अनु अंगीकार करैं, तौ सरीरके एकदेसमैं अंतःकरन रहै है; ऐसा अंगीकार करना होवैगा, सो वार्त्ता बनै नहीं. काहेतैं, जो एककालमैंही पाद औ मस्तकमैं कंटकवेध होवै, तौ दोनूंस्थानमैं एकही कालमैं पीडा होवै है; सो नहीं हुई चाहिये. काहेतैं, जो अंतःकरन अनु होवै, तौ एकहीस्थानमैं एककालमैं रहै. यातैं जा स्थानमैं अंतःकरन होवै, ता स्थानमैंही पीडा हुई चाहिये; दोनूंस्थानमैं नहीं. यातैं अंतःकरन अनु औ व्यापक नहीं; किंतु सरीरके समान है. यातै, कोई दोष नहीं. अनु औ व्यापकसैं विलछन जो है; ताकूंही मध्यमपरिमान कहै हैं. औ

न्यायमतमैं किसी नवीननैं ऐसा अंगीकार किया है:- आत्मा नाना है, कर्ताभोक्ता है, व्यापक नहीं, यातैं भोगका संकर नहीं. अनु बी नहीं, यातैं दोस्थानमैं पीडाका असंभव बी नहीं. किंतु जैसै वेदांतमतमैं अंतःकरन मध्यमपरिमान है; तैसै आत्मा बी मंध्यमपरिमान है. ताकेविषै चतुर्दसगुन रहै है.

सो बी समीचीन नहीं. काहेतैं, जो आत्माकूं संकोच-

विकासवाला अंगीकार करैं, तौ दीपकी-प्रभाकी न्याई आत्मा विकारी, औ विनासवाला होवैगा. यातैं मोछप्रतिपादकशास्त्र औ साधन निष्फल होवैंगे. औ मध्यमपरिमान अंगीकारकरिके संकोचविकास अंगीकार नहीं करै, तौ कौनसैं सरीरके समान आत्माकूं अंगीकार करैं, यह निश्चै होवै नहीं. जो मनुष्यसरीरके समान अंगीकार करैं; तौ जब आत्मा हस्तीके सरीरकूं प्राप्त होवै, तब सर्व सरीरमैं आत्मा नहीं होवैगा. यातैं जा देसमैं हस्तीके आत्मा नहीं है, ता देसमैं पीडा नहीं हुई चाहिये. औ हस्तीके सरीरके समान अंगीकार करैं, तौ तासैं और सरीर बडे हैं, तिन्हके एकदेसमैं पीडा नहीं हुई चाहिये. औ सर्वसैं बडा किसीकासरीर है नहीं, जाके समान आत्मा अंगीकार करैं. औ सर्वसैं बडा विराटका सरीर है, ताके समान जो आत्मा अंगीकार करैं, तौ विराटके सरीरके अंतर्भूत सर्व सरीर हैं. यातैं सर्वआत्माका सर्व सरीरसैं संबंध होवैगा; ताकेविषै पूर्वदोष कहेही हैं. औ यह नियम है:— जो मध्यमपरिमानवस्तु होवै, सो सरीरकी न्याई अनित्य होवै है, यातैं आत्मा बी अनित्य होवैगा. औ अंतःकरनका तौ हमारेमतमैं ज्ञानतैं नास होवै है; यातैं अनित्य है. मध्यमपरिमान अंगीकार कीयेसैं दोष नहीं. इसरीतिसैं नवीनतार्किकका मत बी समीचीन नहीं. औ

जो कोई ऐसै कहै:— "आत्मा नाना हैं, औ अनु हैं, सो वार्त्ता बी बनै नहीं. काहेतैं, जो आत्माकूं कर्ताभोक्ता अंगीकार करैं, तौ अंतःकरनके अनुपक्षमैं जो दोष कह्या. सो दो-

ष होवैगा. औ कर्त्ताभोक्ता अंगीकार नहीं करैं तौ नानाआ-त्मा अंगीकार निष्फल होवैंगे. एकही व्यापक सर्वसरीरमैं अंगीकार करना योग्य है. औ कर्त्ताभोक्ता अंगीकार नहीं करैं तौ अपनै सिद्धांतका वी त्याग होवैगा. काहेतें अनुवादी-का यह सिद्धांत हैः— ज्ञान सुख दुःख धर्मसैं आदिलेके आत्माके धर्म हैं, यातैं जो आत्माकूं अनु अंगीकार करैं, तौ जा सरीरदेसमैं आत्मा नहींहै, सो देस मृतसमान है; ताके-विषै पीडादिक नहीं हुई चाहिये.

और जो ऐसैं कहैंः—यद्यपि आत्मा तौ सरीरके एकदेसमैं है; परंतु कस्तुरीके गंधकी न्याई ताका ज्ञान सारे सरीरमैं व्याप्त है. यातैं सर्वसरीरविषै अनुकूलप्रतिकूलकेसंबंधकूं अ-नुभव करै है.

सो वी वनै नहीं. काहेतें यह नियम हैः— जितनै देसमैं-गुनवाला रहै, तासैं वाहरि गुन रहै नहीं; किंतु गुनीमैंही गुन रहै है. जैसै रूप, घटादिकनतैं वाहरि रहै नहीं; तैसै आ-त्मासैं वाहरि ज्ञान वी वनै नहीं. औ कस्तुरीके सूछमभाग जितनै देसमैं व्याप्त होवैं, उतनै देसमैंही गंध व्याप्त होवै है; यातैं कस्तुरीका दृष्टांत वी वनै नहीं. "यातैं आत्माअनु है" यह प्रछ वी वनै नहीं. औ

कहूं श्रुतिमैं आत्मा अत्यंतअनुसैं वी अनु जो कह्या है, सो दुर्विज्ञेय है, यातैं कह्या है. जैसै अत्यंतअनुवस्तुका मंद-दृष्टिपुरुषकूं ज्ञान होवै नहीं, तैसैं बहिर्मुखपुरुषकूं आत्माका वी ज्ञान होवै नहीं, यातैं अनुके समान है; यह श्रुतिका

अभिप्राय है; औ "आत्मा अनु है" यह अभिप्राय नहीं. काहेतें, बहुतस्थानमैं व्यापकरूप आपही वेदनै प्रतिपादन किया है; यातें अनु नहीं. इसरीतिसैं "व्यापक तथा मध्यमपरिमान अथवा अनु आत्मा नाना हैं," यह कहना-संभवै नहीं.

परिसेषतें एक व्यापक आत्मा है. ताकेविषै धर्मअधर्मसुख दुःख औ बंधमोछ जो अंगीकार करैं; तौ किसीकूं सुख औ किसीकूं दुःख, किसीकूं बंध, किसीकूं मोछ, ऐसा व्यवहार नहीं होवैगा. यातें धर्मादिकबुद्धिके धर्म है. यद्यपिबुद्धि जड है, यातें ताकेविषै बी धर्मसुखादिक बनै नहीं; तथापि आत्माके धर्म नहीं हैं; इस अभिप्रायतें बुद्धिके धर्म कहिये हैं. औ "बुद्धिके धर्म हैं," याकेविषै अभिप्राय नहीं. बुद्धि औ सुखादिक आत्मामैं अध्यस्त हैं. जो वस्तु जामैं अध्यस्त होवै सो तामैं परमार्थसैं होवै नहीं. जैसे सर्प रज्जुमैं अध्यस्त है, सो परमार्थसैं रज्जुमैं है नहीं. तैसैं बुद्धि औ सुखादिक आत्मामैं है नहीं. औ अध्यस्तवस्तु बी किसीका आश्रय होवै नहीं; यातें बुद्धि बी सुखादिकनका आश्रय है नहीं. परंतु अज्ञान तौ सुद्धचेतनमैं अध्यस्त है, औ अंतःकरन अज्ञानउपहितमैं अध्यस्त है, औ अंतःकरनउपहितमैं धर्मअधर्म सुखदुःख बंधमोछ, अध्यस्त हैं. इसरीतिसैं आत्मामैं धर्मादिकनके अधिष्ठानपनैका अंतःकरन उपाधि है, यातें अंतःकरनकूं धर्म कहियेहैं.

जो अंतःकरनविसिष्टमैं धर्मादिक अध्यस्त कहै, तौ बनै

नहीं. काहेतैं, विसेषनयुक्तका नाम विसिष्ट है. धर्मादिक अध्यासका अधिष्ठान जो आत्मा, ताका अंतःकरन जो विसेषन अंगीकार करै, तौ अंतःकरन बी धर्मसुखादिकनका अधिष्ठान होवैगा. सो वार्ता बनै नहीं. काहेतै, मिथ्यावस्तु अधिष्ठान होवै नहीं. यातैं आत्मामै धर्मादिकनके अध्यासका अंतःकरन विसेषन नहीं; किंतु उपाधि है. उपाधिका यह स्वभाव हैः— आप तटस्थ होयके जितनै देसमैं आप होवै, उतनै देसमैं स्थित वस्तुकूं जनावै. औ विसेषनका यह स्वभाव हैः— जितनै देसमैं आप होवै, उतनै देसमैं स्थित वस्तुकूं अपनै सहित जनावै. विसेषनवानकूं विसिष्ट कहै हैं; औ उपाधिवालेकूं उपहित कहै हैं. इसरीतिसैं अंतःकरनविसिष्टमैं जो धर्मादि अध्यस्त कहै, तौ जितनै देसमैं अंतःकरन हैं, ता देसमैं स्थित चेतनभाग औ अंतःकरन दोनूंवांकूं अधिष्ठानता होवै, सो अंतःकरन आप बी अध्यस्त है, यातैं अधिष्ठान बनै नहीं. इस अभिप्रायतैं अंतःकरनउपहितमैं धर्मादिक अध्यस्त कहे. यातैं "जितनै देसमैं अंतःकरन हैं, उतनै देसमैं स्थित चेतनभागमात्रमैं अधिष्ठानता है; अंतःकरनमैं नहीं." यह वार्त्ता बनै है. तैसै,

अंतःकरन बी अज्ञानउपहितमैं अध्यस्त है; अज्ञातविसिष्टमैं नहीं. इसरीतिसैं अध्यस्त जो धर्मादिक, तिन्हका अधिष्ठान आत्मा है. अध्यासके अंधिष्ठानपनेकी अंतःकरन उपाधि है. यातैं बुद्धिके धर्म कहे हैं. औ अविवेकसैं अंतःकरन आत्मा दोनूंवांविषै प्रतीति होवै है. यातैं अंतःकरनवि-

सिष्ट जो प्रमाता, ताके धर्म कहै हैं. धर्मादिक अंतःकरन-के धर्म होंवैं, अथवा अंतःकरनविसिष्टप्रमाताके धर्म होंवैं, अथवा रज्जुसर्प, स्वप्नके पदार्थ, गंधर्वनगर, नभनीलताकी न्याई किसीके धर्म ना होंवै; सर्वप्रकारसैं आत्माके धर्म न-हीं. यद्यपि आत्मामैं अध्यस्त है, तथापि जो वस्तु जामैं अध्यस्त होंवै सो ताहीमैं परमार्थसैं होंवै नहीं. अध्यस्त नाम कल्पितका है. यातैं रागद्वेष, धर्मअधर्म, सुखदुःख, बंधमोछ-सैं रहित एक व्यापक आत्मा है. सो

आत्मा सत है. जा वस्तुका ज्ञानसैं अभाव होंवै, सो अ-सत कहिये है. जाकी निवृत्ति किसी कालमैं बी नहीं होंवै, सो सत कहिये है. सर्वपदार्थनका औ तिनकी निवृत्तिका आत्मा अधिष्ठान है, जो आत्माकी निवृत्ति होंवै, तौ ताका औरअधिष्ठान कह्या चाहिये. काहेतैं, सून्यमैं निवृत्ति होंवै नहीं. जो आत्मा औ ताकी निवृत्तिका अन्यअधिष्ठान अंगीकार करैं, तौ ताका औरअधिष्ठान अंगीकार क-रना होंवैगा. इसरीतिसैं अन्यअवस्था होंवैगी. और आत्माकी जो निवृत्ति अंगीकार करैं, ताकूं यह पूछै हैं:— जो आत्मा-की निवृत्ति किसीनैं अनुभव करी है, अथवा नहीं? जो ऐसैं कहै, अनुभव करी है. सो बनै नहीं. काहेतैं, जो अनुभव करनैवाला है, सोई आत्मा है. औ अपना स्वरूप है, ताकी निवृत्तिका अनुभव अपनैमस्तक छेदनके अनुभवसमान है, यातैं आत्माकी निवृत्तिका अनुभव बनै नहीं. औ ऐसै कहैं जोः— आत्माकी निवृत्ति तौ होंवै है, परंतु ताकी निवृत्तिका

अनुभव किसीकूं नहीं. तौ यह वार्ता सिद्ध हुई, जो आत्माकी निवृत्ति तौ होवै नहीं. काहेतें, जो वस्तु किसीनैं अनुभव नहीं करी, सो वंध्यापुत्रके समान होवै है. यातैं आत्माकी निवृत्ति होवै नहीं, याहीतैं आत्मा सत है. औ

आत्मा चित् है. प्रकासरूप जो ज्ञान, सो चित् कहियेहै जो अप्रकासरूप आत्मा अंगीकार करैं, तौ अनात्मजडवस्तुका प्रकास कदे होवै नहीं. जो अंतःकरन औ इंद्रियनसैं पदार्थनका प्रकास कहैं, तौ बनै नहीं. काहेतैं, अंतःकरन औ इंद्रिय परिछिन्न है, यातैं कार्य हैं. जो परिछिन्न होवै, सौ घटकी न्याईं कार्य होवै है. औ अंतःकरन इंद्रिय बी परिछिन्न हैं; यातैं कार्य हैं. देसकालतैं जाका अंत होवै, सो परिछिन्न कहिये है. जो कार्य होवै सो जड होवै है. यातैं अंतःकरन औ इंद्रिय बी जड हैं. तिनतैं किसीवस्तुका प्रकास बनै नहीं. यातैं जो आत्मा सर्वका प्रकास करै है, सो प्रकासरूप है. और

जो ऐसै कहैं:— आत्मा प्रकासरूप, नहीं, किंतु आत्मा तौ जड है; औ ताकेविषे ज्ञानगुन है; ता ज्ञानतैं आत्मा औ अनात्माका प्रकास होवै है. ताकूं यह पूछे हैं:— आत्माका ज्ञानगुन नित्य है, अथवा अनित्य है ? जो नित्य कहैं, तौ आत्माका स्वरूपही ज्ञान सिद्ध होवैगा. काहेतें, यह नियम है:— जो आत्मासैंभिन्न होवै, सो अनित्य होवै है. जो ज्ञानकूं आत्मासैं भिन्न अंगीकार करैं, तौ अनित्यही होवैगा. यातैं नित्य मानिके आत्मासैं भिन्न ज्ञान है, यह कहना बनै

नहीं. औ अनित्य अंगीकार करैं, तौ घटादिकनकी न्याई जड होवैगा. जो अनित्यवस्तु होवै, सो जड होवै है. यातैं "ज्ञान अनित्य है," यह कहना बनै नहीं. किंतु ज्ञान नित्यही है. सो नित्यज्ञान आत्मस्वरूपही है. जो अनित्य अंगीकार करैं, तौ कदाचित् आत्मामैं ज्ञान होवै, औ कदाचित् नहीं, यातैं आत्मासैं भिन्न वी ज्ञान होवै; औ नित्य अंगीकार कियेसैं तौ भिन्न होवै नहीं. जो गुन होवै सो गुनवानविषै कदाचित रहै; औ कदाचित नहीं वी रहै. जैसैं वस्त्रका नीलपीत गुन कदाचित रहै, औ कदाचित नहीं रहै. यातैं जो गुन होवै, सो आगमापायी होवै है. औ ज्ञानकूं नित्यता होनेतैं, आगमापायी है नहीं, यातैं आत्माका स्वरूपही ज्ञान है. औ

ज्ञानकूं अनित्य कहैं, तौ इंद्रिय अथवा अंतःकरनसैं ज्ञान उत्पन्न होवै है, यह कहना होवैगा. सो बनै नहीं. काहेतैं, सुषुप्तिमैं इंद्रियादिक तौ हैं नहीं, औ सुखका ज्ञान होवै है; सो नहीं हुवा चाहिये. जो सुषुप्तिमैं सुखका ज्ञान अंगीकार नहीं करैं, तौ जागिके " मैं सुखसैं सोया " यह सुषुप्तिके सुखकी स्मृति होवै है; सो नहीं हुई चाहिये. जा वस्तुका पूर्वज्ञान होवै, ताकी स्मृति होवै है; औ अज्ञातवस्तुकी स्मृती होवै नहीं. औ सुषुप्तिके सुखकी जागिके स्मृति होवै है. यातैं सुषुप्तिमैं सुखका ज्ञान होवै है. ता ज्ञानके जनक इंद्रियादिक सुषुप्तिमैं हैं नहीं; यातैं नित्य है. ज्ञानकूं त्यागिके आत्मा कदै बी रहै नहि. यातैं ज्ञान आत्माका स्वरूप है. जैसैं उ-

स्नताकूं त्यागिकें अग्नि कदे बी रहै नहीं; यातें उस्नता व न्हिका स्वरूप है. तैसै ज्ञान वी आत्माका स्वरूप है. जो आगमापायी होवै, सो गुन होवैहै. उस्नता औ ज्ञान आगमापायी हैं नहीं, यातें अग्नि औ आत्माके स्वरूप हैं. जो वस्तु कदाचित होवै, औ कदाचित न होवै, सो आगमापायी कहिये हैं.

उत्पत्ति औ विनास अंतःकरनकी वृत्तिके होवै हैं, ज्ञानके नहीं. आत्मस्वरूप जो ज्ञान हैं, सो विसेषव्यवहार का हेतु नहीं; किंतु ज्ञानसहितवृत्ति अथवा वृत्तिमैं आरूढ ज्ञान, व्यवहारका हेतु है. यह अवछेद वादकी रीति है. औ आभासवादमैं आभाससहितवृत्तिसैं व्यवहार होवै है. आभासद्वारा अथवा साछातवृत्तिद्वारा आत्मस्वरूपज्ञानसैं ही सर्वव्यवहार सिद्ध होवै है; नहीं तौ होवै नहीं. इसरीतिसैं सर्वका प्रकासक ज्ञानस्वरूप आत्मा है; यातें चित् है. औ

आत्मा आनंदरूप है. जो आत्माआनंदरूप नहीं होवै, तौ विषयसंबंधसैं स्वरूपआनंदका भान होवै है, सो नहीं हुया चाहिये. विषयमैं आनंद नहीं, यह वार्त्ता पूर्व कही है. जो विषयमैं आनंद होवै, तौ जा विषयतैं एकपुरुषकूं सुख होवै, तासैंही अन्यकूं दुःख होवै है. जैसै अग्निके स्पर्सतैं अग्निकीटकूं, औ सर्पसिंहके रूप देखनेतैं सर्पनी सिंहनीकूं आनंद होवै है; औ अन्यपुरुषनकूं दुःख होवै है; सो नहीं हुया चाहिये. औ सिद्धांतमैं तौ अग्निकीटकूं अग्निस्पर्सकी

इच्छा होवै, तब चंचलबुद्धिमें स्वरूपआनंदका भान होवै नहीं. अग्निसंबंधतें छनमात्र इच्छा दूरि होयके निश्चलबुद्धिमें स्वरूपआनंदका भान होवै है. अन्यपुरुषनकूं अग्निसंबंधकी इच्छा है नहीं; किंतु अन्यपदार्थनकी इच्छा है. तिन पदार्थनकी इच्छा अग्निसंबंधसें दूरि होवै नहीं. यातें चंचलअंतःकरनमें अग्निसंबंधसें आनंद होवै नहीं. याकेविषै.

यह संका होवै हैः— जो इच्छारूप अंतःकरनकी वृत्ति है, सो तौ विषयप्राप्तिसें नासकूं प्राप्त होय गई, औ अन्यवृत्तिका कोई निमित्त है नहीं; यातें उत्पत्ति हुई नहीं. औ वृत्तिसें विना स्वरूपआनंदका भान होवै नहीं; यातें विषयमैंही आनंद है.

सो संका बनै नहीं. काहेतें, यद्यपि इच्छारूप तौ अंतःकरनकी वृत्तिका अभाव है, सो इच्छारूप वृत्ति होवै तौ बी ताकेविषै आनंद प्रकास होवै नहीं. काहेतें इच्छारूप वृत्ति राजस है, औ आनंदका प्रकास सात्विकवृत्तिमें होवै है. तथापि वांछितपदार्थ जो मिल्या है, ताके स्वरूपकूं विषय करनेवास्ते जो ज्ञानरूप अंतःकरनकी वृत्ति है, सो सात्विक है. काहेतें, सत्वगुनसें ज्ञान होवै है, यह नियम है. ता सात्विकवृत्तिमें आनंदका भान होवै है, परंतु सो ज्ञानरूप वृत्ति बहिर्मुख है. ताके पृष्ठभागमें स्थित जो अंतःकरन उपहितचेतनस्वरूपआनंद, ताका तिस वृत्तिसें ग्रहण होवै नहीं; यातें विषयउपहितचेतनरूप आनंदका भान होवै है. सो विषयउपहितचेतन आत्मासें भिन्न नहीं. यातें आ-

त्मानंदकाही विषयमैं भान कहिये है. ता ज्ञानरूप वृत्तिविषै विषयके साथि नेत्रादिकनका संबंधही निमित्त है. अथवा.

ज्ञानरूप जो बहिर्मुखवृत्ति,तासैं अन्यअंतर्मुखवृत्ति होवै है. ताकेविषै अंतःकरनउपहितचेतनरूप आनंदकाही भान होवै है; यह उत्तमसिद्धांत है. ता वृत्तिकी उत्पत्तिमैं इच्छादिकनका अभावही निमित्त है. जैसै इच्छादिकनतैं रहित जो एकांतमैं उदासीनपुरुष स्थित है, ताकूं बहिर्मुखज्ञानरूपतैं कोई वृत्ति होवै नहीं; आनंदका भान होवै है. यातैं इच्छादिकनके अभावरूप निमित्ततैं अंतर्मुखवृत्ति आनंद ग्रहन करनेवाली होवै है. तासैं वांछितविषयके लाभसैं इच्छादिकनका अभाव होनेतैं ज्ञानसैं अनंतर अंतर्मुखवृत्ति होवै हैं. तिसतैं अंतःकरन उपहितआनंदकाही ग्रहन होवै है. सो स्वरूपआनंदका ग्रहन औ विषयका ज्ञान अत्यंतव्यवहित है. यातैं पुरुषकूं ऐसी भ्रांति होवै है:—"मैंनै विषयमैं आनंद अनुभव किया है." प्रथमपछसैं यह पछ उत्तम है. काहेतैं जो विषयका ज्ञानरूप वृत्ति है; तासैं अंतःकरनउपहितआनंदका तौ भान बनै नहीं.. यातैं विषय उपहितआनंदका भान होवैगा, तौ मार्गमैं वृछका जो ज्ञानरूप वृत्ति है सो बी सात्विक है; तासैं बी वृछउपहितचेतनस्वरूपआनंदका भान हुवा चाहिये. तैसै सर्वज्ञानसैं ज्ञेयउपहितचेतनरूप आनंदका भान हुवा चाहिये. यातैं अनात्मवस्तुका ज्ञानरूप जो बहिर्मुखवृत्ति, तासैं ज्ञेयउपहितचेतनस्वरूपआ-

नंदका महन होवै नहीं. इसरीतिसे विषयके संबंधसैं आत्म स्वरूपानंदका भान होवै है. जो आत्मा आनंदरूप नहीं होवै, तौ विषयसंबंधसैं आनंदका भान बनै नहीं. यातैं आत्मा आनंदरूप है. औ

आत्माका संबंधी जो वस्तु है, ताकेविषै प्रेम होवैहै. तासैं सन्निहितमैं अधिकप्रेम होवै है. इसरीतिसैं बाहिरबाहिरके पदार्थनकी अपेछातैं अंतरअंतरके पदार्थनमैं अधिकप्रीति है. परंपरातैं आत्माका संबंधी जो पुत्रका मित्रतामैं प्रीति होवैहै. पुत्रके मित्रकीअपेछातैं पुत्रमैं अधिकप्रीति है,औ पुत्रसैं बी स्थूलसूछमसरीरमैं अधिकप्रीतिहैं. औ स्थूलसूछम सरीरमैं बी स्थूलतैं सूछममैं अधिक प्रीति है. पूर्वपूर्वसैं उत्तर-उत्तर आत्माके समीप हैं. आत्माका आभास सूछमसरीरमैं है; औरमैं नहीं. यातैं आभासद्वारा आत्माका सूछमसरीरसैं संबंध है, औरसैं नहीं. स्थूलसरीरसैं सूछमसरीरका संबंध है. यातैं, स्थूलसरीरसैं सूछमसरीरद्वारा आत्माका संबंध है. औ पुत्रसैं स्थूलसरीरद्वारा संबंध है. औ पुत्रके मित्रसैं पुत्रद्वारा संबंध है इसरीतिसैं उत्तरउत्तर जो आत्माके समीप, ताकेविषै अधिकप्रीति है. जा आत्माके संबंध होनैतैं पदार्थमैं प्रीति होवै, ता आत्मामैंही मुख्य प्रीति है; औ पदार्थमैं नहीं. जैसै पुत्रके मित्रमैं पुत्रके संबंधसैं प्रीति है, यातैं पुत्रमैंही प्रीति है; पुत्रके मित्रमैं नहीं; तैसैं आत्माके अधिकसमीपमैं अधिकप्रीति होवै है, यातैं आत्माविषैही सर्वकी प्रीति है.

सो प्रीति आनंदमैं औ दुःखके अभावमैं होवै है; औरमैं नहीं, औरपदार्थमैं जो प्रीति होवै, सो आनंद औ दुःखके अभावके निमित्त होवै है. यातैं आनंद औ दुःखके अभावसैं औरमैं प्रीति नहीं. यातैं सर्वकी प्रीतिका विषय जो आत्मा, सो आनंदरूप है; औ दुःखका अभावरूप है. कल्पितका अभाव अधिष्ठानरूप होवै है. जैसैं सर्पका अभाव रज्जुरूप है. यातैं कल्पित जो दुःख, ताका अभाव बी आत्मारूप है. इसरीतिसैं आत्मा आनंदरूप है. औ

न्यायमतमैं आत्माका आनंदगुन है, सो समीचीन नहीं. काहेतैं, जो आनंदगुनकूं नित्य अंगीकार करैं, तौ आगमापायी नहीं होवै; यातैं, आत्माका स्वरूपही आनंद सिद्ध होवैगा. औ नित्य आनंद न्यायमतमैं है बी नहीं. औ अनित्य जो कहै, तौ अनुकूलविषय औ इंद्रियके संबंधसैं आनंदकी उत्पत्ति अंगीकार करनी होवैगी. यातैं सुषुप्तिमैं आनंदका भान नहीं हुवा चाहिये. काहेतैं, सुषुप्तिमैं विषयका औ इंद्रियका संबंध है नहीं. यातैं आत्माका आनंद गुन नहीं, किंतु आत्मा आनंदस्वरूप है. इसरीतिसैं आत्मा सतचितआनंदरूप है, सो

सच्चिदानंद परस्पर भिन्न नहीं; किंतु एकही है. जो आत्माके गुन होवै तौ परस्पर भिन्न बी होवै; औ आत्मस्वरूप है, यातैं भिन्न नहीं. एकहीं आत्मा निवृत्तिरहित है, यातैं सत कहिये है. औ जडसैं विलछन प्रकासरूप है, यातैं चित् कहिये हैं. औ दुःखसैं विलछन मुख्यप्रीतिका विषय

है, यातैं आनंद कहिये है. जैसे उल्मुकासरूप अग्नि है, तैसे सच्चितआनंदरूप आत्मा है. औ सच्चितआनंदस्वरूपहीः सास्त्रमैं ब्रह्म कह्या है, यातैं ब्रह्मस्वरूप आत्मा है. औ ब्रह्म नाम व्यापकका है. देसतैं जाका अंत नहीं होवै, सो व्यापक कहिये है. तासैं आत्मा जो भिन्न होवै, तो देसतैं अंतवाला होवैगा. जाका देसतैं अंत होवै, ताका कालसैं वी अंत होवै है; यह नियम है. यातैं अनित्य होवैगा. जाका कालसैं अंत होवै सो अनित्य कहिये है. यातैं ब्रह्मसैं भिन्न आत्मा नहीं. औ आत्मासैं भिन्न जो ब्रह्म होवै, तौ अनात्म होवैगा. जो अनात्म घटादिक हैं; सो जड हैं; यातैं आत्मासैं भिन्न ब्रह्म वी जडही होवैगा. यातैं आत्मासैं भिन्न ब्रह्म वी नहीं; किंतु ब्रह्मस्वरूपही आत्मा है.

एकही चेतन सर्वप्रपंच औ मायाका अधिष्ठान है, यातैं ब्रह्म कहिये है. अविद्या औ व्यष्टिदेहादिकनका अधिष्ठान है; यातैं आत्मा कहिये है. तत्पदका लक्ष्य ब्रह्म कहियें है, औ त्वंपदका लक्ष्य आत्मा कहिये है. ईस्वरसाक्षी तत्पदका लक्ष्य है, औ जीवसाक्षी त्वंपदका लक्ष्य है. व्यष्टिसंघातउपहितचेतन जीवसाक्षी है, औ समष्टिसंघातउपहितचेतन ईस्वरसाक्षी कहिये है. यद्यपि जीवकी औ ईस्वरकी एकता बनै नहीं; तथापि जीवसाक्षी औ ईस्वरसाक्षीका उपाधिके भेदसैं भेद है; औ स्वरूपसैं एकही है. जैसे मठस्थित जो घटाकास औ मठाकास तिन्हका उपाधिके भे-

दविना स्वरूपसैं भेद नहीं, तैसैं आत्मा औ ब्रह्मका उपाधि-भेदविना भेद नहीं, एकही वस्तु है. सो

ब्रह्मरूप आत्मा अजन्म कहिये जन्मरहित है. जो आत्माका जन्म अंगीकार करैं, तौ अनित्य होवैगा. सो वार्ता परलोकवादी जो आस्तिक हैं, तिन्हकूं इष्ट नहीं. काहेतें जो आत्मा उत्पत्तिनासवान होवै, तौ प्रथमजन्मविषै पूर्वकर्मविनाही सुखदुःखका भोग; औ किये कर्मका भोगसैं विना नास होवैगा. यातैं कर्त्ताभोक्ता जो आत्मा अंगीकार करैं, तौ बी जन्मनासरहितही अंगीकार करना होवैगा. औ आत्माका जन्म जो अंगीकार करैं, तौ हेतुसैंविना तौ किसी वस्तुका जन्म होवै नहीं. यातैं, किसी हेतुसैंही जन्म कहना होवैगा, सो बनै नहीं. काहेतें, जो आत्माका हेतु है, सो आत्मासैं भिन्नही कहना होवैगा. सो आत्मासैं भिन्न संपूर्न आत्मामैं कल्पित है, यातैं आत्माका हेतु बनै नहीं. जैसैं रज्जुमैं कल्पितसर्प रज्जुका हेतु नहीं, तैसैं आत्मामैं कल्पितवस्तु आत्माका हेतु बनै नहीं.

जैसैं एकरज्जुविषै नानापुरुषनकूं दंड, सर्प, पृथिवीरेषा, जलधाराकी भ्रांति होवै है. ता भ्रांतिमैं दो अंस हैं, एक तौ सामान्यइदंअंस है, औ एक सर्पादिक विसेषअंसहै. सौ सामान्यइदंअंस सर्पादिक विसेषअंसनमैं सारे व्यापकहै. "यह सर्प है, यह दंड है, यह पृथिवीकी रेषा है, यह जलकी रेषा है;" इसरीतिसैं सर्पादिक विसेषअंसमैंइदंअंस सारेव्यापक है. सो व्यापकसामान्यइदंअंस रज्जुस्वरूप है.ता सामान्य-

इदंअंसके ज्ञानकूंही भ्रांतिका हेतु रज्जुका सामान्यज्ञान क-हे हैं. सो सामान्यइदंअंस सत्य है. काहेतैं, रज्जुका ज्ञान हुयेसैं अनंतर बी ता इदंअंसकी प्रतीति होवै है. जैसै भ्रांतिकाल-मैं "यह सर्प है," यारीतिसैं सर्पादिकनसैं मिलिके इदंअंस-की प्रतीति होवै है. तैसैं भ्रांतिकी निवृत्तिसैं अनंतर बी, "यह रज्जु है" यारीतिसैंरज्जुके साथि मिलिके इदंअंसकीप्रतीति होवै है. जो इदंअंस बी मिथ्या होवै, तौ सर्पादिकनकी न्याई भ्रांतिकी निवृत्तिसैं अनंतर ताकी बी प्रतीति नहीं हुई चाहिये. यातैंसर्पादिकभ्रांतिमैं व्यापक जो इदंअंस सो सत्य है. औअधिष्ठान रज्जुरूप है. औ परस्पर व्यभिचारी जो सर्पादिक, सो कल्पित हैं.

तैसैं सर्वपदार्थनमैं पांचअंस हैं; एक नाम औ रूप औ अ-स्ति, तथा भाति, औ प्रिय. " घट " यह दोअछर नाम, औ "गोलरूप घट है" यह अस्ति, औ "घट" "प्रतीति" होवै है, यह भाति; औ "घट, प्रिय है" यह आनंद. सर्पादिक भी स-र्पनीआदिकनकूं प्रिय हैं. इसरीतिसैं सर्वपदार्थनमैं पांचअंस हैं. तिन्हविषै अस्तिभातिप्रियरूप तीनिअंस सर्वपदार्थनमैं व्यापक हैं.औ नामरूप व्यभिचारीहैं. जो वस्तु कहूं होवै औ कहूं नहीं होवै, सो व्यभिचारी कहिये हैं. घट नाम गोलरूप, पटविषै नहीं हैं. पटनाम औ ताकारूप घटविषै नहीं हैं. इ-सरीतिसैं सर्वपदार्थनविषै नामरूपअंस व्यभिचारी हैं, औ अ-स्तिभातिप्रियरूपसर्वविषै अनुगत है. जैसै सर्वदंडादिकनमैंअ-नुगत इदंअंससत्य औ अधिष्ठान है. तैसैं सर्वपदार्थनमैं अनुगत

अस्तिभातिप्रियरूप सत्य है;औ अधिष्ठानरूप है.औ सर्पदंडादिकनकी न्याई व्यभिचारी नामरूप कल्पित हैं. औ अस्ति भातिप्रिय सच्चितआनंदरूप है; यातैं आत्मस्वरूप है. इसरीतिसैं सच्चितआनंदरूप आत्माविषै संपूर्ननामरूपप्रपंचकल्पित है. सो कल्पितपदार्थ कोई आत्माके जन्मका हेतु बनै नहीं यातैं आत्मा अजन्म है. जा वस्तुका जन्म होवै;ताहीके सत्ता, वृद्धि, परिनाम, अपछय, विनासरूप पांचविकार और होवै हैं. आत्माका जन्म होवै नहीं; यातैं उत्तरपांचविकार वी होवै नहीं, इसरीतिसैं अजन्म कहिये,जन्मादिक षट्विकारसैं रहित आत्मा है., सत्ता नाम प्रगटताका है; औ अपछय नाम घटनैका है. सो

आत्मा असंग है. संग नाम संबंधका है. सोसजातीयविजातीय स्वगतपदार्थसैं होवै है. जैसैं घटका घटसैं जो संबंध है, सो सजातीयसैं संबंध है. औ घटका पटसैंजो संबंध, सो विजातीयसैं संबंध है. स्वगत नाम अवयवकाहै. यातैं पटका तंतुसैं जो संबंध, सो स्वगतसैं संबंध है. आत्मा दो अथवा अनंत होवै, तौ सजातीयसैं आत्माका संबंधहोवै, सो आत्मा एक है; यातैं सजातीयआत्मासैं आत्माकासंबंध नहीं. औ आत्मासैं विजातीय अनात्मा है, सो मृगतृस्नाके जलकी न्याई आत्मामैं कल्पित है. ता कल्पितसैंआत्माका संबंध बनै नहीं, जैसै मृगतृस्नाके जलसैंपृथिवी,का संबंध होवै नहीं, जो संबंध होवै तौ ऊपरभूमिका जलसैं गिली हुई चाहिये. जैसै मृगतृस्नाके जलसैं ऊपरभूमिकासं-

बंध नहीं; तैसै आत्मामैं कल्पित जो विजातीयअनात्मा, तासैं आत्माका संबंधनहीं. जो आत्माके अवयव होवैं तौ आत्माका स्वगतसैं संबंध होवै. आत्मा नित्य है, यातैं निरवयव है, ताका स्वगतसैं संबंध बनै नहीं. इसरीतिसैं सजातीयविजातीयस्वगतसंबंध आत्माविषै नहीं, यातैं असंग है. इसरीतिसैं, हे सिष्य ! सच्चित्आनंदब्रह्मरूप, जन्मादिकविकाररहित, असंग आत्मा है, "सो तूं है." यह प्रथमप्रश्नका अर्धदोहेसैं आचार्यनै उत्तर कह्या.

"जगतका कर्त्ता कौन है ?" यह द्वितीयप्रश्नकाउत्तर अर्ध दोहेसैं कहै हैं:—

## दोहा.

**विभु चेतनमाया करै, जगको उत्पत्ति भंग;**

टीका:-विभु कहिये व्यापक जो चेतन, ताके आश्रितऔ ताकूंविषय करनैवाली माया कहिये सतअसतसैं विलछन अद्भुतसक्तिरूप अज्ञान, तासैं जगतकी उत्पत्तिभंग होवै है. उत्पत्ति औ भंग कहनैतैं स्थितिका ग्रहन अर्थतैंहोवै है. यातैं यह अर्थ सिद्ध हुवा:- मायायुक्त जो चेतन सो ईस्वर कहिये है. सो ईस्वर जगतकी उत्पत्तिपालननासका हेतु है. या कहनैतैं "जगतका कोई कर्त्ता है, अथवा आपसैं होवै है?" याका उत्तर कह्या. औ "जगतका कर्त्ता कोई जीव है अथवा ईस्वर है?" याका बी उत्तर कह्या.

जगतका कर्त्ता ईस्वर है, आपसैं होवै नहीं. जो कर्त्तासैं

विना जगत होवै, तौ कुलालविना घट हुवा चाहिये. यातैं जगतका कोई कर्त्ता है. सो कर्त्ता सर्वज्ञ है. काहेतैं, जो कार्यका कर्त्ता होवै, सो ता कार्यकूं औ ताके उपादानकूं जानिके करै है. यातैं जगतका कर्त्ता बी जगतकूं औ जगतके उपादानकूं जानिके करै है, इसरीतिसैं जगतका कर्त्ता जगतकूं, औ जगतके उपादानकूं जानै है; यातैं सर्वज्ञ है. औ सर्वसक्तिवान है. काहेतैं जो अल्पसक्तिवाले जीव हैं, तिन्हसैं या जगतकी रचना मनसैं बी चिंतन होवै नहीं. यातैं अद्भुतजगतका कर्त्ता अद्भुतसक्तिवाला है. इसरीतिसैं जगतका कर्त्ता सर्वसक्तिवान है. औ स्वतंत्र है. काहेतैं, जो न्युनसक्तिवाला होवै, सो पराधीन होवै है. औ सर्वसक्तिवाला पराधीन होवै नहीं; यातैं स्वतंत्र है. इसरीतिसैं जगतका कर्त्ता सर्वज्ञ सर्वसक्तिमान स्वतंत्र है; ताहीकूं ईस्वर कहै हैं. औ

अल्पज्ञ अल्पसक्तिमान पराधीनकूं जीव कहै हैं. यद्यपि अल्पज्ञतादिक जीवमैं बी परमार्थसैं नहीं, तथापि अविद्याकृत मिथ्याअल्पज्ञतादिक जीवमैं प्रतीति होवै है; यातैं जीवमैं कहिये हैं. अविद्याकृतअल्पज्ञतादिकनकी जो भ्रांति, सोई जीवता है. सो अल्पज्ञतादिकनकी भ्रांति ईस्वरमैं है नहीं. किंतु मायाकृतसर्वज्ञतादिक ईस्वरमैं है. यह वार्त्ता विस्तारसैं आगै प्रतिपादन करैंगे. इसरीतिसैं जगतका कर्त्ता जीव नहीं, ईस्वर है.

सो ईस्वर एकदेसमैं स्थित नहीं, किंतु सर्वव्यापक है.

जो एकदेसमैं अंगीकार करैं, तौ जा वस्तुका देसतैं अंत होवै, ताका कालसैं बी अंत होवै है; यातैं अनित्य होवैगा. जो अनित्य होवै सो कर्त्तासैं जन्य होवै है. यातैं ईस्वरका बी कर्त्ता अंगीकार करना होवैगा. सो ईस्वरका कर्त्ता बनै नहीं; काहेतैं, आप तौ अपना कर्त्ता बनै नहीं. जो अपना कर्त्ता आपहीं अंगीकार करैं, तौ आत्माश्रयदोष होवैगा. आपही क्रियाका कर्त्ता, औ आपही क्रियाका कर्म होवै; तहां आत्माश्रय होवै है. जैसै कुलाल क्रियाका कर्त्ता है, औ घट कर्म है. तैसै क्रियाका कर्त्ता औ कर्म भिन्न होवै हैं; एक बनै नहीं; यातैं आत्माश्रय दोष है. कर्म नाम कार्यका है, औ कार्यके विरोधीका नाम दोष है. आत्माश्रय कार्यका विरोधी है, यातैं दोष है, यातैं ईस्वरका कर्त्ता अन्य अंगीकार करना होवैगा. सो अन्य बी प्रथम कर्त्ताकी न्याई कर्त्ताजन्यही कहना होवैगा. सो ताका कर्त्ता बी प्रथमकी न्याई तासैं भिन्नही कहना होवैगा. सो प्रथमजो. ईस्वर है, ताकूं द्वितीयकर्त्ताका कर्त्ता अंगीकार करैं, तौ अन्योन्याश्रयदोष होवैगा, यातैं तृतीयकर्त्ता और अंगीकार करना होवैगा. ता तृतीयका कर्त्ता जो द्वितीय मानै, तब तौ अन्योन्याश्रयदोष होवै, औ प्रथम मानै तब चक्रिकादोष होवैगा. जैसै चक्रका भ्रमन होवै है, तैसैं प्रथमकर्त्ता द्वितीयजन्य, औ द्वितीयकर्ता तृतीयजन्य, औ तृतीय प्रथमजन्य, सो प्रथम फेर द्वितीयजन्य; इसरितिसैं कार्यकारनभावका भ्रमन होवैगा

चक्रिकास्थानमैं कोई बी सिद्ध होवै नहीं, सर्वकी परस्पर-अपेछा है. अन्योन्याश्रयमैं दोकी परस्परअपेछा है, एककी सिद्धि हुयेविना अन्यकी सिद्धि होवै नहीं. यातैं, जैसै कुलालका कर्त्ता आप नहीं, किंतु ताका पिता है. तैसैं प्रथमईस्वरकर्त्ताका अन्यकर्त्ता है, औ कुलालका पिता अपनैं पुत्रसैं उत्पन्न होवै नहीं, किंतु अन्यपितासैं उत्पन्न होवै है. तैसैं द्वितीयकर्त्ता प्रथमकर्त्तासैं उत्पन्न होवै नहीं, किंतु अन्यकर्तासैंही कहना होवैगा. औ कुलालका पितामह, कुलाल औ ताके पितासैं उत्पन्न होवै नहीं, किंतु चतुर्थ जो कुलालका प्रपितामह, तासैं उत्पन्न होवै है. तैसैं तृतीयकर्ता बी प्रथम औ द्वितीयकर्त्तासैं उत्पन्न होवै नहीं. यातैं चतुर्थकर्त्ता और अंगीकार करना होवैगा. ता चतुर्थका कर्त्ता और पंचम माननना होवैगा. यातैं अनवस्थादोष होवैगा. धाराका नाम अनवस्था है. जो कर्त्ताका धारा अंगीकार करैं, तौ कौनसा कर्त्ता जगत करै है, यह निर्नय नहीं होवैगा. किसीएककूं जगतका कर्त्ता माननैमैं कोई जुक्ति नहीं. ता जुक्तिके अभावका नामही विनगमनविरह कहै हैं. औ धाराकी कहूं विश्रांत अंगीकार करैं, तौ जा कर्त्तामैं धाराका अंत अंगीकार किया, सोई कर्त्ता जगतका माननैं योग्य है. पूर्व सारे निष्फल होवैंगे. याका नामही प्राग्लोप कहै हैं. पिछलेके अभावका नाम प्राग्लोप है. इसरीतिसैं ईस्वरका देसतैं अंत अंगीकार करैं, तौ उत्पत्ति अंगीकार करनी होवैगी. औ उत्पत्ति अंगी-

कार करैं तौ आत्माश्रयादि षट्दोष होवैंगे: यातैं ईस्वरका देसतैं अंत नहीं, किंतु व्यापक है; याहीतैं नित्य है.

ता व्यापकईश्वरका औ जीवका स्वरूपसैं भेद नहीं. किंतु उपाधिसैं भेद है. काहेतैं, अवच्छेदवादमैं मायाविशिष्टचेतन ईस्वर कहै हैं; औ अविद्याविशिष्टचेतन जीव कहै हैं. आभासवादमैं माया औ आभासविशिष्टचेतन ईस्वर कहै हैं; औ आभाससहित अविद्या विशिष्टचेतनकूं जीव कहै है. आभासवादमैं आभाससहित अविद्या औ मायाका भेद है; चेतनका नहीं. तैसैं अवच्छेदवादमैं बी अविद्या औ मायाका भेद है; स्वरूपसैं चेतनका भेद नहीं. औ अज्ञानमैं चेतनका प्रतिबिंब जीव है; औ बिंब ईस्वर है. या पच्छमैं बी चेतनका स्वरूपसैं भेद नहीं; किंतु एकही चेतनमैं जीवपना औ ईस्वरपना आरोपित है. यह वार्त्ता आगै कहैंगे. इसरीतिसैं जगतका कर्त्ता सर्वज्ञ सर्वसक्तिमान स्वतंत्र ईस्वर है. सो ईस्वर व्यापक है. ताका औ जीवका विसेषनमात्रसैं भेद है; औ स्वरूपसैं अभेद है. यह द्वितीयप्रश्नका उत्तर कह्या.

"मोछका साधन ज्ञान है, अथवा कर्म है; अथवा उपासना है अथवा दो है?" याका उत्तर कहै हैः—

## दोहा.

हेतु मोछको ज्ञान इक, नहीं कर्म नाहिं ध्यान;
रज्जुसर्प तबही नसै, होय रज्जुको ज्ञान.

टीकाः—मुक्तिका हेतु कर्म औ ध्यान कहिये उपासना नहीं; किंतु ज्ञानही हेतु है. काहेतैं, जो आत्मामैं बंध सत्य होवै, तौ ताकी निवृत्तिरूप मोक्ष ज्ञानसैं होवै नहीं; किंतु कर्म अथवा उपासनातैं होवैं. सो बंध आत्मामैं सत्य है नहीं; किंतु रज्जुसर्पकीन्याई मिथ्या है. ता मिथ्याकी निवृत्ति अधिष्ठानज्ञानसैंही बनै है, कर्म अथवा उपासनासैं नहीं, जैसा रज्जुका सर्प किसी क्रियातैं दूरि होवै नहीं, केवल रज्जुके ज्ञानसैं दूरि होवै; तैसैं आत्माके अज्ञानसैं प्रतीत जो होवै है बंध, ता बंधकी प्रतीति औ अज्ञान आत्माके ज्ञानसैंही दूरि होवै है.

जो कर्मका फल मोक्ष होवै, तौ मोक्षअनित्य होवैगा. काहेतैं,यह नियम हैः—जो क्रिषिआदि कर्मका फल अन्नादिक हैं, सो अनित्य हैं. औ यज्ञादिकर्मका फल स्वर्गादिक बी अनित्य हैं. जो मोक्ष बीकर्मका फल अंगीकार करै, तौ अनित्य होवैगा. यातैं कर्मका फल मोक्षनहीं. तैसैं उपासनाका फल जो अंगीकार करैं, तौ बी मोक्ष अनित्य होवैगा. काहेतैं, उपासना बीमानसकर्मही है; औ कर्मका फल अनित्य होवै है; यातैं उपासनारूप कर्मका फल बी मोक्ष नहीं. औ

कर्मकर्त्ताकूं कर्मसैं पांचप्रकारका उपयोग होवै है.पदार्थकी उत्पत्ति, तथा नाश, अथवा पदार्थकी प्राप्ति, वा पदार्थका विकार, तैसैं संस्कार. अन्यरूपकी प्राप्तिका नाम विकार है. संस्कार दो प्रकारका होवै हैः— मलकी निवृत्ति औ

गुनकी उत्पत्ति. यह पांचप्रकारका कर्मसें उपयोग होवै है. सो मुमुक्षुकुं कोई बी बनै नहीं; यातें मुमुक्षु ज्ञानके साधन श्रवनादिकविषैही प्रवृत्त होवै, औ कर्ममैं नहीं. जैसें कुलालके कर्मतैं कुलालकुं घटकी उत्पत्ति उपयोग होवै है, तैसें मुमुक्षुकुं कर्मतैं मोक्षकी उत्पत्ति उपयोग बनै नहीं. काहेतें, जो अनर्थकी निवृत्ति, औ परमानंदकी प्राप्तिरूप मोक्ष है, सो अनर्थकी निवृत्ति आत्मामैं नित्यसिद्ध हैं. जैसें रज्जुमैं सर्पकी निवृत्ति नित्य सिद्ध है. औ आत्मा परमआनंदस्वरूप है. यातें परमानंदकीप्राप्ति बी नित्यसिद्ध है; इसरीतिसें स्वभावसिद्ध मोक्षकी कर्मसें उत्पत्ति बनै नहीं. जो वस्तु आगै सिद्ध नहीं होवै, ताकी कर्मसें उत्पत्ति होवै है; औ सिद्धवस्तुकी उत्पत्ति होवै नहीं. औ

वेदांतश्रवन बी मोक्षकी उत्पत्तिके निमित्त नहीं कह्या। किंतु, आत्मा नित्यमुक्त है, किंचित्मात्र बी कर्तव्य नहीं, इसवार्त्ताके जाननैवास्तै श्रवन हैं. यह जानिकेकर्तव्यभ्रांति दूरि होवै है. औ वेदांतश्रवनसें अनंतर बी जिनकुं कर्तव्य प्रतीति होवै है. तिन्हनैं तत्त्व जान्या नहीं. इसीकारनतें नित्यनिवृत्ति जो अनर्थ, ताकी निवृत्ति, औ नित्यप्राप्तआनंदकी प्राप्ति, वेदांतश्रवनका फल देवगुरुनै नैष्कर्मसिद्धिमैं कह्या है. यातैं मोक्षकी उत्पत्तिरूप कर्मका, उपयोगमुमुक्षुकूं बनै नहीं.

जैसें दंडका प्रहाररूप कर्मका, घटका नासरूप उपयोग होवै है; तैसें मुमुक्षुकूं कर्मतैं किसीपदार्थका नासरूप उ-

पयोग बी बनै नहीं. काहेतैं, अन्यपदार्थका नास तौ मुमुक्षुकूं वांछित है नहीं बंधका नासही कर्मसैं उपयोग कहना होवैगा. सो बंध आत्मामैं है नहीं, मिथ्याप्रतीत होवै है. ता मिथ्याप्रतीतिका नास कर्मतैं बनै नहीं. औ आत्माके यथार्थ ज्ञानसैं तौ मिथ्याप्रतीतिका नास बनै है. यातैं मुमुक्षुकूं पदार्थका नासरूप उपयोग बी कर्मसैं बनै नहीं. जैसैं गमनरूप कर्मतैं ग्रामकी प्राप्ति होवै है, तैसैं मोक्षकी प्राप्तिरूप उपयोग कर्मसैं बनै नहीं; काहेतैं जो आत्मा नित्यमुक्त है, ताकूं मोक्षकी प्राप्ति कहना बनै नहीं; जाकूं बंध होवै, ताकूं मोक्षकी प्राप्ति कहना बनै है; औ आत्मामैं बंध है नहीं, यातैं मोक्षकी प्राप्तिरूप कर्मका उपयोग मुमुक्षुकूं बनै नहीं.

जैसे पाकरूप कर्मसैं अन्नका विकाररूप उपयोग पाचककूं होवै है, तैसैं मुमुक्षुकूं कर्मसैं विकाररूप उपयोग बी बनै नहीं. काहेतैं, और तौ कोई विकार बनै नहीं; जो आत्मामैं प्रथमबंध अंगीकार करैं, औ मोक्षदसामैं चतुर्भुजादिक विलक्षनरूपकी प्राप्ति अंगीकार करैं; तौ अन्यरूपकी प्राप्तिरूप विकार कर्मका उपयोग मुमुक्षुकूं बनै. सो अन्यरूपकी प्राप्ति आत्मामैं अंगिकार नहीं. यातैं कर्मसैं विकाररूप उपयोग बी मुमुक्षुकूं बनै नहीं.

जैसैं वस्त्रके क्षालनरूप कर्मका, मलकी निवृत्तिरूप संस्कार होवै है; तैसैं मलकी निवृत्तिरूप संस्कार बी मुमुक्षुकूं कर्मसैं उपयोग नहीं. काहेतैं, अन्यके मलकी निवृत्ति तौ मुमुक्षुकूं वांछित है नहीं, आत्माके मलकीनिवृत्ति कहनी

होवैगी. सो आत्मा नित्यसुद्ध है, ताकेविषै मल है नहीं. यातैं मलकी निवृत्तिरूप संस्कार बनै नहीं. औ अंतःकरन-विषै पापरूप जो मल हैं, ताकी निवृत्ति जो कर्मसैं उपयोग कहैं, तौ यह वार्ता सत्य है; परंतु सुद्धअंतःकरनवाला जो मुमुक्षु है, ताका विचार करै हैं. ताके अंतःकरनमैं बी पाप है नहीं, यातैं पापरूप मलकी निवृत्तिरूप संस्कार बी मुमुक्षुकूं कर्मसैं उपयोग बनै नहीं. औ अज्ञानकूं जो मल कहैं, तौ अज्ञान आत्मामैं है बी, परंतु ताकी निवृत्ति कर्मसैं होवै नहीं काहेतैं, अज्ञानका विरोधी ज्ञान है; कर्म नहीं. यातैं मलकी निवृत्तिरूप संस्कार मुमुक्षुकूं कर्मसैं उपयोग बनै नहीं. जैसे वस्त्रका कुसुंभमैं मज्जनरूप कर्मका रक्तगुनकी उत्पत्तिरूप संस्कार उपयोग होवै है, तैसे गुनकी उत्पत्ति-रूप संस्कार मुमुक्षुकूं कर्मसैं उपयोग बनै नहीं, काहेतैं, अन्यविषै ता गुनकी उत्पत्ति कहना बनै नही. आत्माविषैही कहना होवैगा. सो आत्मा निर्गुन है; ताकेविषै गुनकी उत्पत्ति बनै नहीं. यातैं गुनकी उत्पत्तिरूप संस्कार बी मुमुक्षुकूं कर्मका उपयोग बनै नहीं. या प्रकरनमैं उपयोग नाम फलका है. कर्मका पांचही प्रकारका फल होवै है, और नहीं. सो पांचप्रकारका फल कर्मका मुमुक्षुकूं बनै नहीं, यातैं कर्मकूं त्यागिके ज्ञानके साधन श्रवनविषैही मुमुक्षु प्रवृत्त होवै. उपासना बी मानस कर्मही है; यातैं ताके खंडनमैं पृथक युक्ति नहीं कही. इसरीतिसैं केवलकर्म अथवा उपासना मोक्षका हेतु नहीं; किंतु केवलज्ञान है. औ

कोई कर्मउपासनासहित ज्ञानकूं मोछका हेतु अंगीकार करै हैं. औ ताकेविषै युक्तिदृष्टांत बी कहै हैं. जैसै आकासमैं पछीका एकपछसैंगमन होवै नहीं; किंतु दोपछसैं गमन होवै है; तैसैं मोछलोककूं बी एक ज्ञानरूप पछसैं गमन होवै नहीं; किंतु एकपछ तौ उपासनासहित कर्म है; औ द्वितीयपछ ज्ञान है. उपासना बी मानस कर्मही है, यातैं एकही पछ है.

अन्यदृष्टांतः—जैसैं सेतुके दर्सनसैं पापका नास होवै है. सोसेतुका दर्सन बी प्रत्यछरूप ज्ञान है; औ श्रद्धाभक्तिसहित गमनादि नियमकी अपेछा करै है. जो श्रद्धादिकरहित पुरुष होवै, ताकूं सेतुदर्सनसैं फल होवै नहीं. जैसैं सेतुका प्रत्यछज्ञान श्रद्धानियमादिकनकी, फलकी उत्पत्तिमैं अपेछा करै है; तैसैं ब्रह्मज्ञान बी मोछरूप फलकी उत्पत्तिमैं कर्मउपासनाकी अपेछा करै है. औ

केवलज्ञानसैं जो मोछ अंगीकार करै है, सो बी ज्ञानका हेतु तौ कर्मउपासना मानै है. सुद्ध औ निश्चल अंतःकरनमैं ज्ञान होवै है. सो अंतःकरन सुभकर्मसैं सुद्ध होवै है, औ उपासनासैं निश्चल होवै है. इसरीतिसैं अंतःकरनकी सुद्धि औ निश्चलताद्वारा कर्मउपासना ज्ञानके हेतु अंगीकार किये हैं.

जैसैं ज्ञानके हेतु कर्मउपासना अंगीकार किये, तैसैं ज्ञानके फल मोछके हेतु बी अंगीकार करनै योग्य हैं.

दृष्टांतः— जैसैं जलका सेचन वृछकी उत्पत्तिका हेतु है,

औ वृछके फलकी उत्पत्तिका बी हेतु हैं. जो बनके वृछन-के जलसेचनविना फल होवै है, सो बी वृछके मूलमैं नीचे जलका संबंध है; यातैं फल होवै है, औ जलके संबंधविना वृछही सूक जावै; फल होवै नहीं.

तैसे कर्मउपासना, ज्ञानकी उत्पत्तिके हेतु हैं; औ ज्ञान-का फल जो मोछ, ताके बी हेतु हैं. इसरीतिसैं कर्मउपास-नाज्ञान तिनूं मोछके हेतु हैं. यातैं ज्ञानवान बी कर्म करै.

अथवा, कर्मउपासना ज्ञानकीरछाके हेतु हैं. काहेतैं, जो कर्मउपासनाका ज्ञानवान त्याग करै, तौ उत्पन्न हुवा ज्ञान बी जलसैंविना वृछकी न्याई नष्ट होय जावैगा. काहेतैं, सुद्ध अंतःकरनमैं ज्ञान होवै है; औ सुभकर्म नहीं करै तौ ज्ञानवानकूं पाप होवैगा. औ उपासनाके त्यागसैं अंतःकरन फेरि चंचल होय जावैगा. ता मलिन औ चंचलअंतःकरन-मैं ज्ञान रहै नहीं; जैसैं सूकिभूमिमैं उत्पन्न हुवा वृछ बी रहै नहीं

अन्यदृष्टांतः—जैसैं संस्कारसैं सुद्धिकीयेस्थानमैं वेदपाठी ब्रह्मचारी निवास करै है. औ सुद्ध किया स्थानबी किसी निमित्तसैं फेरि मलिन होय जावै, तौ ता स्थानकूंत्यागी देवै है. तैसै कर्मके त्यागसैं मलिन, औ उपासनाके त्यागसैं चंचलहुवा जो अंतःकरन, ताकेविषै ज्ञान रहै नहीं; यातैं कर्म औ उपासना ज्ञानकी रछाके हेतु हैं इसरीतिसैं कर्मउ-पासनाज्ञान, तिनूं मोछके हेतु अंगीकार करैं, तथा ज्ञानकी रछाके हेतु कर्मउपासना अंगीकार करैं, औ केवलज्ञान

मोछका हेतुअंगीकार करैं, दोनूंप्रकारसैं ज्ञानवानकूं कर्मउपासना कर्तव्य है. याकूं समुच्चयवाद कहै है, सो समीचीन नहीं. काहेतैं,

देहसैं भिन्न जो आत्मा नहीं जानैं, तासैं कर्म होवैनहीं. काहेतैं, जन्मांतरके भोगके निमित्त कर्म करै हैं; औ देहका अग्निविषै दाह होवै है; तासैं जन्मांतरका भोग बनै नहीं, यातैं सरीरतैं भिन्न आत्माका ज्ञान कर्मका हेतु है. सो सरीरसैं भिन्न बी आत्माका कर्ताभोक्तारूपकरिकै ज्ञान कर्मका हेतु है." मैं पुन्यपापका कर्ता हूं, औ पुन्यपापका फल मेरकूं होवैगा," ऐसा जाकूं ज्ञान है, सो कर्म करै है. औ ज्ञानवानकूं ऐसा आत्माका ज्ञान है नहीं; किंतु पुन्यपाप औ सुखदुःखतैंरहित असंगब्रह्मरूप आत्मा है, ऐसा वेदांतवाक्यसैं ज्ञान होवै है. सो ज्ञान कर्मका हेतु नहीं, उलटा विरोधी है. यातैं ज्ञानवानसैं कर्म होवै नहीं. औ कर्ता कर्म फलका भेदज्ञान कर्मका हेतु है. सो कर्त्ताकर्मफलकी ज्ञानवानकूं आत्मासैं भिन्न प्रतीत होवै नहीं; संपूर्न आत्मस्वरूप ही प्रतीत होवै है; यातैं बी ज्ञानवानसैं कर्म होवै नहीं. औ भाष्यकारनै बहुतप्रकारसैं ज्ञानवानकूं कर्मका अभाव प्रतिपादन किया है. कर्मका औ ज्ञानका फलसैं विरोध है. यातैं बी ज्ञानकर्मका समुच्चय बनैं नहीं. कर्मका फल अनित्य संसार है; औ ज्ञानका फल नित्यमोछ है, औ

आत्मामैं जातिआश्रमअवस्थाका अध्यास कर्मका हेतु है. काहेतैं, जातिआश्रमअवस्थाके योग्य भिन्नभिन्नकर्म

कहे हैं. यातैं जातिआदिकनका अध्यास कर्मका हेतु है. यद्यपि जातिआश्रमअवस्था देहके धर्म हैं, औ कर्मीकूं देहमैं आत्मा बुद्धि है नहीं; किंतु देहसैं भिन्न कर्त्ताआत्मा कर्मी जानै है; यह वार्त्ता पूर्व कही. यातैं जातिआश्रमअवस्थाकी प्रतीति आत्मामैं कर्मीकुं बी बनै नहीं. तथापि देहसैं भिन्न आत्माका कर्मीकुं अपरोक्षज्ञान नहीं, किंतु शास्त्रसैं परोक्षज्ञान है. औ देहमैं आत्मज्ञान अपरोक्ष है. जो देहसैं भिन्न आत्माका अपरोक्षज्ञान होवै, तौ देहमैं अपरोक्षआत्मज्ञानका विरोधी होवै. औ परोक्षज्ञानका अपरोक्षज्ञानसैंविरोध है नहीं, यातैं देहसैं भिन्न कर्ता आत्माका ज्ञान, औ देहमैं आत्मबुद्धि दोनुं एककूं बनै हैं. दृष्टांतः—मूर्त्तिमैं ईश्वरज्ञान तौ शास्त्रसैं परोक्ष है, औ पाषानबुद्धि अपरोक्ष है; तिन्हका विरोध नहीं. दोनुं एककुं होवै हैं. औ रज्जुमैं जाकुं सर्पसैं अपरोक्षभेदज्ञान है, ताकुं अपरोक्षसर्पभ्रांति दूरि होवै है. यातैं यह नियम सिद्ध हुवाः— अपरोक्षभ्रांतिका अपरोक्षज्ञानसैं विरोध है, परोक्षसैं नहीं. यातैं देहसैं भिन्न आत्माका परोक्षज्ञान, औ देहमैं अपरोक्षज्ञान बनै है. सो दोनूं कर्मके हेतु है. देहसैं भिन्न बीकर्तारूपकरिके, आत्माका ज्ञान कर्मका हेतु हैं. सो कर्तारूपकरिके आत्माका ज्ञान भ्रांतिरूप है. औ भ्रांतिविद्वानकूं है नहीं, यातैं कर्मका अधिकार नहीं. औ

देहमैं अपरोक्षआत्मबुद्धि होवै, तब देहके धर्म जातिआश्रमअवस्था प्रतीत होवै, सो देहमैं आत्मबुद्धि बी विद्वानकूं है नहीं, किंतु ब्रह्मरूपकरिके आत्माका अपरोक्षज्ञान है.

यातैं जातिआश्रमअवस्थाकीभ्रांतिके अभावतैं बीविद्वानकुं कर्मका अधिकार नहीं. औ उपासना बी "मैं उपासक हुं, देव उपास्य है," या बुद्धिसैं होवै है. सो विद्वानकूं उपास्यउपासकभाव प्रतीत होवै नहीं. "देहादिक संघात तौ मेरा औ देवका स्वप्नकी न्याई कल्पित है. औ चेतन एक है," यह विद्वानका निश्चय है. यातैं ज्ञानका उपासनासैं विरोध है. औ

पछीके गमनका दृष्टांत बनै नहीं. काहेतैं, पछीके तौ दोपछ एककालमैं रहै हैं; तिनका परस्पर विरोध नहीं; औ ज्ञानका तौं कर्मउपासनासैं विरोध है, एककालमैं बनै नहीं. औ

सेतुके ज्ञानका दृष्टांत बी बनै नहीं. काहेतैं, सेतुका दर्सन दृष्टफलका हेतु नहीं; किंतु अदृष्टफलका हेतु है. प्रत्यछ जो फल प्रतीत होवै, सो दृष्टफल कहिये है. जैसैं भोजनका फल तृप्ति प्रत्यछ है; यातैं भोजन दृष्टफलका हेतु है. तैसैं सेतुके दर्सनसैं प्रत्यछफल प्रतीत होवै नहीं; किंतु पापका नासरूप फल सास्त्रसैं जान्या जावै है. जो सास्त्रसैं फल जानिये, औ प्रत्यछप्रतीत होवै नहीं; सो अदृष्टफल कहिये है. यातैं जैसैं यज्ञादिककर्म स्वर्गादिक अदृष्टफलके हेतु हैं, तैसैं सेतुका दर्सन बी पापका नासरूप अदृष्टफलका हेतु है.जो अदृष्टफलका हेतु होवैं हैं, सो तौ जितना फलकी उत्पत्तिमैं सास्त्रनैं सहाय बोधन किया है, ता सहित फलका हेतु होवै हैं, केवल नहीं. यातैं. श्रद्धानियमादिकसहित सेतुका दर्सन पापनासरूप फलका हेतु है; श्रद्धानिय-

मादिकरहित हेतु नहीं. काहेतें,.सेतुके दर्सनसैं प्रत्यछ तौ कोई फल प्रतीत होवै नहीं, केवलसास्त्रसैं जान्या जावै है. सो सास्त्र श्रद्धादिकसहित सेतुके दर्सनसैं फल बोधन करै है; केवल दर्सनसैं फलकी उत्पत्तिमैं कोई प्रमान नहीं. यातैं सेतुका दर्सन फलकी उत्पत्तिमैं श्रद्धानियमभक्तिकी अपेछा करै है. औ

ब्रह्मविद्या अपनै फलकी उत्पत्तिमैं कर्मउपासनाकी अपेछा करै नहीं. काहेतें, जो ब्रह्मविद्याका फल बीस्वर्गकी न्याई लोकविसेष अदृष्ट होवै; सो लोकविसेष बीकेवल ब्रह्मविद्यासैं सास्त्रनै बोधन नहीं किया होवै, किंतुकर्मउपासनासहितसैं बोधन किया होवै; तौ ब्रह्मविद्या बीसेतुके दर्सनकी न्याई फलकी उत्पत्तिमैं कर्मउपासनाकी अपेछा करै. सो ब्रह्मविद्याका फल मोछ, स्वर्गकी न्याई लोकविसेषरूप अदृष्ट तौ है नहीं; किंतु मोछ नित्यप्राप्त है. औभ्रांतिसैं बंध प्रतीत होवै है ता भ्रांतिकी निवृत्तिही ब्रह्मविद्याका फल है. सो भ्रांतिकी निवृत्ति केवल ब्रह्मविद्यासैं हमारेकूं प्रत्यछ है. औ रज्जुज्ञानसैं सर्पभ्रांतिकी निवृत्ति सर्वकूं प्रत्यछहै यातैं अधिष्ठानज्ञानका भ्रांतिकी निवृत्ति दृष्टफलहै. दृष्टफलकी उत्पत्ति जितनी सामग्रीसैं प्रत्यछप्रतीत होवैहै, सो सामग्री दृष्टफलकी हेतु कहिये है. जैसैं तुरीतंतुवेमसैंपटकी उत्पत्ति प्रत्यछ है· यातैं तुरीतंतुवेम,पटके हेतु है. औ केवलभोजनसैं तृप्तिरूप फल प्रत्यछ प्रतीत होवै है, यातैंकेवलभोजन तृप्तिका हेतु है. तैसैं केवलअधिष्ठानज्ञानतैंभ्रांतिकी निवृत्तिप्रत्य-

छप्रतीत होवै है; यातैं केवलअधिष्ठानका ज्ञानही भ्रांतिकी निवृत्तिका हेतु है. जैसे रज्जुकाज्ञान भ्रांतिकी निवृत्तिमैं अन्यकी अपेछा करै नहीं, तैसैंबंधकी भ्रांतिका अधिष्ठान जो नित्यमुक्त आत्मा. ताकाज्ञान बी बंधभ्रांतिकी निवृत्तिमैं कर्मउपासनाकी अपेछा करै नहीं. औ

ज्ञानके फल मोछकूं जो स्वर्गकी न्याई लोकविसेप अदृष्ट अंगीकार करै है; सो वेदवाक्यसैं विरुद्ध है. काहेतैं ज्ञानवानके प्रान किसीलोककूं गमन नहीं करते, यहवेदमैं कह्या है. औ लोकविसेष अंगीकार करनेतैं, स्वर्गकीन्याई मोछ अनित्य होवैगा. यातैं लोकविसेषरूप मोछ नहीं, औ लोकविसेष जो मोछ अंगीकार करै, ताकूं बी केवल ज्ञानसैंही मोछलोककी प्राप्ति अंगीकार करनी योग्य है.काहेतैं, जो सास्त्रनैं प्रतिपादन किया अर्थ होवै, सो सास्त्रके अनुसारही अंगीकार करिये है. सो सास्त्र केवल ज्ञानसैंमोछ कहै है, यातैं केवलज्ञान मोछका हेतु है, कर्मउपासनाज्ञान तीनूं नहीं. औ

वृछका दृष्टांत बी बनै नहीं. काहेतैं, यद्यपि जलका सेचन, वृछकी उत्पत्ति औ रछांमैं हेतु है; तथापि वृछकेफलकी उत्पत्तिमैं नहीं. वृद्ध जो वृछ है, ताकेविषै जलकासेचन वृछकी रछाके निमित्त है; फलके निमित्त नहीं. जलसैं पुष्ट जो वृछ, सोई फलका हेतु है, जलसेचन नहीं. तैसैं कर्मउपासनाका बी ज्ञानकी उत्पत्तिमैं उपयोग है, मोछमैं नहीं. यातैं ज्ञानकी उत्पत्तिसैं पूर्वही अंतःकरनकी सुद्धि, औ निश्चल-

ताके निमित्त कर्मउपासना करै, ज्ञानसैं अनंतर मोछके निमित्त नहीं.

ज्ञानकी उत्पत्तिसैं पूर्व बी जितने अंतःकरनमैं मल औ विछेप होवैं तवपर्यंतही करैं. सुद्ध औ निश्चल अंतःकरन जाका होवैं, सो जिज्ञासु श्रवनके विरोधी कर्मउपासनाका त्याग करै. मल नाम पापका है, सो असुभवासनाका हेतुहै. जबपर्यंत मल होवै, तवपर्यंत असुभवासना होवै है. जब असुभवासना होवै नहीं, तब मलका अभाव निश्चय करै. अंतःकरनकी चंचलता औ एकाग्रता अनुभवसिद्ध है. यातैं उत्तमजिज्ञासु औ विद्वानकूं कर्मउपासना निष्फल है.औ

पूर्व जो कह्या "ज्ञानकी रछाके निमित्त कर्मउपासना करै. जैसैं जलसैं उत्पन्न हुवा जो वृछ, ताकी जलसैं रछा होवै है, जो जलका संबंध नहीं होवै, तौ वृद्धवृछ बी सूक जावै है. तैसैं कर्मउपासनासैं उत्पन्न हुवा जो ज्ञान, ताकी कर्मउपासनासैं रछा होवै है. जो ज्ञानी कर्मउपासना नहीं करै, तौ अंतःकरन मलिन औ चंचल फेरि होय जावैगा. ता मलिन औ चंचलअंतःकरनमैं सूकिभूमिमैं वृछकि न्याई उत्पन्न हुवा ज्ञान बी नष्ट होय जावैगा. यातैं ज्ञानवान बी कर्मउपासना करै."

सो बनै नहीं. काहेतैं, आभाससहित अथवा चेतनसहित जो अंतःकरनकी "मैं असंग ब्रह्म हूं" यह वृत्ति; सो वेदांतका फलरूप ज्ञान है, ताका कर्मउपासनासैं बिना नास होवैगा; अथवा चेतनस्वरूप ज्ञानका नास होवैगा. जो ऐसे-

कहैं:— स्वरूपज्ञान तौ नित्य है; यातैं ताका तौ नास औ रछा बनै नहीं, परंतु वेदांतका फल जो ब्रह्मविद्यारूप ज्ञान है, ताकी कर्मउपासनासैं उत्पत्ति होवै है, औ कर्मउपासनाके त्यागसैं उत्पन्न हुई विद्या बी नष्ट होय जावैगी. यातैं ताकी रछाके निमित्त कर्मउपासना करै. सो बनै नहीं. काहेतैं, एकवार उत्पन्न हुई जो अंतःकरनकी ब्रह्माकारवृत्ति तासैं ज्ञान औ भ्रांतिका नासरूप फल तिसही समय सिद्ध होवै है. अज्ञान औ भ्रांतिके नासतैं अनंतर फेरि वृत्तिकी-रछाका उपयोग नहीं. औ अंतःकरनकी वृत्तिकी कर्मउपासनासैं रछा बनै बी नहीं. काहेतैं, जब कर्मउपासनाका अनुष्ठान करैगा, तब कर्मउपासनाकी सामग्रीकाही वृत्तिरूप ज्ञान होवैगा; ब्रह्मका ज्ञान बनै नहीं. औरवृत्ति हुयेतैं प्रथमवृत्ति रहै नहीं, यातैं कर्मउपासना, ज्ञानकी उत्पत्तिके तौ परंपरातैं हेतु हैं; औ उत्पन्न हुई वृत्तिके विरोधी हैं. यातैं कर्मउपासनातैं ज्ञानकी रछा होवै नहीं. औ

पूर्व जो कह्या "ज्ञानवानकूं कर्मके त्यागसै पाप होवै हैं." सो वार्ता बनै नहीं. काहेतैं, जो सुभकर्मका त्याग है, सो पापका हेतु नहीं. किंतु, निसिद्धकर्मका अनुष्ठानही पापका हेतु है. यह वार्ता भाष्यकारनै बहुतप्रकारसैं प्रतिपादन करी है, यातैं कर्मके त्यागसैं पाप होवै नहीं. औ ज्ञानवांनकूं तौ सर्वप्रकारसै पापकी असंभव है. काहेतैं, पुन्य पाप औ तिनका आश्रय अंतःकरन परमार्थसैं है नहीं, अविद्यासैं मिथ्याप्रीति होवै है. सो अविद्या औ मिथ्याप्र-

तीति ज्ञानवानके है नहीं. यातैं ज्ञानवानकूं सुभकर्मके त्यागसैं अथवा असुभके अनुष्ठानसैं पाप बनै नहीं.

या स्थानमें यह सिद्धांत हैः—मंद औ दृढ दोप्रकारका ज्ञान है. संसयादिकसहित जो ज्ञान, सो मंदज्ञान कहिये है, औ संसयादिकरहित ज्ञान दृढ कहिये है. जाकूं दृढज्ञान होवै, ताकूं किंचितमात्र वी कर्तव्य नहीं. एकवार उत्पन्न हुवा जो संसयादिकरहित अंतःकरनकी वृत्तिरूप ज्ञान, सोई अविद्याका नास करी देवै है. सो ज्ञान आप वी दूरि होय जावै तौ वी भलेप्रकारसैं जानै आत्मामैं फेरि भ्रांति होवै नहीं. काहेतैं, जो भ्रांतिका कारन अविद्या है, सो अविद्या एकवार उत्पन्न हुये ज्ञानसैं नष्ट होय गई; यातैं भ्रांति औ अविद्याके अभावतैं, वृत्तिज्ञानकी आवृत्तिका कुछ उपयोग नहीं. औ जीवन्मुक्तिके आनंदवास्ते जो वृत्तिकी आवृत्ति अपेक्षित होवै, तौ वारंवार वेदांतके अर्थका चिंतनही करै. वेदांतके अर्थ चिंतनसैंही वारंवार ब्रह्माकारवृत्ति होवै है, औ कर्मउपासनातैं नहीं. काहेतैं, कर्म औ उपासनाका अंतःकरनकी सुद्धि औ निश्चलताद्वाराही ज्ञानमैं उपयोग है; औररीतिसैं नहीं. औ विद्वानके अंतःकरनमैं पाप औ चंचलता है नहीं. रागद्वेषद्वारा पाप औ चंचलताका हेतु अविद्या है. ता अविद्याका ज्ञानसैं नास होवै है. यातैं विद्वानके पाप औ चंचलताके अभावतैं कर्म-उपासनाका उपयोग नहीं. और

जो कदाचित ऐसैं कहैः—रागद्वेषादिक अंतःकरनके

सहज धर्म है. जितने अंतःकरन है, उतने रागद्वेषका सर्वथा नास ज्ञानवानके वी होवै नहीं. तिन्ह रागद्वेषतें ज्ञानवानका वी अंतःकरन चंचल होवै है. यातें चंचलता दूरि करनैवास्तै ज्ञानवान वी उपासना करै.

यद्यपि ज्ञानवानकूं अंतःकरनकी चंचलतासैं विदेहमोछमैं हानि नहीं, तथापि चंचल अंतःकरनमैं स्वरूपआनंदका भान होवै नहीं. यातें चंचलता जीवन्मुक्तिकी विरोधी है. यातें जीवन्मुक्तिके निमित्त चंचलता दूरि करनैवास्तैं उपासना करै. सो बनै नहीं. काहेतें, यद्यपि दृढबोध जाके अंतःकरनमैं हुवा है, ताके समाधि औ विछेप समान हैं यातें अंतःकरनकी निश्चलताके निमित्त किसी यत्नका आरंभ विद्वानकूं बनै नहीं.

तथापि विद्वानकी प्रवृत्ति औ निवृत्ति प्रारब्धके आधीन है. प्रारब्धकर्म सर्वका विलछन है. किसीविद्वानका जनकादिकनकी न्याई भोगका हेतु प्रारब्ध है, औ किसीका सुकदेव वामदेवादिकनकी न्याई निवृत्तिका हेतु प्रारब्ध है. जाके भोगका हेतु प्रारब्ध है, ताकूं तौ प्रारब्धसैं भोगकी इछा औ भोगके साधनका यत्न होवै है. औ जाके निवृत्तिका हेतु प्रारब्ध होवै, ताकूं जीवन्मुक्तिके आनंदकी इछा होवै है, औ भोगमैं ग्लानि होवै है. जाकूं जीवन्मुक्तिके आनंदकी इछा होवै, सो ब्रह्माकारवृत्तिकी आवृत्तिके निमित्त वेदांत अर्थका चिंतनही करै; उपासना नहीं. काहेतें, अंतःकरनकी निश्चलतामात्रसैं ब्रह्मानंदका विसेषरूपसैं भान

होवै नहीं; किंतु ब्रह्माकारवृत्तिसैंही होवै है. सो ब्रह्माकार-वृत्ति वेदांतचिंतनसैंही होवै है; उपासनासैं नहीं. औ अंतःकरनकी चंचलता बी विद्वानकूं वेदांतके चिंतनसैंही दूरि होय जावै है. यातैं अंतःकरनकी निश्चलताके निमित्त बी उपासनामैं प्रवृत्ति होवै नहीं. इसरीतिसैं दृढबोध जाके हुवा है, ताकी कर्मउपासनामैं प्रवृत्ति होवै नहीं. औ

जाके मंदबोध है, सो बी मनन औ निदिध्यासनही करै, कर्मउपासना नहीं. काहेतैं, मंदबोध जाकूं हुवा है, सो उत्तमजिज्ञासु है. ता उत्तमजिज्ञासुकूं मनननिदिध्यासनसैं विना अन्यकर्तव्य नहीं; यह वार्ता सारीरकमैं सूत्रकार औ भाष्यकारनै प्रतिपादन करी है. औ विद्वानकूं मनन-निदिध्यानस बी कर्तव्य नहीं. जो जीवन्मुक्तिके आनंद वास्तै विद्वान मननदिध्यासनमैं प्रवृत्त होवै है, सो बी अपनी इच्छासैं प्रवृत्त होवै है. औ "मैं वेदकी आज्ञा नहीं करूंगा, तौ मेरेकूं जन्ममरनसंसार होवैगा;" इसबुद्धिसैं जो किया करै, सो कर्तव्य कहिये है. सो जन्मादिकनकी बुद्धि विद्वानके होवै नहीं. यातैं अपनी इच्छातैं जो विद्वान मनन-निदिध्यासन करै, सो कर्तव्य नहीं. इसरीतिसैं मंदबोध अथवा दृढबोध जाके हुवा है, तिनकूं कर्मउपासना कर्तव्य नहीं. औ

जाके बोध नहीं हुवा है, किन्तु आत्माके जाननैकी तीव्र इच्छा है, भोगकी नहीं; ताका अंतःकरन सुद्ध है; यातैं सो बी उत्तमही जिज्ञासु है. ताकूं बी बोधके वास्तै श्रवनी-

दिकही कर्तव्य हैं, कर्मउपासना नहीं. काहेतैं, जो कर्मउपासना फल है, सो ताके सिद्ध है. औ ज्ञानकी सामान्यइच्छातैं जो श्रवनमैं प्रवृत्त हुवा है, औ अंतःकरन भोगनमैं आसक्त है, सो मंदजिज्ञासु हैं, सो बी श्रवनकूं त्यागिके फेरी कर्मउपासनामैं प्रवृत्त होवै नहीं जो. कर्मउपासनाका फल अंतःकरनकी सुद्धि औ निश्चलता है, सो ताकूं श्रवनसैंही होय जावैगा. श्रवनकी आवृत्तितै अंतःकरनका दोष दूरि होयके इसजन्मविषै अथवा अन्यजन्मविषै अथवा ब्रह्मलोकविषै ज्ञान होवै है. आवृत्ति नाम वारंवारका है. औ श्रवनकूं त्यागिके जो कर्मउपासनामैं प्रवृत्त होवै है, सो आरूढपतित कहिये है. इसरीतिसैं ज्ञानवान औ उत्तमजिज्ञासुका कर्मउपासनाविषै अधिकार नहीं. औ मंदजिज्ञासु बी जो वेदांतश्रवममैं प्रवृत्त हुवा है, ताका अधिकार नहीं. औ ज्ञानकी जाकूं इच्छा तौ है, परंतु भोगमैं बुद्धि आसक्त यातैं श्रवनमैं प्रवृत्त नहीं हुवा ऐसा जो मंदजिज्ञासु, ताका निष्कामकर्म औ उपासनामैं अधिकार है. औ

जाकी भोगविषैही आसक्ति है, ज्ञानकी इच्छा नहीं; ऐसा जो बहिर्मुख है, ताका सकामकर्मविषै बी अधिकार है. यातैं ज्ञानवानकूं कर्मउपासनाका अधिकार नहीं. कर्मउपासनाका ज्ञान विरोधी है. औ

कर्मउपासना बी अंतःकरनकी सुद्धि औ निश्चलताद्वारा ज्ञानकी उत्पत्तिके तौ हेतु है; परंतु ज्ञानकी उत्पत्तिसैं अनंतर जो कर्मउपासना करै, तौ उत्पन्न हुवा ज्ञान नष्ट

होय जावैगा, यातैं ज्ञानके विरोधी हैं, इच्छाके हेतु नहीं. काहेतैं "मैं कर्ता हूं, औ यज्ञादिक मेरेकूं कर्तव्य हैं, यज्ञादिकनका स्वर्गादि फल हैं;" या भेदबुद्धिसैं कर्म होवै है. औ "मैं उपासक हूं, देव उपास्य है;" या भेदबुद्धिसैं उपासना होवै है. सो दोनूंप्रकारकी बुद्धि "सर्व ब्रह्म है" या बुद्धिकुं दूरि करिके होवै है. यातैं कर्मउपासना ज्ञानके विरोधी हैं. यद्यपि ज्ञानवान आत्माकूं असंग जानै है, तौ वी देहका भोजनादिक व्यवहार, अथवा जनकादिकनकी न्याई अधिक राज्यपालनादिक व्यवहार, करै है, ता व्यवहारका ज्ञान विरोधी नहीं; औ व्यवहार ज्ञानका वी विरोधी नहीं. काहेतैं जो आत्मस्वरूप, ज्ञानसैं असंग जान्या है. ता आत्माविषैं जो व्यवहार प्रतीत होवै, तौ व्यवहारका विरोधी ज्ञान, तथा ज्ञानका विरोधी व्यवहार होवै; सो विद्वानकूं आत्माविषै व्यवहार प्रतीत होवै नहीं, किंतु संपूर्नव्यवहार देहादिकनके आश्रित हैं. औ आत्माविषै व्यवहारसहित देहादिकनका संबंध है नहीं. या बुद्धिसैं संपूर्नव्यवहार करै है. इसी कारनतैं विद्वानकी प्रवृत्ति वी निवृत्तिही कही हैं.

जैसैं अन्यव्यवहार ज्ञानका विरोधी नहीं, तैसैं कर्मउपासना वी अन्यबहिर्मुखपुरुषनके करावनै वास्तै आत्माकूं असंग जानिके, औ देह वाक अंतःकरनके आश्रित क्रिया जानिके जो कर्मउपासना करै, तौ ज्ञानके विरोधी नहीं. काहेतैं जो आत्मा विद्वाननैं असंग जान्या है, ताकूं कर्त्ता जानिके जो कर्मउपासना करै, तौ ज्ञानके विरोधी होवै. सो

आत्माका असंगरूप दृढनिश्चय कर्मउपासनासैं विद्वानका दूरि होवै नहीं. यातैं आभासरूप कर्म औ उपासना दृढज्ञानके विरोधी नहीं. इसीकारनतैं जनकादिकननैं आभासरूप कर्म करे हैं. जो आत्माकूं असंग जानिके और व्यवहारकी न्याई देहादिकनके धर्म जानिके विद्वान सुभक्रिया करै, सो आभासरूप कर्म कहिये है, ताका ज्ञानसैं विरोध नहीं. औ भाष्यकारनैं कर्मउपासनाका जो ज्ञानसैं विरोध कह्या है, सो आत्मामैं कर्त्ताबुद्धिसैं जो कर्मउपासना करै हैं, ताका विरोध कह्या है; औ आभासरूपसैं नहीं. तथापि

मंदबोधके आभासरूप कर्म, औ आभासरूप उपासना बी विरोधी हैं. काहेतैं, जो संसयादिक सहित बोध है, सो मंदबोध कहिये है. जाके अंतःकरनमैं "आत्मा असंग है, अथवा नहीं है" ऐसा कदाचित संसय होवै, सो पुरुष जो वारंवार " आत्मा असंग है, मेरेकूं किंचितमात्र बी कर्तव्य नहीं;" या अर्थकूं चिंतन करै, तब तौ संसय दूरि होयके दृढबोध होय जावै. औ कर्मउपासना करैगा, तौ मंदबोध जो उत्पन्न हुवा है, सो दूरि होयके "मैं कर्त्ता भोक्ता हूं," यह विपरीतनिश्चय होय जावैगा. यातैं मंदबोधकी उत्पत्तिसैं पूर्वही कर्मउपासना करै; औ अनंतर नहीं. जो मंदबोधवाला कर्मउपासना करैगा, तौ उत्पन्न हुवा बोध नष्ट होय जावैगा. दृष्टांतः—जैसै पक्षी अपनै अंडेकूं पक्षकी उत्पत्तिसैं पूर्व सेवन करै है; औ पक्षकी उत्पत्तिसैं अनंतर नहीं. जो पक्षकी उत्पत्तिसैं अनंतर बी अंडेकूं

सेवन करै; तौ बालकपछीके ता अंडेके जलसैं पछ गली जावै. तैसैं ज्ञानकी उत्पत्तिसैं पूर्वही कर्मउपासनाका सेवन करै; औ ज्ञानकी उत्पत्तिसैं अनंतर नहीं. जो ज्ञानकी उत्पत्तिसैं अनंतर बी कर्म उपासनाका सेवन करै; तौ बालकपछीकी न्याई मंदज्ञानका नास होय जावै, औ वृद्धपछीकी जैसै अंडेके संबंधसैं हानि होवै नहीं; तैसैं दृढबोधकी तौ हानि होवै नहीं, औ वृद्धपछीकी न्याई दृढबोधकूं कर्मउपासनासैं उपयोग बी नहीं. इसरीतिसैं ज्ञानवानकूं मोछके निमित्त किंचितमात्र बी कर्तव्य नहीं. यह तृतीयप्रश्नका उत्तर कह्या.

जो सिष्यकूं आचार्यनै उत्तर कहे, सो वेदके अनुसार कहे, यातैं यथार्थ है; यह वार्त्ता कहै हैः—

## दोहा.

**सिष्य कह्यो जो तोहि मैं, सर्व वेदको सार;**
**लहै ताहि अनयासही, संसृति नसै अपार. ११**

टीकाः—हे सिष्य ! जो मैं तेरेकूं कह्या सोसर्ववेदका सार है. यातैं याविषै विस्वास कर. औ याके जाननैतैं अनयास कहिये खेदविना अपार जो संसृति कहिये, जन्ममरनरूप संसार, ताका नास होवै है.

यद्यपि खेदका नाम आयास है; ताके अभावका नाम अनायास है; तथापि छंदके वास्तै अनयास पढ्या है. भाषामैं छंदके वास्ते गुरुके स्थानमैं लघु औ लघुके स्था-

नमैं गुरु पढनैका दोष नहीं. औ मोछके स्थानमैं मोछही भाषामैं पाठ होवै है. काहेतैं, यह भाषाकी संप्रदाय है.

दोहा

लघु गुरु गुरु लघु होत हैं, वृत्ति हेत उच्चार;
रू व्है अरुकी ठौरमैं, अवकी ठौर वकार. १
संयोगी क्ष न क पर खन, नहीं ट वर्ग णकार;
भाषामैं ऋ ऌ हू नहीं, अरु तालव्य शकार. २

टीकाः—इतनै अछर भाषामैं नहीं; कोइ लिखै तौ कवि असुद्ध कहै. क्षके स्थानमैं छ, खके स्थानमैं ष, णकारके स्थानमैं नकार, ऋऌके स्थानमैं रि लि है, शकारके स्थान सकार भाषामैं लिखनै योग्य है.

" जगतका कर्त्ता ईस्वर है, सो तेरेसैं भिन्न नहीं. औ सतचिंतआनंदरूप ब्रह्म तूं है. " यह आचार्यनैं कह्या, सोई कृपातैं फेरि कहै हैं.

कवित्व.

दीनताकूं त्यागि नर अपनो स्वरूप देखि,
तूं तौ सुद्धब्रह्म अज दृश्यको प्रकासी है;
आपनै अज्ञानतैं जगत सब तूंही रचै,
सर्वको संहार करै आप अविनासी है;
मिथ्यापरपंच देखि दुख जिन आनि जिय,
देवनको देव तूं तौ सब सुखरासी है;

जीव जग ईस होय मायासैं प्रभासैं तूहि,
जैसै रज्जुसाप सीप रूप व्है प्रभासी है. १९

अर्थ स्पष्ट.

कवित्व.

राग जारि लोभ हारि द्वेष मारि मार वारि,
वार वार मृगवारि पारवार पेखिये;
ज्ञानभान आनि तम तम तारि भागत्याग,
जीव सीव भेद छेद वेदन सु लेखिये;
वेदको विचार सार आपकूं संभारि यार,
टारि दासपास आस ईसकी न देखिये;
निश्चल तूं चल न अचल चल दल छल,
नभ नील तल मल तासूं न विसेखिये. १२

टीकाः—ज्ञानके साधन कहै हैं:—हे सिष्य ! राग जो पदार्थनमैं दृढ आसक्ति है, ताकूं जारिके, लोभकूं हारि कहिये नासकरि; द्वेषकूं मारि; मार कहिये कामकूं, वारि, दूरि कर. राग लोभ द्वेष कामके ग्रहनतैं, सर्व राजसीतामसीवृत्तिका ग्रहन है. यातैं सर्व राजसीतामसीवृत्तिका नास कर, यह अर्थ सिद्ध हुवा. राजसीवृत्ति औ तामसीवृत्ति ज्ञानकी विरोधी है. तिन्हके नासविना ज्ञान होवै नहीं। यातैं तिन्हकी निवृत्ति जिज्ञासूकूं अपेक्षित है. विवेक, वैराग्य, समादिषट्संपत्ति, मुमुछता; ये चारि जो ज्ञानके

साधन है, तिन्हमै विवेक• प्रधान है. काहेतैं विवेकसैं वैराग्यादिक उत्पन्न होवै है. यातैं विवेकका उपदेस आचार्य करै हैः-हे सिष्य ! पारवार जो संसार है, ताकूं वारंवार मृगवारि कहिये मृगतृस्नाके जलसमान मिथ्या जान. पारवार नाम संसारका है; औ अपारवार नाम आत्माका है. पारवार मिथ्या है; या कहनेतैं अपारवार मिथ्या नहीं; किंतु सत्य है; यह वार्ता अर्थसैं कही. जैसैं बाजीगरके तमासै देखते पुत्रकूं पिता कहैः-"हे पुत्र ! यह आम्रवृक्षसैं आदिलेके जो बाजीगरनै बनाये हैं, सो मिथ्या है," या कहनेतैं बाजीगरकूं मिथ्या नहीं जानै है; किंतु सत्य जानै है. तैसैं जगतकूं मिथ्या कहनेतैं आत्माकूं सत्य जानि लेवेगा. या अभिप्रायतैं आचार्यनै पारवार मिथ्या कह्या. इस रीतिसैं जगत मिथ्या है, औ आत्मा सत्य है; या विवेकका उपदेस कऱ्या. ता विवेकसैं अन्यसाधन आपही उत्पन्न होवै है. यातैं विवेकके उपदेसतैं सर्वसाधनका उपदेस अर्थसैं कह्या. ज्ञानके बहिरंगसाधन कहे, अंतरंगसाधन श्रवन कहै हैः-हे सिष्य ! ज्ञानरूपी जो भानु है, ताकूं आनि कहिये श्रवनसैं संपादन करिके, तम कहिये अज्ञानरूपी जो तम अंधेरा है, ताकूं तारि कहिये नास कर. तम नाम अंधेरे औ अज्ञानका है. अंधेरा उपमान है, औ अज्ञान उपमेय है; प्रथम जो तम सब्द है, सो उपमेयका वाचक है. औ दूसरा उपमानका वाचक है.

## दोहा.

जाकूं उपमा दीजिये, सो उपमेय बखानि,
जाकी उपमा दीजिये सो कहिये उपमानि. ३

ज्ञानका स्वरूप अन्यसास्त्रनमें नानाप्रकारका अंगीकार कीया है. यातें महावाक्यके अनुसार ज्ञानका स्वरूप कहे हैः-हे सिष्य! जीव औ ईस्वरविषै अविद्या औ मायाभागकूं त्यागिके तिन्हका जो भेद प्रतीत होवै है; ताकूं छेद कहिये दूरी करी, औ जीवईस्वरमें जो वेदन कहिये चेतनभाग है, ताकूं भेदरहित जान. या कहनेतें यह वार्त्ता कहीः-महावाक्यनमैं भागत्यागलछनातें जीवईस्वरकी एकता जान. सिवके स्थानमैं सीव पढ्या है. तृतीय पादका अर्थ स्पष्ट है.

पूर्वकहेअर्थकूं संछेपतें चतुर्थपादसैं कहे है. हे सिष्य! चल कहिये विनासी जो देहादिक संघात, सो तूं नहीं, किंतु अचल कहिये विनासी जो ब्रह्म सो तूं है. औ चलदल कहिये वृछरूप जो संसार, सो छल कहिये मिथ्या है. जैसें नभविषै नीलता, औ तलमल कहिये कटाहरूपता है नहीं किंतु मिथ्याप्रतीत होवै है. तैसें संसार बी आत्माविषै है नहीं, मिथ्याप्रतीत होवै है. वृछरूप करिके संसार, श्रुतिस्मृतिमैं कह्या है; यातें वृछके वाचक चलदल सब्दका संसारमैं प्रयोग कर्‍या है.

मोछका साधन ज्ञान है, या अर्थकूं अन्यप्रकारसैं कहेहैं.

## कवित्व.

बंध मोछ गेह देहवान ज्ञानवान जान,
राग रु विराग दोइ धजा फररात है,
विषेविषै सत्यभ्रम भ्रममति वात तात,
हललात प्रात रात घरि न ठहरात है;
साछ्य साछी पूतरी अनूजरी रु ऊजरी है,
देखि रागी त्यागी ललचात जन जात है;
चंचल अचल भ्रम ब्रह्म लखि रूप निज,
दुखकूप आनंद स्वरूपमैं समात है. १४

टीका.– हे सिष्य ! देहवान कहिये देहअभिमानी अज्ञानी, औ ज्ञानवान; बंध औ मोछके गेह कहिये धाम है. अज्ञानी तौ बंधका धाम है, औ ज्ञानी मोछका धाम है. राग औ विराग तिनकी धजा है. जैसे धजा राजाके नगरका चिन्ह होवै है, तैसें राग औ विराग तिन्हके चिन्ह है. अज्ञानीका राग चिन्ह है, औ ज्ञानीका विराग चिन्ह है. अज्ञानीविषे वी विराग होवै है; यातैं ज्ञानीका अज्ञानीसैं विलछन विराग कहे हैः- हे तात ! विषय जो सब्दादिक है, तिन्हविषे सत्यभ्रम कहिये, सत्यपनेकी भ्रांति, औ भ्रममति कहिये रज्जुसर्पकी न्याई विषय भ्रमरूप है; यह जो मतिनिश्चय सो वातकी न्याई राग औ विरागकूं हलावै है. जैसें वायु धजाकी चंचलता करै है, तैसें विषयमैं सत्यबुद्धि औ भ्रमबुद्धि, राग औ विरागकूं चंचल करै है; सिथिल होनें

देवै नहीं. विषयमैं सत्यबुद्धिसैं रागकी सिथिलता दूरि होवैं है. औ विषयमैं भ्रमबुद्धिसैं विरागकी सिथिलता दूरि होवै है.

विषय असत्य हैं, यातैं तिन्हमैं सत्यबुद्धि भ्रांतिरूप है. इस वार्त्ताके जनावनेकूं कवित्तमैं सत्यभ्रम कह्या, सत्य-बुद्धि नहीं कही. भ्रांतिज्ञान, औ भ्रांतिज्ञानका विषय जो मिथ्यावस्तु, सो दोनूं भ्रम कहिये है. या कहनेतैं अज्ञानीके विरागतैं ज्ञानीके विरागका भेद कह्या, काहेतैं, जो अज्ञा-नीका विराग है, सो विषयमैं मिथ्याबुद्धिसैं उत्पन्न नहीं हुवा; यातैं मंद है. विषय मिथ्या है, यह बुद्धि अज्ञानीकूं होवै नहीं. यद्यपि सास्त्रयुक्तिसैं अज्ञानी बी मिथ्या जानै है; तथापि विषय मिथ्या है, यह अपरोछमति ज्ञानवानकूं-ही होवै है; अज्ञानीकूं नहीं. यातैं अज्ञानीकूं विषयमैं परो-छ जो मिथ्याबुद्धि, तासैं अपरोछसत्यभ्रांति दूरि होवै नहीं इसरीतिसैं अज्ञानीकूं विषयमैं जब विराग होवै है, ता कालमैं परोछमिथ्याबुद्धि है बी परंतु परोछमिथ्याबुद्धिसैं प्र-बलअपरोछसत्यबुद्धि है; यातैं अज्ञानीकी परोछमिथ्याबुद्धि विरागकी हेतु नहीं. किंतु प्रबल जो सत्यबुद्धि, तासैं विष-यमैं रागही होवै है, औ जो विराग होवै, तौ बी मिथ्या-बुद्धिसैं नहीं. किंतु विषयमैं दोषदृष्टिसैं होवै है. औ ज्ञान-वान सर्वप्रपंचकूं अपरोछरूप करिके मिथ्या जानै है. ता अपरोछमिथ्याबुद्धिसैं, अपरोछसत्यबुद्धि दूरि होवै है; यातैं रागकी हेतु विषयमैं सत्यबुद्धि, तो ज्ञानकूं है नहीं; विरागकी हेतु विषयमैं मिथ्याबुद्धि ज्ञानवानकूं है. जो

ज्ञानीकूं विषयमैं सत्यबुद्धि फेरि होवै, तौ राग बी फेरि होवै, औ विराग दूरि होवै. सो अपरोछरूपतें मिथ्या जानै पदार्थमैं फेरि सत्यबुद्धि होवै नहीं. जैसें अपरोछरूपतें मिथ्या जान्या जो रज्जुमैं सर्प, ताकेविषै सत्यबुद्धि फेरि होवै नहीं. तैसें ज्ञानीकूं फेरि सत्यबुद्धि होवै नहीं. इसरीतिसें रागकी उत्पत्ति औ विरागकी निवृत्ति, ज्ञानीके होवै नहीं यातें ज्ञानीका विराग दृढ है. औ दोषदृष्टिसें जो अज्ञानीकूं विराग होवै है, सो तौ दूरि होय जावै है. काहेतैं, जा पदार्थनमैं दोषदृष्टि होवै है, ता पदार्थमैंही अन्यकालमैं सम्यकबुद्धि बी होय जावै है. जैसें सर्व पुरुषनकूं पसुधर्मके अंतमैं स्त्रीविषै दोषदृष्टि होवै है; औ कालांतरमैं फेरि सम्यकबुद्धि होवै है. इसरीतिसें दोषदृष्टि जब दूरि होवै, तब अज्ञानीका विराग बी दूरि होय जावै है, यातें अज्ञानीकूं दृढविराग होवै नहीं. इसरीतिसें राग औ विराग अज्ञानीके औ ज्ञानीके चिन्ह कहे.

और बी चिन्ह कहै हैः- हे सिष्य ! जैसै धामके ऊपरि पूतरि कहिये हस्तिआदिकनकी मूर्त्ति होवै है; तैसें बंधमोछका धाम जो अज्ञानी, औ ज्ञानीका अंतःकरन है; ताकेविषै साछ्यसाछी पूतरि है, अज्ञानी अंतःकरनविषै तौ साछ्यरूपी पूतरी है, औ ज्ञानी अंतःकरनमैं साछीरूपी पूतरी है. साछीका विषय जो प्रपंच है, ताकूं साछ्य कहै है. साछ्यरूपी पूतरी अनूजरी कहिये मलिन है. औ साछीरूपी पूतरी ऊजरी कहिये सुद्ध है. आगे अर्थ स्पष्ट है.

चंचलभ्रम निजरूप लखि, औ अचलब्रह्म निजरूप लखि, या क्रमतैं अन्वय है.

भागत्यागलच्छनाका जो कवित्वमैं विसेषकरिके ग्रहन किया है, ताविषै हेतु कहनेकूं लछनाका भेद कहै है.

दोहा.

त्रिविधिलछना कहत है, कोविद बुद्धि निधान;
जहती अरु अजहती पुनि भागत्याग निजज्ञान.
आदि दोइ नाहिं संभवै, महावाक्यमैं तात;
भागत्यागतैं रूप निज, ब्रह्मरूप दरसात. १६

अर्थ स्पष्ट.

## सिष्य उवाच.

### अर्ध संकर छंद.

अब लच्छना प्रभु कहत काकूं, दहु यह समुझाय;
पुनि भेद ताके तीनि तिनके, लच्छन हुं दरसाय. १७

टीका.-सामान्यज्ञानसैं अनंतर विसेषका ज्ञान होवै है. जैसैं सामान्यब्राह्मनका ज्ञान हुयेसैं अनंतर सारस्वतआदिक विषेका ज्ञान होवै है. तैसैं लछनासामान्यका ज्ञान होवै, तौ जहतीआदिक विसेषरूपनका ज्ञान होवै. लछनाका सामान्यरूप जानैं विना, जहतीआदिक विसेषरूपनका ज्ञान होवै नहीं. इस अभिप्रायतैं सिष्य कहै है:- हे प्रभो! लछना काकूं कहत हैं? यह मैं नहीं जानूं हूं. यातैं लछनाका सामा-

न्यरूप दिखायके तिसतैं अनंतर जो जहतीआदिक लछनाके तीनीभेद कहिये विसेष हैं; तिन्हके जुदेजुदेलछन दिखावो. छंदवास्तै प्रश्नोंकूं प्रश्नू पढ्या, औ भाषाकी संप्रदायतैं लक्ष-णाके स्थान लछना पढ्या; लक्षणके स्थान लछन पढ्या.

# गुरुवाक्य.

## संकरछंद.

श्रुति चित्त निज एकाग्र करि,
अव सिष्य सुनि मम वानि,
ज्यूं लच्छना अरु भेद ताके,
लेहु नीके जानि,
सुनि वृत्ति हैंद्वै भांति पदकी,
सक्ति नामैं एक,
तहां लच्छना पुनि जानि दूजी,
सुनहु सो सविवेक. १८

टीका.- पदका जो अर्थसैं संवंध, सो वृत्ति कहिये है सो वृत्ति दोप्रकारकी है. ता दोप्रकारमैं एक सक्तिवृत्ति है औ दूजी लछनावृत्ति है. तिनकूं सविवेक कहिये विवेकस-हित ग्याका अर्थ लछनसहित सुनि.

# अथ सक्ति लछन.

## दोहा.

जा पदतैं जा अर्थकी, व्है सूनतेंहि प्रतीति;

ऐसी इच्छा ईसकी सक्ति न्यायकी रीति. १९

टीका.-जा पदतें कहिये घटपदतें, जा अर्थकी कहिये कलसअर्थकी सुनतेंही प्रतीति कहिये ज्ञान सर्वपुरुषनकूं होवै, ऐसी जो ईस्वरकी इछा, ताकूं न्यायसास्त्रमैं सक्ति कहै है

# अथ स्वरीति सक्तिलछन.

## अर्ध संकरछंद.

सामर्थ्य पदकी सक्ति जानहु, वेदमत अनुसार.
सो वन्हिमैं जिम दाहकी, है सक्ति त्यूं निरधार. २०

टीका.- घटपदके श्रोताकूं कलसरूप अर्थके ज्ञान करनैका जो घटपदविषै सामर्थ्य, सोई घटपदमैं सक्ति है. तैसैं पटपदके श्रोताकूं वस्त्ररूप अर्थके ज्ञान करनैका जो पटपदविषै सामर्थ्य, सोई पटपदमैं सक्तिवृत्ति है. ऐसैं सर्वपदमैं जानि लेनी. दृष्टांतः-जैसैं वन्हिमैं अपनैसैं मिलतेही, वस्तुकूं दाह करनैकी सामर्थ्यरूप सक्ति है, तैसैं श्रोताके कर्नसैं मिलतेही वस्तुके ज्ञान करनैकी जो पदविषै सामर्थ्य, सो सक्ति कहिये है. सामर्थ्य नाम समर्थपनैका है जाकूं सामर्थाई कहै है; औ वल वी कहै है, जोर वी कहै है. जैसें अग्निमैं दाहकी सक्ति है, तैसें जलविषै गीला करनैकी, तृषा दूरि करनैकी, पिंड बांधनैकी, जो समर्थाई है; सो सक्ति है इसप्रकारसैं सर्वपदार्थनविषै अपना अपना कार्य करनैकी सामर्थ्य है, सोई सक्ति है: यह वेदका सिद्धांत है. ताहीकूं

निर्धार कहिये निश्चय कर, औ न्यायकी रिति त्यागनेकूं योग्य है.

## सिष्य उवाच.

### संकरछंद.

ननुवन्हिमैं नहिं सक्ति भासैं, वन्हि बिन कछु और,
है हेतुता जो दाहकी, सो वन्हिमैं तिहि ठौर;
इम पदनहुंमैं वर्नविन कछु, सक्ति भासत नाहिं,
या हेतुनैं जो ईसइच्छा, सक्ति सो मति माहिं. २१

टीकाः-ननुशब्द संदेहका वाचक है. वन्हिमैं ताके स्वरूपसैं जूदी सक्ति भासैकहिये प्रतीत होवै नहीं. औ पूर्वकह्या दाहका हेतु जो वन्हिमैं सामर्थ्य, सोई वन्हिमैं सक्ति है; सो बनै नहीं. काहेतैं, दाहकी हेतुता कहिये जनकता कारनपना केवल वन्हिमैंही है. अप्रसिद्धसामर्थ्य वन्हिमैं मानिके ताकेविषै हेतुता माननेका, औ प्रसिद्धवन्हिमैं हेतुता त्यागनेका कछु प्रयोजन नहीं. जैसैं दृष्टांतमैं, सक्ति नहीं संभवै, इम कहिये इसरीतिसैं पदनके विसैं वी वर्नका समुदाय जो पदनका स्वरूप, तासैं जूदी सक्ति भासै नहीं. औ ताका प्रयोजन वी नहीं. या हेतुतैं ईस्वरकी इच्छारूप जो न्यायकी रीतिसैं सक्ति, सोई मेरी मतिमांहि भासै है.

## गुरुरुवाच.

### संकरछंद.

प्रतिबंध होते वन्हितैं नहिं, दाह उपजै अंग,

उत्तेजकरु जब धरै तब, फिरि दहै वन्हि स्वसंग;
व्है वन्हिमैं जो हेतुता, तौ दाह व्है सबकाल;
जो नसैं उपजै वन्हि होत, हेतु सक्ति सु बाल. २२

टीकाः—हे अंग ! प्रिय ! प्रतिबंधके होते अग्निसैं दाह होवै नहीं. औ उत्तेजक समीप धरै, तब स्वसंग कहिये, अग्निसैं मिल्या जो पदार्थ ताका दाह, प्रतिबंध होते बी होवै है. जो सक्तिसैंविना केवलअग्निकूं दाहकी हेतुता होवै तौ सर्वकाल कहिये, उत्तेजकसहित प्रतिबंधकाल औ प्रतिबंध-रहितकालकी न्याई उत्तेजकरहित प्रतिबंधकालमैं बी दाह हुवा चाहिये. काहेतैं दाहका हेतु केवलअग्नि ताकालमैं बी है. औ स्वमतमैं तौ यह दोष नहीं. काहेतैं स्वमतमैं अग्निकी सक्ति, अथवा सक्तिसहित अग्नि दाहका हेतु है; केवल[illegible] नहीं. जहां प्रतिबंध है तहां यद्यपि प्रतिबंधसैं अग्निकं[illegible] नास वा तिरोधान नहीं बी होता; तथापि अग्निकी स[illegible]का नास वा तिरोधान होवै है. यातैं दाहका हेतु सक्ति अ-थवा सक्तिसहित अग्निका अभाव होनेतैं दाह होवै नहीं. औ जा स्थानमैं प्रतिबंधके समीप उत्तेजक आया है; तहां प्रतिबंधनै तौ अग्निकी सक्तिका नास वा तिरोधान करि दीया, परंतु उत्तेजकनै फेरि सक्तिकी उत्पत्ति वा प्रादुर्भाव किया है. यातैं प्रतिबंधके होते बी उत्तेजकके महात्मतैं दा-हका हेतु सक्ति वा सक्तिसहित अग्निके होनेतैं दाह होवै है. चतुर्थपादका अछरार्थ यह है:-हे बाल, अज्ञात तत्त्व ! जो नसैकहिये नासकूं प्राप्ति होवै प्रतिबंधतैं, औ उपजै उत्तेज-

कतैं, सु कहिये सो सक्ति दाहका हेतु है. कारजका जो विरोधी सो प्रतिवंध औ प्रतिबंधक कहिये है. औ प्रतिवंधकके होते कारजका साधक उत्तेजक कहिये है.

अग्निके स्थान प्रतिवंध औ उत्तेजक मनिमंत्रऔषध है. जा मनि वा मंत्र वा औषधके सन्निधानसैं दाह होवै नहीं, सो प्रतिवंधक, औ जा मनि मंत्र औषधके सन्निधानसैं प्रतिवंधक होते वी दाह होवै, सो उत्तेजक है.

## गुरुवाक्य.

### अर्धसंकरछंद.

सिष रीति यहं सववस्तुमें तूं, सक्ति लेहु पिछानी,
विन सक्ति नहिं कछु काज होवै, यहै निश्चैमानी.

टीकाः—हे सिप्य ! वन्हिकी न्याई जलआदिक सर्वपदार्थनविषै तूं सक्ति पिछान. सक्तिसैं विना किसी हेतुसैं कोई कार्य होवै नहीं. सार्धसंकरसैं सक्तिका प्रयोजन कह्या.

पूर्व जो सिप्यनैं प्रश्न कियाथाः— "सक्ति वन्हिसैं भिन्न प्रतीत होवै नहीं." ताका समाधान कहनैकूं अर्धसंकरसैं सक्तिका अनुभव दिखावै हैः—

### मूल अर्धसंकरछंद.

अव सक्ति यामैं है नाहिं वह, सक्ति उपजी और,
यह सक्तिको परसिद्ध अनुभव, लोपि है किस ठौर.

अर्थः—स्पष्ट. सिद्धांतकी रीतिसैं सक्तिका स्वरूप औ सक्तिमैं प्रमान निरूपन किया.

# अन्यमतकी सक्तिखंडन करै है.

## अर्धसंकरछंद.

जो सक्ति इच्छा ईसकी सो पदनके न नजीक,
मत न्यायको अन्यायया विधि, सक्तिजानि अ
लीक २५

टीकाः—जो ईस्वरकी इच्छारूप पदसक्ति कही, सो वनै नहीं. काहेतैं, ईस्वरकी इच्छा ईस्वरका धर्म है; यातैं ईस्वरमैं रहै. जो इच्छा सो पदकी सक्ति है, यह कहना वनै नहीं. जो पदका धर्म सक्ति होवै तो पदकी सक्ति है यह कहना बनै, यातैं पदकी सामर्थ्यरूपही पदकी सक्ति है; इसकी इच्छा पदके नजीक वी नहीं, सो पदकी सक्ति है; यह कहना बनै नहीं. अलीक नाम झूठका है.

# अथ वैय्याकरनरीति सक्तिलछन.

## अर्धसंकरछंद.

योग्यता जो अर्थकी पदमांहि सक्ति सु देखि;
यूं कहतवैय्याकरनभूषन, कारिकाहरि लेखि २६

टीकाः—पदकेविषै जो अर्थकी योग्यता कहिये अर्थके ज्ञानकी हेतुता हेतुपना सो पदमैं सक्ति है. जैसैं घटपदविषै कलसरूप अर्थके ज्ञानकी हेतुतारूप योग्यता है, सोई सक्ति है. इसरीतिसैं वैय्याकरनभूषनग्रंथमैं हरिकी कारिका

प्रमान लिखिके सक्ति कही है. अथवा वैय्याकरनके जो भूषन कहिये उत्तमवैय्याकरनतें हरिकी कारिका कहिये श्लोककूं देखिके कहत है.

# गुरुवाक्य.

## सार्धसंकरछंद.

सुनि सिष्य वैय्याकरनमतमैं प्रबलदूषन एक,
सामर्थ्य पदमैं है न वा यह, पूछि ताहि विवेक;
भाखै जु है तौ सक्ति मानहु, ताहि लोकप्रसिद्ध;
कहिनाहिजो असमर्थपदसो, योग्य ह्वैयहसिद्ध
असमर्थ है पद अर्थ योग्य रु, कहतही सविरोध;
जो औरदूषन देखनो तौ ग्रंथदर्पन सोध. २८

टीका:—प्रथमपाद स्पष्ट. हे सिष्य! अर्थज्ञानकी हेतुतारूप योग्यताकूं जो सक्ति मानै है; ताकूं यह विवेक पूछि:-तेरे मतमैं पदविषै सामर्थ्य है, अथवा नहीं है? प्रथमपक्ष कहै तौ हमारे मतकी सक्ति बलसैं सिद्ध होवै है. यह तृतीयपादसैं कहै है. भाखै जु है तौ, इति. याका अन्वय:- जु कहिये जो भाषै है, तौ लोकप्रसिद्ध सक्ति ताहि मानहू. अर्थ जो वैयाकरनी कहै, पदमैं सामर्थ्य हैं, तौ लोकमैं प्रसिद्ध जो सामर्थ्यरूप सक्ति हैं, ताहि पदमैं बी मानहू. पदमैं अर्थज्ञानकी जनकतारूप योग्यताकूं सक्ति मति मान.

अभिप्राय यह हैः—जो पदमैं सामर्थ्य अंगीकार क ताकूं सामर्थ्यसैं भिन्नरूप सक्तिका मानना योग्य नहीं. किंतु सामर्थ्यरूपही सक्ति है; यह मानना योग्य है. काहेतैं, सामर्थ्य वल जोर सक्ति, ये च्यारिनाम एकवस्तुके लोकमैं प्रसिद्ध है. जोरहीनकूं लोक कहै है, यह सामर्थ्यहीन है, वलहीन है, सक्तिहीन है; और भर्जित अन्यकूं कहै है. याकेविषै अंकूरउत्पत्तिकी सामर्थ्य नहीं है, वल नहीं है, सक्ति नहीं है, जोर नहीं है. इसरीतिसैं सामर्थ्य औ सक्तिकी एकता लोकमैं प्रसिद्ध है. औ वन्हिमैं वी सामर्थ्यरूपही सक्ति निर्नीत है. यातैं पदमैं सामर्थ्यरूपही सक्ति माननी योग्य है. औ पदमैं सामर्थ्य मानिके तासैं भिन्न योग्यताकूं सक्ति कहनेका लोकप्रसिद्धिके विरोधबि ना और फल नहीं. केवल लोकप्रसिद्धिका विरोधही फल है. औ

जो ऐसे कहै, सामर्थ्यकूंही हम योग्यता कहै है, तौ हमाराही मत सिद्ध होवै है. औ ऐसैं कहै, हम सामर्थ्य अंगीकार करै तौ सामर्थ्यरूप सक्ति पदमैं संभवै; सो सामर्थ्यकूं अंगीकारही नहीं करते. यातैं अर्थज्ञानकी जनकतारूप योग्यताही पदमैं सक्ति है. ताकूं यह पुछ्या चाहियेः-

सामर्थ्यका अभाव केवलपदमैंही अंगीकार करै है, अथवा वन्हिआदिक सर्वपदार्थनमैं सामर्थ्यका अभाव अंगीकार करै है? जो अंत्यपछ कहै, तौ वन्हिआदिक पदार्थनमैं सामर्थ्यरूप सक्तिके प्रतिपादनमैं उक्त जो जुक्ति,

तिन्हतैं खंडित है औ प्रथमपछ कहैं तो ताकेविषै अंत्यपछ-उक्तदोष तौ यद्यपि नहीं है; काहेतैं, जो वंन्हिआदिक सर्व-पदार्थनमें सामर्थ्यरूप सक्ति नहीं माने, तौ प्रतिवंधकतैं दाहका अभाव बनै नहीं. यह अंत्यपछमैं दोष है; सो दोष प्रथमपछमैं नहीं. काहेतैं, वन्हिआदिक सर्व पदार्थनमैं तौ सामर्थ्यरूप सक्ति है; यातैं प्रतिवंधकतैं दाहके अभावका असंभव नहीं. परंतु पदकेविषै अर्थज्ञानकी जनकतारूप योग्यतासैं भिन्न सामर्थ्यरूप सक्ति नहीं किंतु पदमैं अर्थकी योग्यताही सक्ति है. यह प्रथमपछ है. ताकेविषै प्रतिवंधकतैं दाहका असंभवरूप दोष तौ नहीं, तथापि,

पदविषै वी वन्हिकी न्याई सामर्थ्यका अंगीकार अवस्य किया चाहिये; यह प्रतिपादन करै हैं, संकरके दोपादनतैं:- नांहि जो असमर्थ, इत्यादि सविरोध पर्यंत. अर्थ नांहि कहिये पदमैं सामर्थ्यका अंगीकार नहीं, तौ जो असमर्थपद सो योग्य, कहिये अर्थज्ञानका जनक है; यह सिद्ध कहिये मतका निश्चै है, सो असंगत है. काहेतै, पद असमर्थ है, औ अर्थयोग्य, कहिये अर्थज्ञानका जनक है; यह वाक्य नपुंसकका अमोघवीर्य है; इसवाक्यकी न्याई कहतेही सविरोध है; विरोधसहित है. सामर्थ्यसहितका नाम समर्थ है. औ सामर्थ्यरहितका नाम असमर्थ है. असमर्थसैं कोई कार्य होवै नहीं, यह लोकमैं प्रसिद्ध है. यातैं असमर्थपदसैं वी अर्थका ज्ञानरूप कार्य बनै नहीं. यातैं पदमैं सामर्थ्य मानना योग्य है. जब सामर्थ्यपदमैं अंगीकार किया तब

सक्ति बी पदमैं सामर्थ्यरूपही माननी योग्य है. इसरीतिसैं अर्थज्ञानकी जनकतारूप योग्यता, पदमैं सक्ति नहीं, किंतु सामर्थ्यरूपही सक्ति है. जो वैय्याकरनमतमैं औरदूषन देखना होवै, तौं सक्तिके निरूपनमैं दर्पनग्रंथकूं सोध, कहिये देख. दूषन क्लिष्ट है, यातैं दर्पनउक्तदूषन लिख्या नहीं..

## अथ भट्टरीतिसक्तिलछन.

### अर्धसंकरछंद.

संबंध पदको अर्थसैं तादात्म्य सक्ति सु वेद;
इम भट्टके अनुसारि भाखत, ताहि भेदाभेद. २९

टीकाः-पदका अर्थसैं जो तादात्म्यसंबंध, ताकूं भट्टके अनुसारी सक्ति कहै हैं. सो वेद कहिये तूं जान. ताहि कहिये तिस तादात्म्यकूं भेदाभेदरूप कहै हैं. यह तिन्हका अभिप्राय हैः-अग्निपदका अंगारअर्थसैं अत्यंतभेद नहीं. जो अत्यंतभेद होवै तौ जैसैं अग्निपदसैं अत्यंतभिन्न जलआदिक है; तिन्हकी अग्निपदसैं प्रतीति होवै नहीं. तैसैं अग्निपदसैं अंगाररूप अर्थकी प्रतीति नहीं होवैगी. पदसैं अत्यंतभिन्न-अर्थकी प्रतीति होवै नहीं. जैसैं पदका अपनै अर्थसैं अत्यंतभेद नहीं; तैसैं अत्यंतअभेद बी नहीं. जो अत्यंतअभेद वाच्यवाचकका होवै; तौ जैसैं अग्निपदके वाच्य अंगारसैं मुखका दाह होवै है; तैसैं अंगारका वांचक अग्निपदके उच्चारन कियेतैं बी मुखका दाह हुवा चाहिये. औ पदके उच्चारनतैं दाह होवै नहीं; यातैं अत्यंतअभेद बी

नहीं, किंतु अग्निपदका अंगाररूप अर्थसैं, भेदसहित अभेद है. भेद है यातैं दाह होवै नहीं; औ अभेद है यातैं अग्निपदतैं जलआदिकनकी न्याई अंगारकी प्रतीतिका असंभव बी नहीं. जैसै अग्निपदकां अंगाररूप अर्थसैं भेदसहित अभेद है; तैसैं उदक, वन, जल, दक, जीवनपदनका पानीरूप अर्थसैं भेदसहित अभेद है. जो अत्यंतभेद होवै तौ जैसै उदकआदिक पदनतै अत्यंतभिन्न अग्निआदिक पदनतैं अत्यंतभिन्न अग्निआदिक है; तिन्हकी उदकआदिक पदनतै प्रतीति होवै नहीं. तैसै पानीरूप अर्थकी बी उदकआदिक पदनतैं प्रतीति नहीं होवैगी; यातै अत्यंतभेद नहीं; औ अत्यंतअभेद वी नहीं. जो अत्यंतअभेद होवै, तौ जैसै पानीतैं मुखमैं सीतलता होवै है; तैसै उदकआदिक पदनके उच्चारनतैं बी मुखमैं सीतलता हुई चाहिये; औ पदनतैं सीतलता होवै नहीं, यातैं अत्यंतअभेद नहीं. किंतु भेदसहित अभेद होनैतैं दोऊ दोष नहीं. इसरीतिसैं सर्वत्रही अपनेअपनै वाच्यतैं; वाचकपदनका भेदसहितअभेद है. ता भेदसहितअभेदकूंही, भट्टके अनुसारी तादात्म्यसंबंध कहै है; औ भेदाभेद कहै है. सो भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंधही, सर्वपदनमैं अपनैं अपनैं अर्थकी सक्ति है. तादात्म्यसंबंधसैं जुदी सामर्थ्यरूप सक्ति नहीं. भेदाभेदमैं जुक्ति कही.

अब प्रमान कहै हैः—

## अर्धसंकरछंद.

यह ॐअछर ब्रह्म है यूं कहत वेद अभेद;
पुनि वानिमैं पद अर्थ बाहरि, देखियत यह भेद.

टीकाः—मांडूक्यआदिक वेदवाक्यनमैं "ॐअछर ब्रह्महै" यह कह्या है. तहां व्याकरनकी रीतिसैं प्रकासरूप सर्वकी रछाकरता ॐअछरका अर्थ है. ऐसा ब्रह्म है. यातैं ॐअछर ब्रह्मका वाचक है; औ ब्रह्म वाच्य है. जो वाच्यवाचकका आपसमैं अत्यंतभेद होवै, तौ वाचक ॐअछरका औ वाच्य ब्रह्मका, मांडूक्यआदिकनमैं अभेद नहीं कहते. औ "ॐ-अछर ब्रह्म है," इसरीतिसैं अभेद कह्या है. यातैं वाच्य-वाचकके अभेदमैं वेदवचन प्रमान है. औ सर्वलोककी प्रतीतिसैं वाच्यवाचकका भेद सिद्ध है. काहेतैं, अग्निआदि-क पद वानीमैं हैं, औअंगारआदिक तिनका अर्थ वानितैं बाहरि चुल्हिआदिकनमैं हैं. तैसैं ॐअछररूप पद वानीमैं है, औ ताका अर्थ ब्रह्म, वानीमैं नहीं है; किंतु वानीतैं बाह-रि कहिये अपनै महीमामैं है. यद्यपि ब्रह्म व्यापक है; यातैं वानीमैं ब्रह्मका अभाव नहीं; तथापि ब्रह्ममैं वानी है; औ वानीमैं ब्रह्म नहीं; इसरीतिसैं सर्वलोकनकूं पद वानीमैं; औ अर्थ वानीतैं बाहरि प्रतीत होवै है. यातैं पदका औ अर्थका भेद लोकमैं प्रसिद्ध है. इसरीतिसैं वाच्यवाचकके भेदमैं सर्वलोकका अनुभव प्रमान है, औ तिन्हके अभे-दमैं वेदवचन प्रमान हैं यातैं पदका अर्थसैं भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंध अप्रमान नहीं; किंतु प्रमानसिद्ध है.

प्रसंगतें अन्यस्थानमैं. वी भेदाभेदतादात्म्यसंबंध दिखावै हैः—

## अर्धसंकरछंद.

जो गुन गुनी औ जाति व्यक्ती, क्रिया अरु तद्वान;
संबंध लखि तादात्म्य इनको, कार्य कारन सान ३१

टीकाः-रूप रस गंध आदिक गुन हैं, तिन्हका आश्रय गुनी कहिये है. जैसें रूपआदिकनका आश्रय भूमि गुनी है. अनेकनकेमांहि रहै जो एकधर्म, सो जाति कहिये है. जैसें सर्वब्राह्मणसरीरनके मांहि एक ब्राह्मनत्व है, औ सर्वसूद्रमांहि सूद्रत्व है; औ सर्वजीवनमांहि जीवत्व है, पुरुषनमैं-पुरुषत्व है; सर्वघटनमांहि घटत्व है. जाकूं लोकमांहि ब्राह्मनपना, सूद्रपना, जीवपना, पुरुषपना, घटपना कहते हैं, सोई ब्राह्मनआदिक सरीरनमांहि, ब्राह्मनत्वआदिक जाति हैं. जातिका आश्रय जो ब्राह्मनआदिक, सो व्यक्ति कहिये है. गमनआगमनआदिक क्रिया कहिये है, औ तद्वान कहिये तिसवाला, अर्थ-यह, क्रियाका आश्रय.इतनै पदार्थनका तादात्म्यसंबंध है; यह लखि कहिये जानि. औ कारनकार्यकूं सान, कहिये गुनगुनीआदिकविषे मिलाव. अभिप्राय यह हैः—कारनकार्जका वी गुनगुनीकी न्याई तादात्म्यसंबंध है. गुनका औ गुनीका आपसमैं तादात्म्यसंबंध है. जातिका औ व्यक्तिका आपसमें तादात्म्यसंबंध है. तैसें क्रिया औ क्रियावानका तादात्म्यसंबंध है. कारनका औ

कार्यका वी तादात्म्यसंबंध है, तादात्म्य नाम भेदसहित अभेदका है.

यद्यपि निमित्तकारनका औ कार्यका तौ भेदाभेदरूप तादात्म्य नहीं है; किंतु अत्यंतभेद है; तथापि उपादानकारनका औ कार्यका, भेदाभेदरूप तादात्म्यही संबंध है. जैसैं घटके निमित्तकारन, कुलालदंडआदिक हैं; तिनका घटरूप कार्यसैं अत्यंतभेद वी है, परंतु उपादानकारन मृत्तिकापिंड औ घटकार्यका भेदसहित अभेद है. जो मृत्तिकापिंडसैं घट अत्यंतभिन्न होवै, तौ जैसैं मृत्तिकापिंडसैं अत्यंतभिन्नतैलकी उत्पत्ति होवै नहीं; तैसें घटकी वी उत्पत्ति नहीं होवैगी. औ उपादानकारनका कार्यतैं अत्यंतअभेद होवै; तौ वी मृत्पिंडसैं घटकी उत्पत्ति होवै नहीं. काहेतैं, अपनै स्वरूपसैं अपनी उत्पत्ति होवै नहीं. यातैं उपादानकारनका कार्यतैं भेदसहितअभेद है. यातैं अत्यंत अभेदपक्षका दोष नहीं.इसरीतिसैं उपादानकारनका कार्यतैं भेदाभेद युक्तिसिद्ध है. औ प्रतीतिसैं वी उपादानतैं कार्यका भेदाभेदही सिद्ध है. यह मृत्पिंड है, यह घट है, इसरीतिकी भिन्नप्रतीतिसैं भेद सिद्ध होवै है. औ विचारतैं देखैं तौ घटके बाहरिभीतर मृत्तिकासैं भिन्न कुछवस्तु प्रतीति होवै नहीं, किंतु मृत्तिकाही प्रतीत होवै है; यातैं अभेद सिद्ध होवै है. इसरीतिसैं उपादानकारनका, कार्यतैं भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंध है. तैसैं गुन औ गुनीका वी भेदाभेद है. जो घटके रूपका घटसैं अत्यंतभेद होवै तौ जैसैं घटतैं पटका अत्यंतभेद है; सो पट

घटके आश्रित नहीं किंतु स्वतंत्र है; तैसें घटका रूप बी घटके आश्रित नहीं होवैगा. औ गुनगुनीका अत्यंत अभेद होवै तोबी घटका रूप घटके आश्रित बनै नहीं. काहेतैं, अपना आश्रय आप होवै नहीं. यातैं गुनगुनीका भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंध है; यह जुक्ति, जाति औ व्यक्ति तथा क्रिया औ क्रियावालेके भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंधमैं जाननी. औ खंडन करना जो मत, ताकेविषै बहुतजुक्ति कहनैका प्रयोजन नहीं; यातैं औरजुक्ति नहीं लिखी.

# अथ भट्टमतखंडन.

## दोहा

एक वस्तुको एकमैं, भेदअभेद विरुद्ध;
जुक्तिजुक्त यातैं कहत, यह मत सकल असुद्ध.

टीका:— अछरअर्थ स्पष्ट. अभिप्राय यह है:— यद्यपि एक घटमैं अपना अभेद है; औ परका भेद है तथापि जाका अभेद है, ताका भेद नहीं, औ जाका भेद है ताका अभेद नहीं; इस अभिप्रायतैं एक वस्तुका भेदअभेद विरुद्ध कह्या है. तथा एकवस्तुका कहिये, घटकाही अपनेमैं अभेद औ परमैं भेद है. परंतु जामैं अभेद है तामैं भेद नहीं, औ जामैं भेद है तामैं अभेद नहीं. इस अभिप्रायतैं एकवस्तुका भेदअभेद एकमैं विरुद्ध कह्या है. भेदअभेद आपसमैं विरोधी हैं. एकवस्तुमैं जाका भेद होवै ताका अभेद, औ जाका अभेद होवै ताका भेद विरुद्ध है. यातैं वाच्यवाचक, गुन-

गुनी, जातिव्यक्ति, क्रियाक्रियावान, उपादानकारन कार्य-का, जो भेदाभेदरूप तादात्म्य अंगीकार किया, सो असुद्ध है.

पूर्व वाच्यवाचकके भेदाभेदमैं प्रमान जो कह्या:—"बानीमैं वाचक औ बाहरि वाच्य, यातैं भेद, औ श्रुतिमैं ॐअछर ब्रह्म कह्या है; यातैं अभेद". ताका समाधान:—

## दोहा

**प्रनववर्न अरु ब्रह्मको, कह्यो जु वेदअभेद;**
**तामैं अन्यरहस्य कछु, लख्यो न भट्ट सु भेद. ३३**

टीका:—प्रनववर्न कहिये ॐअछर अरु ब्रह्मका जो वेदमैं अभेद कह्या है, ता वेदवचनका वाच्यवाचकके अभेदमैं तात्पर्य नहीं. किंतु तामैं अन्यही रहस्य कहिये गोप्यअभि-प्राय है. सो भेद कहिये अभिप्राय भट्टनै लिख्या नहीं. जहां ॐअछर ब्रह्म कह्या है, तिस वाक्यका ॐअछर औ ब्रह्मके अभेदमैं तात्पर्य नहीं हैं, किंतु "ओंअछरकूं ब्रह्मरूप करिके उपासना करै; इस अर्थमैं तात्पर्य है. उपासना जा की विधान करी है, ता उपास्यके स्वरूपका यह नियम नहीं है:—जैसी उपासना विधान करी है; तैसाही उपास्यका स्वरूप होवै है, किंतु जैसा वस्तुका स्वरूप है ताकूं त्यागिके-अन्यस्वरूपकी बी ताकेविषे उपासना करिये है. जैसैं सा-लिग्राम औ नर्बदेस्वरकी, बिस्नुरूप औ सिवरूप करिके उ-पासना कही है. तहां संख.चक्र आदिक सहित चतुर्भुजमू-र्त्तिसालिग्रामकी नहीं है. औ गंगा भूषित जटाजूट डमरु

चर्म कपालिकासंहित, भद्रामुद्रासैं मरनांगतनकूं त्रिगुनरहित आत्माका उपदेस देनैवाली मूर्ति नर्बदेस्वरकी नहीं है; किंतु दोनुं सिलारूप हैं. औ सास्त्रकी आज्ञातैं तिन सिलारूपकी दृष्टि त्यागीके, दोनुंविषै क्रमतैं विस्नुरूप औ सिवरूपकी उपासना करिये है. यातैं उपास्यके स्वरूपके आधीन उपासना नहीं होवै है; किंतु विधिके आधीन है. जैसै सास्त्रका वचन विधान करै, तैसी उपासना करे. जैसै छांदोग्य उपनिषद्मैं, पंचाग्निविद्याप्रकरनमैं; स्वर्गलोक, मेघ, भूमि, पुरुष, स्त्री; इन पांचपदार्थनकी अग्निरूपकरिके उपासना कही है. औ श्रद्धा, सोम, वर्षा, अन्न, वीर्य; इन पांचपदार्थनकी पंच अग्निकी आहुतिरूप उपासना कही है. तहां स्वर्गआदिक अग्नि नहीं है; औ श्रद्धासोमआदिक आहुति नहीं है; तथापि वेदकी आज्ञातैं स्वर्गलोकादिकनकी अग्निरूपतैं; औ श्रद्धाआदिकनकी आहुतिरूपतैं उपासना करिये है. इसरीतिसैं ओंअछरकी ब्रह्मरूपकरिके उपासना कही है. तहां ओंअछर ब्रह्मरूप नहीं है; तौबी ब्रह्मरूपकरिके उपासना बनै है.

उपासनावाक्यमैं वस्तुके अभेदकी अपेछा नहीं, किंतु भिन्नवस्तुकी वी अभिन्नरूपतैं उपासना होवै है. औ विचारतैं देखिये तौ ब्रह्मका वाचक जो ओंअछर है. ताका तौ अपनै वाच्य ब्रह्मतैं अभेद बनै वी है. घटआदिक अन्यपदनका अपनैअपनै जडरूप अर्थसैं अभेद बनै नहीं. काहेतैं, सर्वनामरूप ब्रह्ममैं कल्पित है; ब्रह्मअधिष्ठान है. ॐअछरवी

अर्थतें भिन्नअर्थकी प्रतीति होवै नहीं. इसरीतिसैं जा पदमैं जिस अर्थकी सक्ति है; ताहि अर्थकी तिसपदसैं प्रतीति होवैं है; अन्यअर्थकी नहीं. यातैं वाच्यवाचकके अत्यंतभेदमैं दोष नहीं. तिनका भेदसहित अभेदरूप तादात्म्यसंबंध बनै नहीं.

भेद औ अभेद आपसमैं विरोधी है. तैसैं उपादानकारनका कार्यतैं भेदसहित अभेद नहीं; केवलभेद है. औ केवलभेदमैं जो दोष कह्या है. सो नैयायिक औ सक्तिवादीके मतमैं नहीं. काहेतैं, कारनकार्यके अत्यंतभेदमैं यह दोष है:—जो मृत्पिंडसैं अत्यंतभिन्न घटकी उत्पत्ति होवै, तो अत्यंतभिन्न तैलकी बी मृत्पिंडसैं उत्पत्ति हुई चाहिये. औ अत्यंतभिन्न तैलकी उत्पत्ति नहीं होवैगी; तौ अत्यंतभिन्न घटकी बी मृत्पिंडसैं उत्पत्ति नहीं हुई चाहिये.

यह दोष नैयायिकमतमैं नहीं. काहेतैं, सर्ववस्तुकी उत्पतिमैं नैयायिक प्रागभावकूं कारन मानै है. जैसैं घटकी उत्पतिमैं दंड, चक्र, कुलाल, कारन है; तैसैं घटका प्रागभाव बी घटका कारन है. तैसैं सर्वका प्रागभाव सर्वकी उत्पत्तिमैं कारन है. सो घटका प्रागभाव घटके उपदानकारन मृत्पिंडमैं रहै है; अन्यमैं नहीं. तैलका प्रागभाव तिलनमैं रहै है; अन्यमैं नहीं. ऐसैं सर्वकार्यनका प्रागभाव अपनैअपनै उपादानकारनमैं रहै है. जिस पदार्थनमैं जाका प्रागभाग होवै, तिस पदार्थसैं ताकी उत्पत्ति होवै है; अन्य-

की नहीं. जैसें मृत्पिंडमैं घटका प्रागभाव है; यातें मृत्पिंडसैं घटकीही उत्पत्ति होवै है; तैलकी नहीं. औ तैलका प्रागभाव तिलनमैं रहै है; यातैं तिलनतैं तैलकीही उत्पत्ति होवै है, घटकी नहीं. ऐसें सर्वकार्यमै प्रागभाव कारण है. यातैं कारनकार्यका अत्यंतभेद माननैंतैं नैयायिकमतमैं दोष नहीं. औ

सामर्थ्यरूप सक्तिवादीके मतमैं दोष नहीं. काहेतैं, मृत्पिंडमैं घटकी सामर्थ्यरूप सक्ति है, तैलकी नहीं. औ तिलनमैं तैलकी सामर्थ्य है; घटकी नहीं. यातैं मृत्पिंडतैं घटकीही उत्पत्ति होवै है, औ तैलकी नहीं तसैं तिलनतैं तैलकीही उत्पत्ति होवै है, घटकी नहीं. इसरीतिसें उपादानकारनका और कार्यका अत्यंतभेद माननेंमैं दोष नहीं. भेदाभेद असंगत है. औ भेदमैं तथा अभेदमैं जो दोष भट्टनै कहे है; सो दोनूंपछके दोष भट्टके मतमैं अवस्य रहैं है. काहेतैं; भट्टनैं भेदसहित अभेद अंगीकार किया है. यातैं यह अर्थसिद्ध हुवाः—कारनकार्यका भेद बी है, औ अभेद बी है. भेद है यातैं भेदपछउक्तदोष होवैंगे; औ अभेद है यातैं अभेदपछउक्तदोष होवैंगे. जैसें चोरीका दोष औ द्यूतका दोष जो एक एक करनैंवालेकूं कहे है; सो दोउव्यसन जाके होवै, ताके चोरीद्यूत दोनूंके दोष होवै है. तसैं गुनगुनीआदिकनकै भेदाभेद माननैंतैं बी, भेदपछ औ अभेदपछके दोनूंदोष होवैंगे. औ सक्तिवादीके मतमैं केवल भेद अंगीकार कियेतैं दोष नहीं. काहेतैं गुनीमैं गुनके धार-

नैकी सक्ति है; अन्यकी नहीं. यातैं भेदपछमैं जो दोष कह्या थाः—घटके रूपादिक जैसें घटसैं भिन्न है, तैसें पटआदिक बी घटसैं भिन्न है. रूपादिकनकी न्याई पटआदिक बी घटमैं रहे चाहिये. अथवा पटआदिकनकी न्याई रूपादिक बी नहीं रहे चाहिये. सो दोष. सक्ति नहीं अंगीकार करै ताके मतमैं है. सक्तिवादीके मतमैं केवलभेद माननैंतैं बी दोष नहीं. उलटा भट्टमतमैं भेद अभेद दोनो माननैंतैं, दोनूंपछके दोष, उक्तदृष्टांतसैं है. औ भेदअभेद विरोधी धर्मका असंभवदोष है. तैसें जातिव्यक्तिका औ क्रियाक्रियावानका बी केवलभेद है. तथापि व्यक्तिमैं जातिके धारनैंकी सक्ति है; औ क्रियावानमैं क्रिया धारनैंकी सक्ति है; अन्य धारनैंकी सक्ति नहीं. इसरीतिसैं उपादान औ कार्यका तथा गुनगुनीआदिकनका भेदाभेदरूप तादात्म्यसंबंध असंगत है. सर्वका आपसमैं भेद माननैंमैं भट्टउक्तदोषनकूं सक्ति पसै है. यद्यपि वेदांतसिद्धांतमैं बी, कार्य गुन जाति क्रियाका, उपादान गुनी व्यक्ति क्रियावानतैं अत्यंत भेद नहीं, किंतु तादात्म्यसंबंधही अंगीकार किया है; तथापि वेदांतमतमैं भेदाभेदरूप तादात्म्य नहीं, किंतु भेद औ अभेदसैं विलछन अनिर्वचनीयरूप तादात्म्यसंबंध है. भेदसैं विलछन है, यातैं अभेदपछके दोष नहीं, औ अभेदसैं विलछन है, यातैं अभेदपछके दोष नहीं, इसरीतिसैं भेदाभेदसैं विलछन अनिर्वचनीयतादात्म्यसंबंध है. परंतु भेदाभेदरूप तादात्म्य असंगत है. यातैं "वाचकवाच्यका भेदा-

भेदरूप तादात्म्यसंबंधही सक्ति है," यह भट्टअनुसारीका पछ समीचीन नहीं. किंतु पदके सुनतेही अर्थके ज्ञान करनैकी जो पदमैं सामर्थ्य, सोई पदमैं सक्ति है. इति सक्तिनिरूपन.

लछनाके ज्ञानमैं सक्यका ज्ञान उपयोगी है. काहेतैं, सक्यसंबंध लछनाका स्वरूप है. सक्य जानैं बिना सक्य संबंधरूप लछनाका ज्ञान होवै नहीं. यातैं सक्यका लछन कहै हैः—

## दोहा.

व्है पदमैं जा अर्थकी, सक्ति सक्य सो जानि;
वाच्यअर्थ पुनि कहत तिहि, वाचक पदहि पिछानि

टीकाः—जा पदमैं जा अर्थकी सक्ति होई, ता पदका सो अर्थ सक्य जानि. औ सक्यअर्थ कूंही वाच्य अर्थबी कहै है. जैसैं अग्निपदमैं अंगाररूप अर्थकी सक्ति है; यातैं अग्निपदका अंगार सक्यअर्थ औ वाच्यअर्थ कहिये है. औ वाच्यअर्थका बोधकपद वाचक कहिये है.

# अथ लछना औ जहतिआदिक भेद लछन.

## कवित्व.

सक्यको संबंध जो स्वरूप जानि लछनको,

लछंना सो भान जाको लछ्य सु पिछानिये;
वाच्यअर्थ सारो त्यागि वाच्यको संबंध जहां,
होई प्रतीति तहां जहती वखानिये;
वाच्यजुत वाच्यके संबंधीका जु ज्ञान होय,
तांहि ठौर लछना अजहतिहि मानिये;
एक वाच्य भागत्याग होत तहां भागत्याग,
दूजो नाम जहती अजहती प्रमानिये. ३५

टीकाः—सक्य कहिये वाच्यअर्थका जो संबंध कहिये मिलाप, सो लछनाका स्वरूप कहिये लछन जानि. औ जा अर्थका पदकी सक्तिसैं ज्ञान न होवै, किंतु लछनातैं भान कहिये ज्ञान होवै, सो पदका लछ्यअर्थ कहिये है. एकपादसैं लछनाका स्वरूप कह्या. अब,

लछनाके जहतिआदिक तिनीभेदनके लछन एकएक पादसैं कहै हैः— "वाच्य" इत्यादिसैं. जहां वाच्य अर्थ संपूर्न त्यागिके वाच्य अर्थके संबंधीकी प्रतीति होवै, तहां जहतिलछना कहिये है. जैसैं किसीनै कह्या, गंगामैं ग्राम है या स्थानमैं, गंगापदकी तीरमैं जहतिलछना है. काहेतैं, गंगापदका वाच्य अर्थ देवनदीका प्रवाह है. ताकेविषै ग्रामकी स्थितीका असंभव है. यातैं सारेवाच्यअर्थकूं त्यागिके तीरविषै गंगापदकी जहतिलछना है. वाच्यके संबंधका नाम लछना है. या स्थानमैं गंगापदका वाच्य जो प्रवाह ताका तीरसैं संयोगसंबंध है; यातैं गंगापदके वाच्यका जो तीरसैं

संवंध सो लछना. औ वाच्यका सारेका त्याग यातैं जहति लछना.

वाच्यजूत इत्यादि, तृतीयपादसैं अजहतिलछना दिखावै हैः—वाच्यजूत कहिये वाच्यअर्थसहित, वाच्यके संवंधीका जा पदसैं ज्ञान होय, ता पदमैं अजहतिलछना मानिये. जैसैं किसीनै कह्या. सोन धावन करै है. तहां सोनपदकी लालरंगवालै अश्वविषै अजहतिलछना. काहेतैं सोन नाम लालरंगका है. यातैं सोनपदका वाच्य लालरंग है. ता केवलमैं धावनका असंभव है. इसकारनतैं सोनपदका वाच्य जो लालरंग, तासहित अश्वमैं सोनपदकी अजहतिलछना है. (भाषामैं शोनकूं सोन पढै है.) गुनका औ गुनीका तादात्म्यसंवंध कहै है; औ लाल बी रूपका भेद होनैंतैं गुन है. यातैं सोनपदका वाच्य जो लालगुन, ताका गुनी अश्वके साथी जो तादात्म्यसंवंध, सो लछना. औ वाच्यका त्याग नहीं, अधिकका ग्रहन, यातैं अजहतिलछना.

"एक वाच्य" इत्यादि चतुर्थपादसैं भागत्यागलछना बतावै हैः—जहां पदनके वाच्यअर्थमध्य एकभागका त्याग होवै, एकभागका ग्रहन होवै, तहां भागत्यागलछना कहिये है. ता भागत्यागकूंही जहतिअजहतिलछना बी कहै है. जैसैं प्रथम देखे पदार्थकूं अन्यदेसमैं देखिके किसीनैं कह्या "सो यह है." तहां भागत्यागलछना है. काहेतैं अतीतकालमैं औ अन्यदेसमैं स्थित वस्तुकूं "सो" कहै है.

यातैं अतीतकालसहित औ अन्यदेससहित वस्तु, सो पदका वाच्यअर्थ है. औ वर्तमानकाल समीपदेसमैं स्थित वस्तुकूं "यह" कहै है. यातैं वर्तमानकालसहित औ समीपदेससहित वस्तु; यह पदका वाच्यअर्थ है. औ अतीतकालसहित अन्यदेससहित जो वस्तु, सोई वर्तमानकाल औ समीपदेस सहित है. यह समुदायका वाच्यअर्थ है. सो संभवै नहीं काहेतैं अतीतकाल औ वर्तमानकालका विरोध है, तथा अन्यदेसका औ समीपदेसका विरोध है. यातैं दोनूंपदनमैं देसकाल जो वाच्यभाग ताकूं त्यागिके, वस्तुमात्रमैं दोनूंपदकी भाग त्यागलछना.

"तत्त्वमसि" महावाक्यमैं लछना दिखावनैकूं तत्पद औ त्वंपदका वाच्यअर्थ दिखावै है;

## दोहा.

**सर्वसक्ति सर्वज्ञ विभु, ईस स्वतंत्र परोछ;**
**मायी तत्पद वाच्य सो, जामैं बंध न मोछ. ३६**

टीका:—सर्वसक्ति, कहिये जामैं सर्वसामर्थ्य. सर्वज्ञ, कहिये सर्व वस्तुके जाननैवाला. विभु कहिये व्यापक. ईस कहिये सर्वका प्रेरक. औ स्वतंत्र, कहिये कर्मके आधीन नहीं. औ परोछ, कहिये जीवके प्रत्यछका विषय नहीं. मायी, कहिये माया जाके अधीन औ बंधमोछरहित. जामैं बंध होवै ताका मोछ होवै है. ईस्वर बंधरहित है. यातैं ईस्वरमैं मोछ बी नहीं. इतनैं धर्मवाला ईस्वरचेतन तत्पदका वाच्यअर्थ है.

# अथ त्वंपदवाच्य निरूपन.

दोहा.

कहे धर्म जो ईसके, सब तिनतैं विपरीत;
व्है जिहिचेतन जीव तिहि, त्वंपद वाच्यप्रतीत. ३७

टीकाः-- जो ईसके धर्म कहे तिनतैं विपरीतधर्म जामैं होवै, सो जीवचेतन त्वंपदका वाच्य; प्रतीति कहिये जान. याका भाव यह हैः—अल्पसक्ति, अल्पज्ञ, परिछिन्न, अनीस, कर्मके अधीन, अविद्यामोहित, औ बंधमोछवाला, औ प्रत्यछ. काहेतैं, अपना स्वरूप किसीकूं परोछ नहीं. प्रत्यछही होवै है. यद्यपि ईस्वरकूं बी अपना स्वरूप प्रत्यछ है; तथापि ईस्वरका स्वरूप जीवनकूं प्रत्यछ नहीं, यातैं परोछ कहिये है. औ जीवके स्वरूपकूं जीवईस्वर दोनो जानै है; यातैं प्रत्यछ कहिये है. इतनै धर्मवाला जीव चेतन त्वंपदका वाच्य कहिये है.

दोहा.

महावाक्यमैं एकता, व्है दोनोकी भान;
सो न बनै यातैं सुमति, लछ्यलछन हि जान. ३८

टीकाः- सामवेदके छांदोग्यउपनिषदमैं उद्दालकमुनिनैं, अपनै पुत्र स्वेतकेतुकूं जगतकी उत्पत्ति करनैवाला ईश्वर, वतायके कह्याः— " तत्त्वमसि. " ताका यह वाच्यअर्थ हैः- तत्, कहिये सो जगतकी उत्पत्ति करनैवाला; सर्वसक्ति सर्व-

ज्ञता आदिक धर्मसहित ईस्वर; त्वं, कहिये तूं अल्पसक्ति अल्पज्ञताआदिक धर्मवाला जीव; असि, कहिये है. इहां "सो तूं है" इस कहनैतें, ईस्वर जीवकी एकता वाच्यअर्थसें भान होवै है, सो बनै नहीं. काहेतें, सर्वसक्ति औ अल्पसक्ति, सर्वज्ञ औ अल्पज्ञ, विभु औ परिछिन्न, स्वतंत्र औ कर्मअधीन, परोछ औ प्रत्यछ माया जाके अधीन; औ अविद्यामोहित एक है. यह कहना "अग्नि सीतल है;" इस कहनैके समान है. यातें हे सुमती ! लछनही कहिये लछनातें लछ्यअर्थ जान. वाच्यअर्थमें विरोध है.

### दोहा.

आदि दोय नहि संभवै, महावाक्यमें तात;<br>
भागत्याग यातें लखहु, व्है जातें कुसलात. ३९

टीकाः- हे तात ! महावाक्यमें आदि दोय, कहिये जहति अजहति नहीं संभवै. यातें भागत्यागलछना महावाक्यमें लखहु, कहिये जानो. जातें कुसलात, कहिये विरोधका परिहार होवै.

## अथ जहतिअसंभवप्रतिपादन.

### दोहा

ज्ञेय जु साछी ब्रह्मचित, वाच्यमां हि सो लीन;<br>
मानै जहतीलछनां, व्है कछु ज्ञेय नवीन. ४०

टीकाः- संपूर्नवेदांतका ज्ञेय, साछीचेतन औ ब्रह्मचित

कहिये ब्रह्मचेतन है. सो साक्षीचेतन औ ब्रह्मचेतन त्वंपद औ तत्पदके वाच्यमैं लीन, कहिये प्रविष्ट है. औ जहतिलच्छना जहां होवै, तहांवाच्यसंपूर्नका त्यागकरिके, वाच्यका संबंधी अन्यज्ञेय होवै है. यातैं महावाक्यमैं जहतिलच्छना मानैं तौ, वाच्यमैं आया जो चेतन, तासैं नवीन, कहिये अन्यकछु ज्ञेय होवैगा. चेतनसैं भिन्न असतजडदुःखरूप है, ताके जाननैंतैं पुरुषार्थ सिद्ध होवै नहीं; यातैं महावाक्यमैं जहतिलच्छना नहीं.

## अथ अजहतिलछनाअसंभव-प्रतिपादन.

### दोहा.

वाच्यहु सारो रहत है, जहां अजहती मीत;
वाच्यअर्थ सविरोध यूं, तजहु अजहतीरीत. ४१

टीकाः– हे मीत प्रिय ! जहां अजहतिलच्छना होवै, तहां वाच्यअर्थ सारे रहै हैं, औ वाच्यसैं अधिकका ग्रहन होवै है. महावाक्यनमैं अजहतीलछना अंगीकार करैं, तौ वाच्य अर्थ सारा रहैगा. औ वाच्यअर्थ महावाक्यनमैं सविरोध कहिये विरोधसहित है. विरोध दूरि करनैंकूं लछना अंगीकार करी है. अजहती माननैंतैं महावाक्यनमैं विरोध दूरि होवै नहीं, यातैं अजहतीकी रीति महावाक्यनमैं तजहू.

# अथ भागत्यागलछना प्रकार.

## दोहा.

त्यागि विरोधीधर्म सब, चेतन सुद्ध असंग;
लखहु लछनातैं सुमति, भागत्याग यह अंग. ४२

टीकाः— हे अंग, हे प्रिय ! तत्पदका वाच्य ईस्वर, औ त्वंपदका वाच्य जीव, तिन्हके आपसमैं विरोधीधर्म त्यागिके, सुद्धअसंगचेतन लछनातैं लखहु. यह भागत्यागलछना है. या स्थानमैं यह सिद्धांत हैः-- ईस्वरजीवका स्वरूप अनेकप्रकारका अद्वैतग्रंथनमैं कह्या है. विवरनग्रंथमैं अज्ञानमैंप्रतिबिंब जीव औ बिंब ईस्वर कह्या है. औ विद्यारन्यके मतमैं सुद्धसत्वगुनसहित मायामैं आभास ईस्वर, औ मलिन सत्वगुनसहित जो अंतःकरनका उपादानकारन अविद्याका अंस, तामैं आभास जीव कह्या है.

यद्यपि पंचदसीग्रंथमैं विद्यारन्यस्वामीनैं, अंतःकरनमैं आभास जीव कह्या है; तथापि अंतःकरनके आभासकूं जीव मानैं, तौ सुषुप्तिमैं अंतःकरन रहै नहीं; यातैं जीवका बीअभाव हुवा चाहिये. औ प्राज्ञरूप जीव सुषुप्तिमैं रहै है; यातैं विद्यारन्यस्वामीका यह अभिप्राय हैः-- अंतःकरनरूप परिनामकूं प्राप्त जो होवै अविद्याका अंस, तामैं आभास जीव है. सो अविद्याका अंस सुषुप्तिमैं बी रहै है, यातैं प्राज्ञका अभाव नहीं. औ केवलआभासही जीवईस्वर नहीं हैं; किंतु मायाका अधिष्ठानचेतन, औ मायासहित आभास

ईस्वर है. औ अविद्याअंसका अधिष्ठानचेतन, औ अविद्याके अंससहित आभास जीव है. ईस्वरकी उपाधिमैं सुद्धसत्वगुन है, यातैं ईस्वरमैं सर्वसक्ति सर्वज्ञतादिक धर्म है. औ जीवकी उपाधिमैं मलिनसत्वगुन है, यातैं जीवमैं अल्पसक्ति अल्पज्ञतादिक धर्म है, याकूं आभासवाद कहै है. औ

विवरनके मतमैं यद्यपि जीवईस्वर दोनूंकी उपाधि एकही अज्ञान है; यातैं दोनूं अल्पज्ञ हुये चाहिये; तथापि जा उपाधिमैं प्रतिबिंब होवै ताका यह स्वभाव होवै है:— प्रतिबिंबमैं अपने दोष करै है, बिंबमैं नहीं. जैसैं दर्पनरूप उपाधिमैं मुखका प्रतिबिंब होवै है. ग्रीवामैं स्थितमुख बिंब है; तहां दर्पनरूप उपाधिके स्यामपीतलघुतादिक अनेकदोष प्रतिबिंबमैं भान होवै है, औ ग्रीवामैं स्थित जो बिंब है, तामैं भान होवै नहीं. तैसैं दर्पनस्थानी जो अज्ञान, तिसविषै प्रतिबिंबरूप जीवमैं अज्ञानकृत अल्पज्ञतादिकदोष है; औ बिंबरूप ईस्वरमैं नहीं. यातैं ईस्वरमैं सर्वज्ञतादिक है; औ जीवमैं अल्पज्ञतादिक है.

आभास औ प्रतिबिंबका इतना भेद है:— आभास पक्षमैं तौ आभास मिथ्या है. औ प्रतिबिंबवादमैं प्रतिबिंब मिथ्या नहीं, किंतु सत्य है. काहेतैं, प्रतिबिंबवादीका यह सिद्धांत है:— दर्पनमैं जो मुखका प्रतिबिंब है, सो मुखकी छाया नहीं. काहेतैं, छायाका यह स्वभाव है:— जिस दिसामैं छायावानके मुख औ पृष्ठ होवै, उसदिसामैं छायाके मुख औ पृष्ठ होवै है. औ दर्पनके प्रतिबिंबके मुख पीठि, छायाके

विपरीत होवै है. यातैं दर्पनमैं छायारूप प्रतिबिंब नहीं, किंतु दर्पनकूं विषय करनैवास्तै, नेत्रद्वारा निकसी जो अंतःकरनकी वृत्ति, सो दर्पनकूं विषय करिके, तत्कालही दर्पनसैं निवृत्त होयके, ग्रीवामैं स्थित मुखकूं विषय करै है. जैसैं भ्रमनके वेगसैं अलातका चक्र भान होवै है, औ चक्र नहीं है; तैसैं दर्पन औ मुखके विषय करनैमैं, वृत्तिकेवेगतैं मुख दर्पनमैं स्थित भान होवै है, औ मुख ग्रीवाविषैही स्थित है, दर्पनमैं नहीं; औ छाया बी नहीं. वृत्तिके वेगसैं जो दर्पनमैं मुखकी प्रतीति, सोई प्रतिबिंब है. इसरीतिसैं दर्पनरूप उपाधिके संबंधसैं, ग्रीवामैं स्थित मुखही बिंबरूप औ प्रतिबिंबरूप भान होवै है. औ विचारसैं बिंबप्रतिबिंबभाव है नहीं. तैसैं अज्ञानरूप उपाधिके संबंधसैं असंगचेतनमैं बिंबस्थानी ईश्वरभाव औ प्रतिबिंबस्थानी जीवभाव प्रतीत होवै है, औ विचारदृष्टिसैं ईश्वरता जीवता है नहीं. अज्ञानतैं जो चेतनमैं जीवभावकी प्रतीति, सोई अज्ञानमैं प्रतिबिंब कहिये है. यातैं बिंबपना औ प्रतिबिंबपना तौ मिथ्या है, औ स्वरूपसैं बिंबप्रतिबिंब सत्य है. काहेतैं, बिंबप्रतिबिंबका स्वरूप दृष्टांतविषै तौ मुख है, औ दार्ष्टांतविषै चेतन है. सो मुख औ चेतन सत्य है. इसरीतिसैं प्रतिबिंबकूं स्वरूपतैं सत्य होनैतैं सत्य कहै है. औ आभासका स्वरूप छाया मानै है, यातैं मिथ्या है. यह आभासवाद औ प्रतिबिंबवादका भेद है.औ

कितनैं ग्रंथनमैं सुद्धसत्वगुनसहित मायाविसिष्टचेतन, ईश्वर कहिये है. औ मलिनसत्वगुनसहित अंतःकरनका उ-

पादान अविद्याके अंसविसिष्टचेतन; जीव कहिये है. यांकूं अवछेदवाद कहै है; सर्वही वेदांतकी प्रक्रिया अद्वैतआत्माके जनावनैकूं है; यातैं जौनसी प्रक्रियातैं जिज्ञासूकूं बोध होवे सोई ताकूं समीचीन है. तथापि वाक्यवृत्ति औ उपदेससहस्रीमैं, भास्यकारनैं आभासवादही लिख्या है; यातैं आभासवादही मुख्य है. नाकी रीतिसैं माया औ मायामैं आभास, औ मायाका अधिष्ठान जो चेतन, सो सर्वसक्ति सर्वज्ञतादिक धर्मसहित ईस्वर है; सोई तत्पदका वाच्य है. औ व्यष्टिअविद्या, तामैं आभास, औ ताका अधिष्ठानचेतन, अल्पसक्ति अल्पज्ञतादिक धर्मसहित जीव है; सो त्वंपदका वाच्य है. तिन्ह दोनूंकी "तत्त्वमसि" वाक्यनैं एकता बोधन करी; औ बनै नहीं. यातैं आभाससहित माया औ मायाकृत सर्वसक्ति सर्वज्ञतादिक धर्म; इतनै वाच्यभागकूं त्यागिके, चेतनभागविषै तत्पदकी भागत्यागलछना. तैसैं आभाससहित अविद्याअंस, औ अविद्याकृत अल्पसक्ति अल्पज्ञतादिक धर्म; जो त्वंपदका वाच्यभाग, ताकूं त्यागिके चेतनभागमैं त्वंपदकी भागत्यागलछना. इसरीतिसैं

भागत्यागलछनातैं, ईस्वर औ जीवके स्वरूपमैं लछ्य जो चेतनभाग, तिनकी एकता "तत्त्वमसि" महावाक्य बोधन करै है. तैसैं "अयं आत्मा ब्रह्म" इस महावाक्यमैं आत्मापदका जीव वाच्य है, औ ब्रह्मपदका ईस्वर वाच्य है. 'ब्रह्म-हैं. ब्रह्मपदका सुद्ध वाच्य नहीं; ईस्वरही वाच्यहै; यह चतुर्थतरंगमैं प्रतिपादन करी आये है. पूर्वकी न्याई दोनुंपद-

नकी लछना है. लछ्य अर्थ परोछ नहीं; इसअर्थकूं जनावनेकूं अयंपद है. अयं, कहिये सबके अपरोछ आत्मा ब्रह्म है; यह वाक्यका अर्थ है. "अहं ब्रह्मास्मि" इस महावाक्यमैं, अहंपदका जीव वाच्य है, औ ब्रह्मपदका ईस वाच्य है. दोनोंपदनकी चेतनभागमैं लछना. "मैं ब्रह्म हूं," यह वाक्यका अर्थ है. "प्रज्ञानमानंद ब्रह्म," इस महावाक्यमैं, प्रज्ञानपदका जीव वाच्य है, ब्रह्मपदका ईस है; पूर्वकी न्याई लछना. लछ्य जो ब्रह्मात्म, सो आनंदगुनवाला नहीं; किंतु आनंदरूप है; ईस अर्थके जनावनेकूं आनंदपद है. आत्मासैं अभिन्न ब्रह्म आनंदरूप है; यह वाक्यका अर्थ है. जैसैं महावाक्यनमैं भागत्यागलछना है; तैसैं अन्यवाक्यनमैं सत्य, ज्ञान, आनंदपद बी, सुद्धब्रह्मकूं भागत्यागलछनासैंही बोधन करै है; सक्तिसैं नहीं. काहेतैं, सुद्धब्रह्म किसीपदका वाच्य नहीं; यह सिद्धांत है. यातैं सारेपद विसिष्टके वाचक है, औ सुद्धके लछक है. मायाकी आपेछिकसत्यता, औ चेतनकी निरपेछिकसत्यता मिली हुई सत्यपदका वाच्य है. निरपेछिकसत्य लछ है. बुद्धिवृत्तिरूप ज्ञान औ स्वयंप्रकासज्ञान, दोनूं मिलै तौ ज्ञानपदका वाच्य, औ स्वयंप्रकासभाग लछ. विषयसंबंधजन्य सुखाकार सात्विक अंतःकरनकी वृत्ति, औ परमप्रेमका आस्पद स्वरूपसुख; दोनूं मिलै आनंपदका वाच्य; औ वृत्तिभागकूं त्यागिके स्वरूपभाग लछ. इसरीतिसैं सर्वपदनकी सुद्धमैं लछना; संछेपसारीरकमैं प्रतिपादन करी है.

# अथ उक्तअर्थसंग्रह.

## कवित्व.

गंगामैं ग्राम जहतिलछना ठौर लखि,
सोन धावै लछना अजहति जनाईये;
"सोई यह वस्तु" इहां लछना है भागत्याग,
दूजो नाम जहतिअजहती सुनाईये;
"तत्वमसि" आदि महावाक्यनमैं भागत्याग,
लछना न जहति अजहति बताईये;
ब्रह्म काहु पदको न वाच्य यूं बखानै वेद,
यातैं सर्वपदनमैं रीति यूं लखाईये. ४३
मायामांहि सत्यता जु औरभांति भाखियत,
ब्रह्ममांहि सत्यता सु औरभांति भाखिये;
दोउ मिली सत्यपद वाच्य मुनिभाखत है,
ब्रह्ममांहि सत्यता सु लछ्यभाग राखिये;
बुद्धिवृत्ति संवित द्वै मिले ज्ञानपद वाच्य,
संवितस्वरुप लछ्य बुद्धिवृत्ति नाखिये;
आत्म औ विषैको सुख वाच्यपद आनंदको,
विषैसुख त्यागि आत्मसुख लछ आखिये. ४४

महावाक्यनमैं विरोध दूरि करनैकूं, दोनूंपदनमैं लछना अंगीकार करी. तहां कोई कहै हैः-एकपदमैं लछना अंगीकार कियेसैं ही विरोध दूरि होवै है; दोयपदमैं लछना माननैका प्रयोजन नहीं.

दोहा

एकहि पदमैं लछना, मानै नहीं विरोध;
दोयपदनमैं लछना, निष्फल कहत सुबोध ४५

टीका:- सुबोध, कहिये सुज्ञ! दोयपदनमैं लछना निष्फल कहते है. काहेतैं एकही पदमैं लछना माननैतैं विरोध दूरि होय जावै है. याका भाव यह है:- यद्यपि सर्वज्ञतादि विसिष्टकी अल्पज्ञतादि विसिष्टके साथि एकता नहि बनै है; तथापि एकपदका लछ्य जो सुद्ध, ताकी विसिष्टके साथि एकता बनै है. दृष्टांत जैसें "सूद्रमनुष्य, ब्राह्मन है." इस रीतिसैं सूद्रत्वधर्मविसिष्ट मनुष्यकी, ब्राह्मनत्वधर्मविसिष्टके साथि, एकता कहना विरुद्ध है. औ "मनुष्य ब्राह्मन है:' इसरीतिसैं सूद्रत्वधर्मरहित सुद्धमनुष्यकूं ब्राह्मनत्वविसिष्टता कहनैमैं विरोध नहीं. तैसें अल्पज्ञतादिधर्मविसिष्टचेतनकी, औ सर्वज्ञतादिधर्मविसिष्टकी एकता विरुद्ध बी है; परंतु जीववाचकपद औ ईसवाचकपदकी, चेतनमैं लछनाकरिके चेतनमात्रकी सर्वज्ञतादिधर्मविसिष्टके साथि, वा अल्पज्ञतादिविसिष्टके साथि, एकता कहनैमैंविरोध नहीं. यातैं दोपदमैं लछना माननैमैं कोई जुक्ति नहीं.

## समाधान.

कवित्व.

लछना जो कहै एकपदमांहि ताकूं यह,

पूछि दोयपदनमैं कौनसैंमैं लछना?
प्रथम वा द्वितीयमैं कहै ताहि भाखि यह,
वाक्यनको होयगो विरोध मूढ लछना;
तीनिवाक्यमध्य जीववाचक प्रथमपद,
"तत्त्वमसि" यामैं आदिपद ईसलछना;
प्रथम वा द्वितीयको नेम नहिं बनै यातैं,
भाखत द्वैपदनमैं लछना सुलछना. ४६

टीकाः– जो एकपदमैं लछना अंगिकार करै, ताकूं यह पूछिः–दोनूंपदनमैंसैं कौनसैं पदमैं लछना है? जो ऐसै कहै, सर्वमहावाक्यनके प्रथमपदमैं लछना है, द्वितीयमैं नहीं. यद्वा, द्वितीयपदमैं लछना सर्ववाक्यनमैं है; प्रथममैं नहीं. ताकूं हे सिष्य! यह भाखिः– हे मूढ लछन! प्रथम वा द्वितीयपदमैं जो नेमतैं लछना सर्ववाक्यनमैं मानै; तौ वाक्यनका परस्पर विरोध होवैगा. काहेतैं, तीनवाक्य मध्य कहिये, "अहं ब्रह्मास्मि," "प्रज्ञानमानंद ब्रह्म," "अयमात्मा ब्रह्म," इनतीनवाक्यनमैं जीववाचकपद प्रथम कहिये पूर्व है. औ "तत्त्वमसि," या वाक्यमैं आदिपद कहिये, प्रथमपद इसलछन कहिये, ईस्वरका बोधक है. जो पूर्वपदमैं लछना सारै मानैं तौ तीनिवाक्यनका तौ यह अर्थ होवैगाः-- चेतन सर्वज्ञतादिविसिष्टअंस सारै ईस्वररूप है. औ "तत्त्वमसि" वाक्यका यह अर्थ होवैगाः– चेतन-अल्पज्ञतादिविसिष्टसंसारी जीवरूप है. काहेतैं, तीनिवाक्य

नमैं पूर्व जीववाचक पद है, ताका चेतनभागमैं लछना, औ द्वितीय जो ईस्वरवाचकपद; ताके वाच्यंका ग्रहन. औ "तत्त्वमसि" मैं आदि ईसवाचकपद, ताकी चेतनभागमैंलछना, औ द्वितीय जीववाकचपद ताके वाच्यका ग्रहन. इसरीतिसैं लछनाका नेम करै, तौ वाक्यनका परस्पर विरोध होवैगा. तैसैं सर्व वाक्यनके द्वितीयपद कहिये, आगिलैपदमैं लछना मानै; तौ तीनिवाक्यनमैं पूर्व जो जीवपद, ताके वाच्यका ग्रहन; औ उत्तर ईसपदकी चेतनभागमैं लछना. यातैं अल्पज्ञतादिधर्मविसिष्ट चेतन है, यह तीनिवाक्यनका अर्थ होवैगा. औ "तत्त्वमसि" मैं आदि ईसपद, ताके वाच्यका ग्रहन, औ द्वितीयजीवपदकी चेतनभागमैं लछना. यातैं सर्वज्ञतादिधर्मविसिष्ट चेतन है; यह "तत्त्वमसि" का अर्थ होनैतैं, परस्पर विरोधही होवैगा. इसरीतिसैं प्रथम वा द्वितीयपदमैं, लछनाका नेम बनै नहीं. यातैं सुलछना कहिये, सुंदरि है लछन जिनके, ते आचार्य, द्वैपदनमैं लछना भाखत है. और

जो ऐसैं कहै, प्रथमम्पद वा द्वितीयपदमैं लछना है, यह नियम नहीं करै है, किंतु सर्ववाक्यनमैं जो ईस्वरवाचक पद, तामैं लछना है, यह नियम करै है, सो ईस्वरवाचक पूर्व होवै वा उत्तर होवै, यातैं वाक्यनका परस्पर विरोध नहीं. ताका

# समाधान.

## दोहा.

ईसपदहि लछक कहै, सब अनर्थकी खानि;
ज्ञेय होय श्रुतिवाक्यमैं, व्है पुरुषारथ हानि. ४७

टीका:- जो ईस्वरवाचक पदकूंही लछक कहै, तौ सर्व अनर्थ अल्पज्ञता पराधीनता जन्ममरनसैं आदिलेके, जो दुःखके साधन, तिनकी खानि जों संसारीजीव; सो श्रुतिवाक्यनमैं ज्ञेय होवै. यातैं पुरुषारथ कहिये मोछकी हानि होवैगी. याका भाव यह है:- जो ईस्वरवाचकपदमैंही लछना मानै, तौ महावाक्यनका यह अर्थ होवैगा:-- तत्पदका लछ्य जो अद्वय असंग मायामलरहित चेतन; सो काम कर्म अविद्याके आधीन, अल्पज्ञ, अल्पसंक्ति, परिच्छिंन्न, पुन्यपाप, सुखदुःख, जन्ममरन, गमनआगमनआदिक अनंत अनर्थका पात्र है. जो महावाक्यका ऐसा अर्थ होवै, तौ जिज्ञासुकूं इसीअर्थविषै बुद्धिकी स्थिति करनी होवैगी. औ जामैं बुद्धिकी स्थिति होवै है, प्रानं वियोगसैं अनंतर ताही कूं प्राप्त होवै है. यातैं वेदवाक्यनके विचारसैं, मुमुछुकूं अनर्थकीहि प्राप्ति होवैगी; आनंदकी प्राप्ति नहीं होवैगी. यातैं, ईस्वरवाचकपदमैं लछना है, जीववाचकमैं नहीं, यह नियम असंगत है. और

जो ऐसैं कहै:- सर्व महावाक्यनमैं जो जीववाचकपद है, तिन्हमैं लछना है; ईसवाचकमैं नहीं. यातैं पुरुषार्थकी

हानि नहीं. काहेतें जीववाचकपदमैं लछना मानै, तौ महावाक्यनका यह अर्थ होवैगाः- जो त्वंपदका लछ्य चेतनभाग, सो सर्वसक्ति, सर्वज्ञ, स्वतंत्र, जन्मादिक बंधरहित ईस्वररूप है. इसअर्थमैं बुद्धिकी स्थितिसैं जिज्ञासूकूं अतिउत्तम ईश्वरभावकीही प्राप्ति होवैगी. यातैं जीववाचक पदमैं लछनाका नियम करै है. ताका

## समाधान,

### दोहा.

साछी त्वंपद लछ्य कहुं, कैसैं ईसस्वरूप?
यातैं दोपद लछना, भाखत जतिवर भूप. ४८

टीकाः- त्वंपदका लछ्य जो साछी, सो ईसस्वरूप कैसैं? यह कहू. अर्थ यह, त्वंपदके लछ्यकूं ईस्वररूप कहना बनै नहीं. यातैं जती जो संन्यासी तिनमैं वर जो श्रेष्ठ, तिनके भूप स्वामी, दोनूं पदमैं लछना भाखत है. याका भाव यह हैः- जो जीववाचकपदमैं लछना मानैं, औ ईसवाचकमैं नहीं ताकूं यह पूछै हैः- त्वंपदकी लछना व्यापकचेतनमैं है; अथवा जितनैं देसमैं जीवकी उपाधि है, उतनै देसमैं स्थित जो साछीचेतन, तामैं त्वंपदकी लछना है? जो व्यापकचेतनमैं त्वंपदकी लछना कहै, तौ बनै नहीं. काहेतें, वाच्यअर्थमैं जाका प्रवेस होवै; तामैं भागत्यागलछना होवै है. औ वाच्यमैं प्रवेस व्यापकचेतनका नहीं, किंतु जीव-

पनैकी उपाधिदेसमैं स्थित जो साछीचेतन. ताका वाच्य-मैं प्रवेस है. यातैं साछीचेतनमैंही त्वंपदकी लछना है; व्यापकचेतनमैं नहीं. ता साछीचेतनमैं सर्वके हृदयका प्रेरन औ सर्वप्रपंचमैं व्यापकतादिक ईस्वरके धर्मनका असंभव है. औ साछी सदाअपरोछ है. ताकेविषै परोछता ईस्वरधर्म-का अत्यंत असंभव है. औ मायारहितकूं मायाविसिष्ट कहना असंभव है. जैसैं दंडरहितकूं दंडी कहना; औ संस्काररहित द्विजबालककूं संस्कारविसिष्ट कहना असंभव है, यातैं साछीचेतनका ईस्वरसैं अभेद कहैं; तौ महावाक्य असंभव-अर्थके प्रतिपादक होवैंगे. औ

दोनूंपदमैं लछना मानैं, तौ दोष नहीं; काहेतैं, जो एकताके विरोधी धर्म है; तिन्ह सबकूं त्यागिके दोनूंपदनमैं प्रकासरूप चेतन जो वाच्यभाग, ता सर्वधर्मरहित चेतनमैं दोनूंपदनकी लछना. उपाधि औ उपाधिकृत धर्मनतैं चेतनका भेद है; स्वरूपसैं नहीं. उपाधि औउपाधिकृत धर्मनका त्याग कियेतैं, दोनूंपदनके लछ्य चेतनकी एकता संभवै है. जैसैं घटाकासमैं घटदृष्टि त्यागिके मठविसिष्टआकासतैं एकता बनैं नहीं, औ मठदृष्टि त्याग कीयेतैं एकता बनै है.

## दोहा.

तत्त्वं त्वंतत् रीति यह, सबवाक्यनमैं जानि;
जातैं होय परोछता, परिछिन्नता हानि. ४९

टीकाः–सर्ववाक्यनमैं "तत्त्वं" "त्वंतत्," इसरीतिसैं ओतप्रोतभावकी रीति जानि. जां ओतप्रोतभाव कियेतैं वाक्यके अर्थमैं, परोछ औ परिच्छिन्नता भ्रांतिकी हानि होवै है.

"तत्त्वं," या कहनैतें तत्पदके अर्थका त्वंपदअर्थसैं अभेद कह्या. सो त्वंपदका अर्थ साछी नित्यअपरोछ है; यातैं परोछताभ्रांतिकी हानि. औ "त्वंतत्," या कहनैतें त्वंपदके अर्थका तत्पदके अर्थसैं अभेद कह्या, सो तत्पदका अर्थ व्यापक है; यातैं परिछिन्नताभ्रांतिकी हानि. तैसैं "अहं ब्रह्म, "प्रज्ञान ब्रह्म," "आत्मा ब्रह्म" यातैं परिछिन्नता हानि. औ ब्रह्म अहं," "ब्रह्म प्रज्ञान," "ब्रह्म आत्मा," यातैं परोछता हानि.

## दोहा.

जीवब्रह्मकी एकता, कहत वेद स्मृति बैन;<br>
सिष्य तहां पहिचानिये, भागत्यागकी सैन. ५०

टीकाः–हे सिष्य ! जो वेदबैन औ स्मृतिबैन, जीवब्रह्मकी एकता कहै; तहां सारे भागत्यागकी सैन पहिचानिये

## दोहा.

अस सिष गुरु उपदेस सुनि, भौ ततकाल निहाल;<br>
भलै विचारै याही जो, ताके नसत जंजाल. ५१

## सोरठा.

मिथ्यागुरु सुखांनि, कियो ग्रंथ उपदेस यह;<br>
सुनत करत तम हानि, यह ताकी भाषा करी. ५२

## दोहा..

अग्रधदेवकूं स्वप्नमैं, यह किय गुरु उपदेस;

नश्यो न तहु दुखमूल वह, मिथ्या बनको वेस. ५३

वेस कहिये स्वरूप. अन्यअर्थ स्पष्ट.

# अग्रध उवाच

## चौपाई

भगवन यह तुम ग्रंथ पढायो,

अर्थसहित सो मो हिय आयो;

बनदुख मूल तऊ मुहि भासै,

कहु उपाय जातैं यह नासै. ५४

बोले गुरु सुनि सिषकी बानि,

सुनि सिष व्है जातैं बन हानी;

अस उपाय को और नहीं है,

बनका नासक हेतु यही है. ५५

महावाक्यको अर्थ विचारहु,

"मैं अग्रध" यूं ठेरि पुकारहू;

सुनि पुनि वाक्य विचारे चेला,

"अहं अग्रध" यह दीनो हेला. ५६

निद्रा गई नैन परकासे;

बन गुरु ग्रंथ सबै वह नासे;

भयो सुखी बनदुख विसरायो,
हुतो अग्रध निजरूप सु पायो. ५७

दोहा.

अग्रधदेवमैं नींदतैं, भौ बनदुख जिहि रीति;
आतममैं अज्ञानतैं, त्यूं जगदुख परतीति. ५८
ज्यूं मिथ्या गुरु ग्रंथतैं, मिथ्या बन संहार;
त्यूं मिथ्या गुरु वेदतैं, मिथ्या जग परिहार. ५९
लछ्यअर्थ लखि वाक्यको, व्है जिज्ञासु निहाल;
निरावर्न सो आप है, दादू दीनदयाल. ६०

इति श्रीगुरुवेदादि साधन मिथ्यावर्ननं नाम षष्ठस्तरंगः

समाप्तः ६

दोहा..

अग्रधदेवकूं स्वप्नमैं, यह किय गुरु उपदेस ;.
नस्यो न तहु दुखमूल वह, मिथ्या बनको वेस. ५३

वेस कहिये स्वरूप. अन्यअर्थ स्पष्ट.

## अग्रध उवाच

चौपाई

भगवन यह तुम ग्रंथ पढायो,
अर्थसहित सो मो हिय आयो;
वनदुख मूल तऊ मुहि भासै,
कहु उपाय जातैं यह नासै. ५४
बोले गुरु सुनि सिषकी बानि,
सुनि सिष व्है जातैं बन हानी;
अस उपाय को और नहीं है,
बनका नासक हेतु यही है. ५५
महावाक्यको अर्थ विचारहु,
"मैं अग्रध" यूं ठेरि पुकारहु;
सुनि पुनि वाक्य विचारे चेला,
"अहं अग्रध" यह दीनो हेला. ५६
निद्रा गई नैन परकासे;
बन गुरु ग्रंथ सबै वह नासे;

भयो सुखी बनदुख विसरायो,
हुतो अग्रध निजरूप सु पायो. ५७

दोहा.

अग्रधदेवमैं नींदतैं, भौ बनदुख जिहि रीति;
आतममैं अज्ञानतैं, त्यूं जगदुख परतीति. ५८
ज्यूं मिथ्या गुरु ग्रंथतैं, मिथ्या बन संहार;
त्यूं मिथ्या गुरु वेदतैं, मिथ्या जग परिहार. ५९
लछ्यअर्थ लखि वाक्यको, व्है जिज्ञासु निहाल;
निरावर्न सो आप है, दादू दीनदयाल. ६०

इति श्रीगुरुवेदादि साधन मिथ्यावर्ननं नाम षष्ठस्तरंगः

समाप्तः ६

श्रीगणेशाय नमः

# अथ श्रीविचारसागरे

सप्तमस्तरंगः प्रारंभः ७

## अथ जीवन्मुक्ति विदेहमुक्ति वर्ननं

### दोहा.

उत्तम मध्य कनिष्ठ तिहु, सुनि अस गुरुउपदेस;
ब्रह्म आत्म उत्तम लख्यो, रह्यो न संसै लेस. १

टीकाः-यद्यपि गुरुनैं उपदेस तीनूंकूं साथिही किया, तथापि गुरुउपदेसतैं साछात्कार उत्तम तत्त्वदृष्टिकूं हुवा.

### दोहा.

भ्रमन करत ज्यूं पवनतैं, सूको पीपरपात;
सेषकर्म प्रारब्धतैं, क्रिया करत दरसात. २
कबहुक चढि रथ बाजि गज, बाग बगीचे देखि;
नग्नपाद पुनि एकले, फिर आवत तिंहि लेखि. ३
विविधवेष सज्या सयन, उत्तमभोजन भोग;
कबहुक अनसनगिरिगुहा, रजनि सिला संयोग.
करि प्रनाम पूजन करत, कहु जन लाख हजार;
उभैलोकतैं भ्रष्ट लखि, कहत कोंमि धिक्कार. ५
जो ताकी पूजा करत, संचित सुकृत सु लेत;

दोषदृष्टि तिंहि जो लखै, ताहि पापफल देत. ६
ऐसै ताके देहको, विना नियम व्यवहार;
कबहु न भ्रम संदेह व्है, लह्यो तत्व निर्धार. ७
नहिं ताकूं कर्तव्य कछु, भयो भेदभ्रम नास;
उपज्यो वेदप्रमानतें, अद्वय ब्रह्मप्रकास. ८
ज्ञानीके व्यवहारमैं, कोऊ कहत है नेम;
त्रिपुटि तजै दुख हेतु लखि, लहै समाधि सप्रेम. ९
व्है किंचितव्यवहार जो, भिछासन जलपान;
भूलै नांहि समाधिसुख, व्है त्रिपुटितें ग्लान. १०
लहै प्रयत्न समाधिको, पुनि ज्ञानी इह हेत;
जो समाधिसुख तजि भ्रमत, नर कूकर खर प्रेत
गौडपादमुनि कारिका, लिख्यो समाधिप्रकार;
ज्ञानी तजी विछेप यूं, लहै सकलसुखसार. १२
अष्टअंगविन होत नहिं, सो समाधिसुख मूल;
अष्टअंग ते अब सुनो, जे समाधि अनुकूल. १३
पांचपांच यमनियम लखि, आसन बहुतप्रकार;
प्रानायाम अनेकविध, प्रत्याहार विचार. १४
छठो धारना ध्यान पुनि, अरु सविकल्पसमाधि;
अष्टअंग ये साधिके, निर्विकल्प आराधि. १५
सुनि समाधि कर्तव्यता, तत्त्वदृष्टि हसि देत;

उत्तर कछु भाखत नहीं, लखि तिहि बकत सप्रेत

टीकाः-- जैसें सप्रेत कहिये प्रेतसहित भूतके आवेसवाला बंक, तैसें अन्यथा कहता सुनिके तत्त्वदृष्टि हसें है. अन्य-दोहाका अछरअर्थ स्पष्ट है. भाव यह हैः- ज्ञानवानके सरीरव्यवहारका नियम नहीं. काहेतें, ज्ञानीके व्यवहारमैं, अज्ञान औ ताका कार्य भेदभ्रांति; तथा भेदभ्रमके कार्य, रागद्वेष तौ हैं नहीं; किंतु ज्ञानवानके बी प्रारब्धकर्म सेष रहै है; सोई ताके व्यवहारमैं निमित्त है. सो प्रारब्धकर्म पुरुषभेदसैं नानाप्रकारका होवै है. यातैं ज्ञानीके प्रारब्धकर्मजन्य व्यवहारका नियम नहीं, यह सिद्धांतपछ है.

कोई ऐसैं कहै हैः— ज्ञानीके व्यवहारमैं और किसी कर्मका तौ नियम नहीं है; परंतु ज्ञानवानके निवृत्तिका नियम है. प्रवृत्ति होवै तौ देहस्थितिके हेतु, भिछा असन कौपीन आछादनमात्र ग्रहनमैं प्रवृत्ति होवै है; अन्यप्रवृत्ति होवै नहीं. काहेतें, ज्ञानकी उत्पत्तिसैं प्रथम जिज्ञासाकालमैं, विषयनमैं दोषदृष्टिसैं वैराग्य होवै है. सो वैराग्य ज्ञानकी उत्पत्तिसैं अनंतर बी, दोषदृष्टितैं तथा विषयनमैं मिथ्याबुद्धिसैं होवै है अपरोछरूपतैं मिथ्या ज़ानै पदार्थनमैं सत्यबुद्धि होवै नहीं. दोषदृष्टितैं राग होवै नहीं, औ प्रवृत्ति रागतैं होवै है. ज्ञानीके राग संभवै नहीं; यातैं प्रवृत्ति होवै नहीं.

सरीरनिर्वाहक भोजनादिकनमैं प्रवृत्ति तौ, रागतैं विना प्रारब्धकर्मतैं संभवै है. कर्म तीनिप्रकारके है, संचित, आ-

गामी औ प्रारब्ध. तिनमैं भूतसरीरनमैं किये कर्म फलारंभरहित संचित कहिये है. भविष्यतकर्म आगामी कहिये है. भूतसरीरनमैं किया वर्तमानसरीरका हेतु कर्म, प्रारब्ध कहिये है. तिनमैं संचितकर्मका ज्ञानतैं नास होवै है. ज्ञानवानकूं

आत्मामैं कर्तृत्वभ्रांति नहीं; यातैं ताकूं आगामीकर्मका संभव नहीं. औ जिस प्रारब्धकर्मनैं ज्ञानीके सरीरका आरंभ किया है; सोई प्रारब्धकर्म सरीरस्थितिके हेतु भिक्षादिकनमैं प्रवृत्ति करवावै है. प्रारब्धकर्मका भोगबिना नास होवै नहीं. और

कहूं ऐसा लिख्या है:— संचितआगामीकर्मकी न्याई, ज्ञानीके प्रारब्धकर्म बी रहै नहीं, यातैं भोजनादिक प्रवृत्ति बी ज्ञानीकूं संभवै नहीं. ताका यह अभिप्राय है:— ज्ञानीकी दृष्टितैं आत्मामैं कर्म औ ताके फलका संबंध नहीं. यातैं आत्मामैं सर्वकर्मका निषेधअभिप्रायतैं, प्रारब्धका निषेध किया है. औ ज्ञानतैं पूर्व कीये प्रारब्धका, ज्ञानीके सरीरकूं भोग होवै नहीं, इस अभिप्रायतैं प्रारब्धका निषेध नहीं; काहेतैं, सूत्रकारनै यह लिख्या है:— ज्ञानीके संचितकर्मका ज्ञानतैं नास होवै है, आगामीका संबंध होवै नहीं; प्रारब्धका भोगतैं नास होवै है. यातैं प्रारब्धके बलतैं सरीरनिर्वाहककिया ज्ञानीकी होवै है; अधिक नहीं. परंतु

कर्म नानाप्रकारके है. जहां एककर्म नानासरीरका आरंभक होवै, ऐसैं कर्मतैं रचित प्रथमसरीरमैं जाकूं ज्ञान

होवै, तहां ज्ञानवानकूं अन्यसरीरकी प्राप्ति हुई चाहिये; काहेतैं फलका जानैं आरंभ किया है, सो प्रारब्ध कहिये है; ताका भोगविना नास होवै नहीं. अनेकसरीरका हेतु कर्म एक है, तानै प्रथमसरीर जो उपजाया तामैं ज्ञान हुवा; ता कर्मके फल ज्ञानतैं अनंतर औरसरीर सेष रहे है, यातैं ज्ञानवानकूं बी अन्यसरीरकी प्राप्ति हुई चाहिये. और

जो ऐसैं कहैः— प्रारब्धकर्मका फल जितनै सरीर होवै, उतनै सरीर ज्ञानीकूं बी होवै है. प्रारब्धके भोगतैं अधिक होवै नहीं. यातैं ज्ञान बी सफल होवै है. सो बनै नहीं. काहेतैं, यह वेदका ढंढोरा हैः-- "ज्ञानवानके प्रान अन्यलोकमैं, वा इसलोकके अन्यसरीरमैं, गमन नहीं करते." किंतु, तिसी स्थानमैं अंतःकरन इंद्रियसहित लीन होवै है. औ प्रानगमनविना अन्यसरीरकी प्राप्ति संभवै नहीं. यातैं ज्ञानवानकूं प्रारब्ध सेषतैं, औरसरीर होवै है, यह कहना तो संभवै नहीं. किंतु

यह समाधानहैः— जहां अनेकसरीरका आरंभक एककर्म होवै, तहां अंतसरीरमैंही ज्ञान होवै है; पूर्वसरीरमैं ज्ञान होवै नहीं. काहेतैं, अनेकसरीरका आरंभक, प्रारब्धही ज्ञानका प्रतिबंधक है. जैसैं विषयनमैं आसक्ति, बुद्धिमंदता भेदवादिवचनमैं विस्वास, ज्ञानके प्रतिबंधक है; तैसैं विलछनप्रारब्ध बी ज्ञानका प्रतिबंधक है, औ ज्ञानकें प्रतिबंधक होते, जहां ज्ञानसाधन श्रवनादिक होवै, तहां प्रतिबंधक दूरि हुयेतैं, प्रथमजन्मविषै किये जो श्रवनादिक हैं; तिन-

तैंही अन्यसरीरमैं ज्ञान होवै है. जैसैं वामदेवनैं पूर्वजन्मविषै श्रवनादिक किये, तब प्रारब्धका फल एकसरीर सेष होते ज्ञान नहीं हुवा. किंतु श्रवनादिक करते वर्तमानसरीरका पात होयके, अन्यसरीरकी प्राप्ति हुयेतैं, पूर्वजन्ममैं किये श्रवनादिकनतैं गर्भविषै ज्ञान हुवा है. यातैं ज्ञानसैं अनंतर अन्यसरीरका संबंध होवै नहीं. औ वर्तमानसरीरकी चेष्टा प्रारब्धसैं होवै है. तहां जितनी चेष्टा सरीरकी निर्वाहक है सोई होवै; रागजन्य अधिकचेष्टा होवै नहीं. यातैं सर्वप्रवृत्तिरहित ज्ञानी होवै है.

इसरीतिसैं निवृत्तिप्रधान ज्ञानीका व्यवहार होवै है. ताकेविषै ऐसी संका है:-- मनका स्वभाव अतिचंचल है, निरालंब मनकी स्थिति होवै नहीं; किसीआलंबतैं मनकी स्थिति होवै है. यातैं मनके किसी आलंबकी प्राप्तिनिमित्त बी, ज्ञानवानकी प्रवृत्ति होवै है. ताका

यह समाधान है:—यद्यपि समाधिहीनपुरुषका मन चंचल होवै है, तथापि समाधितैं मनका विजय होवै है. औ ज्ञानवान समाधिविषै स्थित होवै है. यातैं ज्ञानवानकी प्रवृत्ति होवै नहीं. सो

समाधि इन अष्ट अंगनतैं होवै है:— यम १, नियम २, आसन ३, प्रानायाम ४, प्रत्याहार ५, धारना ६, ध्यान ७, सविकल्पसमाधि ८; इन अष्टअंगनतैं समाधि होवै है.

अहिंसा १, सत्य २, अस्तेय ३, ब्रह्मचर्य ४, अपरिग्रह ५, ये पांच यम कहै है.

सोच १, संतोष २, तप ३, स्वाध्याय ४, ईस्वरप्रनिधान ५; ये पांच नियम कहिये है. औ ज्ञानसमुद्रग्रंथमैं दस प्रकारके यम; औ दसप्रकारके नियम कहे हैं; सो पुरानकी रीतिसैं कहे है; वेदांतसंप्रदायमैं यमनियमके पांचपांचही भेद हैं. और

आसनके भेद अनंत है. तिनमैं स्वस्तिक १, गोमुख२, वीर ३, कूर्म ४, पद्म ५, कुक्कुट ६, उत्तान ७, कूर्मक ८, धनुष ९, मत्स्य १०, पश्चमतान ११, मयूर १२, सव १३, सिंह १४, भद्र १५, सिद्ध १६, इत्यादिक चौऱ्यासीआसन योगग्रंथनमैं लिखे है; तिनके लछन बी तहां लिखे है ग्रंथके विस्तारभयतैं, तथा वेदांतमैं अत्यंतउपयोगी नहीं, यातैं लछन लिखे नहीं. तिनमैं वी सिंह, भद्र, पद्म, सिद्ध; ये चारिआसन प्रधान है. तिन चारिमैं बी,

सिद्धआसन अत्यंतप्रधान है. ताका यह लछन है:- वामपादकी एडी गुदा मेंढुके मध्य सीवनमैं दाबिके धरै दछिनपादकी एडी मेंढूके ऊपरि दाबिके धरै; भृकुटीके अंतर दृष्टि राखै, स्थानुकी न्याई सरल निश्चलसरीरतैं स्थितिकूं सिद्धासन कहै है. और

कोई ऐसै कहै है:- वामपादकी एडी सीवनमै नहीं लगावै; किंतु मेढुके ऊपरि लगावै; ताके उपरि दछिनएडी धरै. औ पूर्वकी न्याई यहं सिद्धासनही अतिप्रधान है. काहेतैं, कितने आसन तौ रोगनासके हेतु है. और कोई आसन ऐसें है, प्रानायामादिक समाधिके अंग जिनतैं होवै है, औ

सिद्धासन समाधिकालमैं होवै है; यातैं अतिप्रधान है. याहीकूं वज्रासन, मुक्तासन, गुप्तासन कहै हैं.

आसनसिद्धिसैं अनंतर, प्रानायाम बी करै. सो प्रानायाम बहुतप्रकारका है, तथापि संछेपतैं यह लछन है:- नासाके वामछिद्रद्वारा इडा नाम नाडी तैं वायुकूं पूरन करै; ताकूं पूरक कहैहै. दछिनतैं त्यागै, ताकूं रेचक कहै है. सुषुमनातैं रोकै ताकूं कुंभक कहै है. इसरीतिसैं पूरक रेचक कुंभककूं प्रानायाम कहै है. सो दोप्रकारका है:- एक अगर्भ है, तैसैं दूसरा सगर्भ है. प्रनवके उच्चारनरहित प्रानायाम, अगर्भ कहिये है. प्रनवके उच्चारनसहित प्रानायाम, सगर्भ कहिये है.

विषयनतैं सकलइंद्रियके निरोधकूं प्रत्याहार कहै है. अंतरायरहित अंतःकरनकी स्थिति, धारना कहिये है. अंतरायसहित अद्वितीयवस्तुविषै अंतःकरनका प्रवाह, ध्यान कहिये है.

व्युत्थानसंस्कारनका तिरस्कार, और निरोधसंस्कारनकी प्रगटता हुया, अंतःकरनका एकाग्रतारूप परिनाम समाधि कहिये है. सो समाधि दोप्रकारकी है:— एक सविकल्पसमाधि है, दूसरी निर्विकल्पसमाधि है. ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेयरूप त्रिपुटीभानसहित अद्वितीयब्रह्मविषै अंतःकरनकी वृत्तिकी स्थिति, सविकल्पसमाधि कहिये है. सो सविकल्पसमाधि दो प्रकारकी है:-- एक तौ सब्दानुविद्ध है, दूसरी सब्दाननुविद्ध है. "अहं ब्रह्मास्मि," इस सब्दकरिके अनुविद्ध कहिये सहित होवै. सो सब्दानुविद्ध कहिये है. सब्द

रहितकूं सब्दानुविद्ध कहे है. त्रिपुटीभानरहित अखंडब्र-ह्माकार अंतःकरनवृत्तिकी स्थिति, निर्विकल्पसमाधि कहिये है. इसरीतिसैं सविकल्प औ निर्विकल्पसमाधिके दोभेद हैं. तिनमैं सविकल्पसमाधि साधन है; औ निर्विकल्पसमाधि फल है. साधनरूप जो सविकल्पसमाधि है, ताकेविषे यद्यपि त्रिपुटीरूप द्वैत प्रतीत होवै है, तथापि सो द्वैत इसरीतिसैं ब्रह्मरूप करिके प्रतीत होवै हैः— जैसैं मृत्तिकाविकारनकूं मृत्तिकारूप जानैंतैं विवेकीकूं मृत्तिकाके विकार घटादिक प्रतीत बी होवै है, परंतु मृत्तिकारूपही प्रतीत होवै है. तैसें सविकल्पसमाधिमैं त्रिपुटीद्वैत ब्रह्मरूपही प्रतीत होवै है. निर्विकल्पसमाधिविषे बी सविकल्पसमाधिकी न्याई त्रिपुटीरूप द्वैत विद्यमान बी होवै है, तौ बी त्रिपुटीद्वैतकी प्रतीति होवै नहीं. जैसैं जलमैं लवनकूं गैरैंतहां लवन विद्यमान होवै है, परंतु नेत्रसैं लवनकी सर्वथाप्रतीति होवै नहीं. इसरीतिसैं सविकल्पनिर्विकल्पका यह भेद सिद्ध हुवाः—सविकल्पसमाधिमैं ब्रह्मरूप करिके द्वैतकी प्रतीति; औ निर्विकल्पसमाधिमैं त्रिपुटीरूप द्वैतकी अप्रतीति. तैसैं

सुषुप्तिसैं निर्विकल्पका यह भेद हैः— सुषुप्तिमैं अंतःकरनकी ब्रह्माकारवृत्तिका अभाव होवै है. औनिर्विकल्पसमाधिमैं ब्रह्माकारवृत्ति तौ अंतःकरनकी होवै है, ताका अभाव होवै नहीं. इसरीतिसैं सुषुप्तिमैं तौ वृत्तिसहितअंतःकरनका अभाव होवै है; औ निर्विकल्पसमाधिमैं वृत्तिसहित अंतःकरन तौ होवै है, ताकी प्रतीति होवै नहीं. निर्विकल्प-

समाधिविषै अंतःकरनकी जो ब्रह्माकारवृत्ति होवै है; ताका हेतु सविकल्पसमाधिका अभ्यास है. यातैं साधनरूप अष्टअंगनमैं सविकल्पसमाधि गिनी है, निर्विकल्पसमाधि फल है. सो

निर्विकल्पसमाधि बी दोप्रकारकी होवै है:— एक अद्वैतभावनारूप, औ दूसरी अद्वैतावस्थानरूप होवै है. अद्वैत ब्रह्माकारअंतःकरनकी अज्ञातवृत्तिसहित होवै, सो अद्वैतभावनारूप निर्विकल्पसमाधि कहिये है. या समाधिमैं अभ्यास अधिक हुयेतैं, ब्रह्माकारवृत्ति बी शांत होय जावै है. यातैं वृत्तिरहितकूं अद्वैतावस्थानरूप निर्विकल्पसमाधि कहै है. जैसैं तप्तलोहके ऊपरि जलकी बुंद गेरी तप्तलोहमैं प्रवेस करै है, तैसैं अद्वैतभावनारूप समाधिके दृढअभ्यासतैं, अत्यंतप्रकासमानब्रह्मविषै वृत्तिका लय होवै है. सो अद्वैतावस्थानरूप निर्विकल्पसमाधि ताका साधन है.

अद्वैतावस्थानरूप समाधि, औ सुषुप्तिका इतना भेद है:— सुषुप्तिमैं वृत्तिका लय अज्ञानमैं होवै है; अद्वैतावस्थानसमाधिमैं वृत्तिका लय ब्रह्मप्रकासमैं होवै है. औ सुषुप्तिका आनंद अज्ञानआवृत है, औ समाधिमैं निरावर्नब्रह्मानंदका भान होवै है. परंतु

निर्विकल्पसमाधिमैं चारिविघ्न होवै है, सो निषेध करनैंकूं कहिये है:-लय १, विक्षेप २, कषाय ३, रसास्वाद ४. आलस्यकरिके अथवा निद्राकरिके वृत्तिके अग्र

वकूं लय कहे है. ता लयतैं सुषुप्तिसमान अवस्था होवै है; ब्रह्मानंदका भान होवै नहीं; यातैं निद्राआलस्यादिक निमित्ततैं जब वृत्तिका अपनै उपादान अंतःकरनमैं लय होता दीखै, तब योगी सावधान होयके निद्रादिकनकूं रोकिके वृत्तिकूं जगावै. इसरीतिसैं लयरूप विघ्नका विरोधी, जो निद्राआलस्य निरोधसहित वृत्तिका प्रवाहरूप जागरन; ताकूं गौडपादाचार्य चित्तसंबोधन कहै है.

विक्षेपका यह अर्थ है:- जैसैं बाज वा बिल्लीतैं डरिके चटिका गृहमैं प्रवेस करै; तब भयव्याकुलकूं गृहके अंतर तत्काल स्थान दीखै नहीं; यातैं फेरि बाहरि आयके, भय अथवा मरनरूप खेदकूं प्राप्त होवै है. तैसैं अनात्मपदार्थनकूं दुःखहेतु जानिके, अद्वैतानंदकूं विषय करनैवास्तै अंतर्मुख हुई जो वृत्ति, तहां वृत्तिका विषय चेतन अतिसूछम है; यातैं किंचितकालवृत्तिकी स्थितिविना, तत्कालही चेतनस्वरूपआनंदका लाभ नहीं होवै है, तातैं वृत्ति बहिर्मुख होवै है. इसरीतिसैं बहिर्मुखवृत्ति, विक्षेप कहिये है. सो वृत्तिकी स्थिरताविना स्वरूपआनंदका अलाभ होवै है. यातैं अंतर्मुखवृत्ति हुयेतैं बी जितनैकाल वृत्तिब्रह्माकार होवै नहीं, उतनैकाल बाह्यपदार्थनमैं दोषभावनातैं, वृत्तिकूं बहिर्मुखता योगी होनै देवै नहीं, किंतु वृत्तिकी अंतर्मुखताही स्थापन. विक्षेपरूप-विघ्नका विरोधीकरै जो योगीका प्रयत्न, ताकूं गौडपादाचार्यनै सम कह्या है.

रागादिक दोषकूं कषाय कहै है. यद्यपि रागादिक दोष-

कारके हैः— एक बाह्य है, औ दूसरे अंतर है. पुत्र स्त्री धन आदिक जिनके विषय वर्तमान होवैं, सो बाह्यकहिये है. भूतका वा भावीका चिंतनरूप जो मनोराज्य, सो आंतर कहिये है. सो दोनूंप्रकारके रागादिक, समाधिमैं प्रवृत्त योगीविषै संभवै नहीं. काहेतैं,

चित्तकी पांचभूमिका हैः— तिनमैं एक छेप नाम भूमिका है, दूजी मूढता, तीजी विछेप, चोथी एकाग्रता, पांचमी निरोधभूमिका है. लोकवासना, देहवासना, सास्त्रवासना, इसतैं आदिलेके रजोगुनका परिनाम जो दृढअनात्मवासना, ताकूं छेप कहै है. निद्राआलस्यादिक तमोगुनपरिनामकूं मूढता कहै है. ध्यानमैं प्रवृत्तचित्तकी कदाचित बाह्यप्रवृत्तिकूं विछेप कहै है. अंतःकरनका अतीतपरिनाम औ वर्तमानपरिनाम, समानाकार होवै, ताकूं एकाग्रता कहै है. यह एकाग्रताका लछन योगसूत्रमैं पतंजलिनै कह्या है; ताका भाव यह हैः— समाधिकालमैं योगिके अंतःकरनमैं एकाग्रता होवै है; सो एकाग्रता वृत्तिका अभावरूप नहीं; किंतु जितनै अंतःकरनके परिनाम समाधिकालमैं होवै है, सो सारे ब्रह्मकूंही विषय करै है. यातैं अंतःकरनके अतीतपरिनाम औ वर्तमानपरिनाम केवल ब्रह्माकार होनैतैं समानाकार होवै है. ता एकाग्रताकी वृद्धिकूं निरोध कहै है. ये पांच भूमिका अंतःकरनकी है. भूमिका नाम अवस्थाका है. ये

पांच भूमिकासहित अंतःकरनके, ये क्रमतैं नाम हैः—

छिप्त १, मूढ २, विछिप्त ३, एकाग्र ४, निरुद्ध ५. तिनमैं छिप्त औ मूढ अंतःकरनका तौ समाधिविषै अधिकार नहीं. विछिप्तअंतःकरनकूं अधिकार है. एकाग्र औ निरुद्धअंत करन समाधिकालमैं होवै हैं, यह योगग्रंथनमैं कह्या है. रागादिक दोषसहित अंतःकरन छिप्तही है. ता छिप्तअंतःकरनका योगमैं अधिकार नहीं. यातैं रागादिक दोषरूप कषाय समाधिके विघ्न है; यह कहना संभवै नहीं; तथापि यह समाधान हैः— बाह्य अथवा अंतर जो रागादिक है, सो तौ छिप्तअंतःकरनमैंही होवै है; ताका अधिकार बी नहीं. तौ बी अनेकजन्मविषै पूर्व अनुभव किये जो बाह्यअंतर रागद्वेष, तिनके सूछमसंस्कार, विछिप्तादिक अंतःकरनमैं बी संभवै है. यातैं रागद्वेषका नाम कषाय नहीं; किंतु रागद्वेषादिकनके संस्कार कषाय कहिये है. सो संस्कार अंतःकरन रहै जितनै दूरि होवै नहीं, यातैं समाधिकालमैं बी अंतःकरनमैं रहै है; परंतु रागद्वेषादिकनके उद्भूतसंस्कार समाधिके विरोधी है; अनुद्भूत विरोधी नहीं. प्रगटकूं उद्भूत कहै है; अप्रगटकूं अनुद्भूत कहै है. समाधिमैंप्रवृत्त जोगीकूं जो रागद्वेषके संस्कारनकी प्रगटता होवै, तौ विषयनमैं दोषदर्सनतैं दाबि देवै, विछेप कषायका यह भेद हैः-बाह्यविषयाकारवृत्तिकूं विछेप कहै है. औ योगीके प्रयत्नतैं जहां वृत्ति अंतर्मुख तौ होवै, परंतु रागादिकनके उद्भूतसंस्कारनतैं, अंतर्मुख हुई वृत्ति बी रुकि जावै, ब्रह्मकूं विषय करै नहीं; ताकूं कषाय कहै है.

विषयमैं दोषदर्सनसहितं योगीके प्रयत्नतैं, कषायविघ्नकी निवृत्ति होवै है.

रसास्वादका यह अर्थ हैः—योगकूं ब्रह्मानंदका अनुभव होवै है, औ विक्षेपरूप दुःखकी निवृत्तिका अनुभव होवै है. कहुं दुःखकी निवृत्तिसैं बी आनंद होवै है. जैसैं भारवाही पुरूषका भार उतरैसैं ताकूं आनंद होवै, तहां आनंदमैं और तौ कोई विषय हेतु है नहीं; किंतु भारजन्य दुःखकी निवृत्तिसैं यह कहै हैः— "मेरेकूं आनंद हुवा है." यातैं दुःखकी निवृत्ति बी आनंदका हेतु है. तैसैं जोगीकूं समाधिमैं विक्षेपजन्यदुःखकी निवृत्तिसैं जो आनंद होवै; ताका अनुभव, रसास्वाद कहिये है.जो दुःखनिवृत्तिजन्य आनंदके अनुभवसैंही योगी अलंबुद्धि करि लेवै, तौ सकल उपाधिरहित ब्रह्मानंदाकारवृत्तिके अभावतैं, ताका अनुभव समाधिमैं होवै नहीं. यातैं दुःखनिवृत्तिजन्य आनंदका अनुभवरूप रसास्वाद बी समाधिमैं विघ्न है. वांछितकी प्राप्तिविना बी विरोधीकी निवृत्तिसैं, आनंदकी उत्पत्तिमैं अन्य दृष्टांतः—जैसैं पृथिवीमैं निधि होवै, सोनिधि अत्यंतविषधरसर्पतैं रक्षित होवै, तहां निधिप्राप्तिसैं प्रथम बी, निधिप्राप्तिका विरोधी जो सर्प है; ताकी निवृत्तिसैं आनंद होवै है. तहां सर्पनिवृत्तिके आनंदमैं जो अलंबुद्धि करै, तौ उद्यमत्यागनैतैं निधिप्राप्तिका परमानंद प्राप्त होवै नहीं. तैसैं अद्वैतब्रह्मरूप निधि है, देहादिक अनात्मपदार्थनकी प्रतीतिरूप जो विक्षेप, सो सर्प है. विक्षेपरूप सर्पकी निवृत्ति-

जन्य जो अवांतरआनंदरूपी रसका अनुभवरूप आस्वादन है, सो निधिरूपी अद्वैतब्रह्मकी प्राप्तिजन्य जो महाआनंद है; ताकी प्राप्तिका प्रतिबंधक होनेतैं विघ्न कहिये है. अथवा,

रसास्वादका यह और अर्थ है:— सविकल्पसमाधिसैं उत्तर निर्विकल्पसमाधि होवै है. औ सविकल्पसमाधिमैं त्रिपुटी प्रतीत होवै है. यातैं सविकल्पसमाधिका आनंद त्रिपुटीरूप उपाधिसहित होनेतैं. सोपाधिक कहिये है. औ निर्विकल्पसमाधिमैं त्रिपुटी प्रतीत होवै नहीं, यातैं निरुपाधिकआनंद निर्विकल्पसमाधिमैं होवै है. इसरीतिसैं सविकल्पसमाधिसैं उत्तर निर्विकल्पसमाधिके आरंभमैं बी, सविकल्पसमाधिके सोपाधिकआनंदकूं त्यागि सकै नहीं; किंतु ताहीकूं अनुभव करै; सो रसास्वाद कहियें है. यातैं विक्षेपनिवृत्तिजन्य आनंदका अनुभव, अथवा सविकल्पसमाधिके आनंदका अनुभव, रसास्वाद कहिये है. सो दोनूं प्रकारका रसास्वाद, निर्विकल्पसमाधिके परमानंदके अनुभवका विरोधी होनेतैं, विघ्न है. यातैं ताकूं बी त्यागे ऐसैं निर्विकल्पसमाधिमैं च्यारिविघ्न होवै है; सो च्यारूविघ्न समाधिके आरंभमैं होवै है; यातैं सावधानतासैं च्यारूविघ्नकूं रोकिके,

समाधिमैं परमानंदकूं विद्वान अनुभव करै है. ताहीकूं जीवन्मुक्त कहै है. इसरीतिसैं ज्ञानीका चित्त निरालंब नहीं होवै है. जब प्रारब्धवलतैं समाधिसैं उत्थान होवै,

तबं बी समाधिमैं जो परमानंदका अनुभव किया है, ताकी स्मृति होवै है. यातैं उत्थानकालमैं बी ज्ञानीका चित्त निरालंब नहीं, औ ज्ञानवानकी जो भोजनादिकनमैं प्रवृत्ति होवै है; सो केवल प्रारब्धसैं होवै है; परंतु भोजनादिकव्यवहारमैं ज्ञानी खेद मानिके प्रवृत होवै है. काहेतैं, भोजनादिकनमैं प्रवृत्ति बी समाधिसुषुप्तिकी विरोधी है. जाकूं भोजनादिक सरीरनिर्वाहकी प्रवृत्तिही खेदरूप प्रतीत होवै, ताकी अधिकप्रवृत्ति संभवै नहीं. इसरीतिसैं बहुतआचार्योंनैं यही पक्ष लिख्या है. औ जीवन्मुक्तिका आनंद बी बाह्यप्रवृत्तिमैं होवै नहीं, किंतु निवृत्तिमैं होवै है. यातैं जीवन्मुक्तिके सुखार्थी ज्ञानवानकी बाह्यप्रवृत्ति संभवै नहीं.

तथापि ज्ञानवानके निवृत्तिका बी नियम कहना संभवै नहीं. काहेतैं निवृत्तिमैं अथवा प्रवृत्तिमैं वेदकी आज्ञारूप विधि तौ ज्ञानीकूं है नहीं; जातैं ज्ञानीके व्यवहारमैं नियम होवै. यातैं ज्ञानी निरंकुस है; ताका व्यवहार प्रारब्धसैं होवै है. जिस ज्ञानीका प्रारब्ध भिक्षाभोजनमात्र फलका हेतु है; ताकी भिक्षाभोजनमात्रमैं प्रवृत्ति होवै है जाका प्रारब्ध अधिकभोगका हेतु होवै, ताकी अधिकमैं बी प्रवृत्ति होवै है, और

जो ऐसैं कहैः— जाका प्रारब्ध भिक्षाभोजनमात्रका हेतु होवै ताहीकूं ज्ञान होवै है, अधिक व्यवहारका हेतु जाका प्रारब्ध होवै ताकूं ज्ञान होवै नहीं, यातैं भिक्षाभोजनादिक

व्यवहारतें अधिकव्यवहार ज्ञानीका होवै नहीं. जाकी अधिकप्रवृत्ति होवै सो ज्ञानी नहीं.

सो संका बनै नहीं. काहेतें, याज्ञवल्क्य, जनकादिक ज्ञानी कहे है. सभाविजयतें धनसंग्रहव्यवहार याज्ञवल्क्यका तथा राज्यपालनव्यवहार जनकका कह्या है. औ वासिष्ठग्रंथमैं अनेकज्ञानीपुरुषनके व्यवहार, नानाप्रकारके कहे है. यातैं ज्ञानीके प्रवृत्ति अथवा निवृत्तिका नियम नहीं. यद्यपि याज्ञवल्क्यननैं सभाविजयतें उत्तर, विद्वतसंन्यासरूप निवृत्तिही धारी है; औ प्रवृत्तिमैं ग्लानिके हेतु नानादोष कहे हैं; तथापि याज्ञवल्क्यकूं विद्वतसंन्यासतैं पूर्व ज्ञान नहीं था; यह कहना तौ संभवै नहीं. किंतु ज्ञान तौ प्रथम बी था, परंतु विद्वतसंन्यासतैं पूर्व जीवन्मुक्तिका आनंद प्राप्त हुवा नहीं. यातैं जीवन्मुक्तिके आनंदवासतैं सर्वसंग्रहका त्याग किया है याज्ञवल्क्यकूं प्रारब्ध कुछिकाल अधिकभोगका हेतु था, औ उत्तरकाल न्यूनभोगका हेतु था. यातैं प्रथम तौ याज्ञवल्क्यकूं ग्लानिविना अधिकभोग, औ आगे ग्लानितैं सर्वभोगनका त्याग हुवा है; औ जनकका प्रारब्ध मरनपर्यंत राज्यपालनादिक समृद्धिभोगका हेतु हुवा है. यातैं सदा त्यागका अभावही हुवा है; भोगनमैं ग्लानि बी हुई नहीं. औ वामदेवादिकनका प्रारब्ध न्यूनभोगका हेतु हुवा है, तिनकूं सदा भोगनसैं ग्लानितैं प्रवृत्तिका अभावही कह्या है. औ वासिष्ठमैं ऐसा बी प्रसंग है:— सिखरध्वजकी ज्ञानतैं अनंतर अधिकप्रवृत्ति हुई है. इसरीतिसैं नानाप्रकारके वि-

लछनव्यवहार ज्ञानीपुरुषनके कहे है; तिन सर्वकूं ज्ञान समान है, औ ताका फल मोछ बी समान है; औ प्रारब्धभेदसैं व्यवहारका भेद है. व्यवहारकी न्यूनतासैं जीवन्मुक्तिके सुखकी अधिकता, औ व्यवहारकी अधिकतासैं जीवन्मुक्तिके सुखकी न्यूनता होवै है. याकेविषै,

कोई यह संका करै है:- जो जीवन्मुक्तिके सुखकूं त्यागिके तुछभोगनमें प्रवृत्त होवै, सो विदेहमोछकूं बी त्यागिके, वैकुंठादिक लोककी इच्छा धारिके जावैगा.

सो संका बनै नहीं. काहेतैं, जीवन्मुक्तिके सुखका त्याग, औ भोगनमैं प्रवृत्ति तौ ज्ञानीकी प्रारब्धबलतैं संभवै है; औ विदेहमोछका त्याग औ परलोककूं गमन संभवै नहीं. काहेतैं, ज्ञानीके प्रान बाहरि गमन करै नहीं यातैं; परलोककूं गमन संभवै नहीं. औ विदेहमोछका त्याग बी संभवै नहीं. काहेतैं ज्ञानतैं अज्ञानकी निवृत्ति हायके प्रारब्धभोगकै अनंतर स्थूलसूछमसरीराकार अज्ञानका, चेतनमैं लय विदेहमोछ कहिये है; सो अवस्य होवै है. जो मूलअज्ञान बाकी रहै; अथवा नष्टअज्ञानकी फेरी उत्पत्ति होवै, तौ विदेहमोछका अभाव होवै. सो मूलअज्ञानका विरोधी ज्ञान हुयेतैं; अज्ञान बाकी रहै नहीं. औ प्रमानतैं नास हुये अज्ञानकी फेरि उत्पत्ति होवै नहीं. यातैं विदेहमोछका अभाव होवै नहीं. औ विदेहमोछके त्यागमैं, तथा परलोकके गमनमैं, ज्ञानीकी इच्छा बी संभवै नहीं. काहेतैं, ज्ञानीकूं इच्छा केवल प्रारब्धसैं होवै है. जितनी सामग्रीबिना प्रारब्धका

भोग संभवै नहीं. उतनी सामग्रीकूं प्रारब्ध रचैं है इच्छाविना भोग संभवै नहीं. यातैं ज्ञानीकी इच्छा बी प्रारब्धका फल हैं. औ अन्यलोकमैं अथवा इसलोकमैं, अन्यसरीरका संबंध ज्ञानीकूं प्रारब्धसैं बी होवै नहीं, यह पूर्व इसीतरंगमैं प्रतिपादन करि आये है. यातैं ज्ञानीकूं प्रारब्धसैं विदेह-मोक्षके त्यागकी, वा परलोकके गमनकी इच्छा होवै नहीं.

जीवन्मुक्तिके सुखके विरोधी वर्तमानसरीरमैं, अधिक-भोगनकी इच्छा तौ भिक्षाभोजनादिकनकी न्याई, जनका-दिकनकूं संभवै है. या स्थानमैं यह रहस्य है:— ज्ञानीकी बाह्यप्रवृत्ति जीवन्मुक्तिकी विरोधी नहीं; किंतु जीवन्मुक्तिके विलक्षनसुखकी विरोधी है, काहेतैं, आत्मा नित्यमुक्त है, अविद्यासैं बंध प्रतीत होवै है. जिसकालमैं ज्ञान होवै है, तिसीकालमैं अविद्याकृत बंधभ्रम नष्ट होवै है. ज्ञान हुयेतैं फेरि बंधभ्रांति होवै नहीं. सरीरसहितकूं बंधभ्रमका अभाव वही जीवन्मुक्ति कहिये है. देहादिकनकी प्रवृत्तिमैं तथा निवृत्तिमैं, ज्ञानीकूं बंधभ्रांति आत्मामैं होवै नहीं; यातैं बाह्यप्रवृत्तिसैं बी जीवन्मुक्ति दूरि होवै नहीं. तौ बी बाह्य-प्रवृत्तिमैं जीवन्मुक्तकूं विलक्षनसुख होवै नहीं; एकाग्रतारूप अंतःकरन परिनामतैं सुख होवै है. सो एकाग्रतापरिनाम बाह्यप्रवृत्तिमैं होवै नहीं. इसरीतिसैं प्रारब्धभेदतैं ज्ञानीपुरुषनके व्यवहार नानाप्रकारके है, परंतु जाका प्रारब्ध अधिक-प्रवृत्तिका हेतु होवै है; ताकूं मंदप्रारब्ध कहिये है. काहेतैं अधिकप्रवृत्ति एकाग्रताकी विरोधी है, औ एकाग्रताविना

निरुपाधिकआनंद प्रतीत होवै नहीं. यह समाधिनिरूपनमें कही है. और

जो पूर्व कह्या "ज्ञानवानकूं सर्व अनात्मपदार्थनमें मिथ्याबुद्धि होवै है, राग होवै नहीं; यातें प्रवृत्ति संभवै नहीं.

सो संका बी बनै नहीं. काहेतें, जैसें देहविषै मिथ्याबुद्धि बी ज्ञानीकूं होवै है; तौ बी देहके अनुकूल जो भिछादिक हैं, तिनमें केवल प्रारब्धसें प्रवृत्ति होवै है; तैसें जिसका अधिकभोगका प्रारब्ध होवै, तिस ज्ञानीकी अधिकप्रवृत्ति बी, होवै है. जैसें बाजीगरके तमासेकूं मिथ्या जानिके, सर्वलोकनकी प्रवृत्ति होवै है; तैसें सर्वपदार्थनमें ज्ञानीकूं मिथ्याबुद्धि हुयेसें बी प्रवृत्ति संभवै है. और

जो ऐसें कहै, जाकूं जिस पदार्थमें दोषदृष्टि होवै; ताकेविषे तिस पुरुषकी प्रवृत्ति होवै नहीं. ज्ञानीकूं अनात्मपदार्थनमें दोषदृष्टि होवै है, राग होवै नहीं; यातें प्रवृत्ति संभवै नहीं.

सो बी बनै नहीं. काहेतें, जिस अपथ्यसेवनमें, रोगीनै अन्वयव्यतिरेकतें दोष निश्चै किया है; ता अपथ्यसेवनमें प्रारब्धतें जैसें रोगीकी प्रवृत्ति होवै है तैसें प्रारब्धसें ज्ञानीकी सर्वव्यवहारमें प्रवृत्ति दोषदृष्टि हूये बी संभवै है. इसरीतिसें ज्ञानीके व्यवहारका नियम नहीं. यह पक्ष विद्यारन्यस्वामीनें विस्तारसें तृप्तिदीपमें प्रतिपादन किया है. यातें तत्त्वदृष्टिका व्यवहार नियमरहित है. समाधिरूप नियमकी विधि सुनिके तत्त्वदृष्टि हसैं है.

## दोहा.

भ्रमन करत कछु काल यूं, तत्त्वदृष्टि सुज्ञान;
भोगौ निजप्रारब्ध तब, लीन भये तिहिं प्रान. १७

टीकाः— प्रारब्धभोगतैं अनंतर ज्ञानीके प्रान गमन करैं नहीं. यातैं तत्त्वदृष्टिके प्रान लीन हुये यह कह्या. औ ज्ञानीके सरीरत्यागमैं कालविसेषकी अपेछा नहीं. उत्तरायनमैं अथवा दछिनायनमैं देहपात होवै, सर्वथा मुक्त है. तैसैं देसविसेषकी अपेछा नहीं. कासीआदिक पुनितदेसमैं, अथवा अत्यंतमलीनदेसमैं ज्ञानीका देहपात होवै, सर्वथा मुक्त है. तैसैं आसनविसेषकी अपेछा नहीं. पृथिवीमैं सबआसनतैं, अथवा सिद्धआसनतैं देहपात होवै, तैसैं सावधान ब्रह्मचिंतन करतेका, अथवा रोगव्याकुल हाह्राशब्द पुकारतेका देहपात होवै, सर्वथा मुक्त है. काहेतैं, जिसकालमैं ज्ञानतैं अज्ञान निवृत्त हुया तिसी कालमैं ज्ञानी मुक्त है. यातैं ज्ञानीकूं विदेहमोछमैं, देसकाल आसनादिकनकी अपेछा नहीं. जैसैं ज्ञानीकूं देहपातमैं देसकालादिकनकी अपेछा नहीं; तैसैं ज्ञानके निमित्त श्रवनमैं बी, देसकालआसनादिकनकी अपेछा नहीं, औ

उपासककूं देसकालादिकनकी अपेछा है. यद्यपि भीष्मादिक ज्ञानी कहे है, औ भीष्मनैं उत्तरायनबिना प्रान त्याग किये नहीं; तथापि भीष्मादिक अधिकारीपुरुष हैं. यातैं उपासकनके उपदेसवासतैं, तिन्होनैं कालविसेषकी प्र-

लीला करी है. औ वसिष्ठभीष्मादिक अधिकारी हैं; यातैंही उनकूं अनेकजन्म हुये है. काहेतैं; अधिकारीपुरुषनका एक कल्पपर्यंत प्रारब्ध होवै है. कल्पके अंतविना विदेहमोछ होवै नहीं. औ कल्पके भीतरि तिनकूं इच्छाबलतैं नानासरीर होवै है. तथापि आत्मस्वरूपविषै तिनकूं जन्ममरनभ्रांति होवै नहीं; यातैं जीवन्मुक्त है. तिन अधिकारीपुरुषनका व्यवहार संपूर्न अन्यके उपदेसनिमित्त है. औ अन्यज्ञानीके व्यवहारमैं कोई नियम नहीं. इस अभिप्रायतैं तत्त्वदृष्टिके देहपातका देसकालआसनादिक कुछ कह्या नहीं

## दोहा.

दूजा सिष्य अदृष्ट तिहि, गंगातट सुभथान,
देस इकंत पवित्र अति, कियो ब्रह्मको ध्यान. १८
सांख्ररीति तजि देहकूं, पूरव कह्यो जु राह;
जाय मिल्यो सो ब्रह्मतैं, पायो अधिक उछाह. १९

टीका:– जैसैं ज्ञानीकूं देसकालकी अपेछा नहीं; तासैं विपरीत उपासककूं जाननी. उत्तमदेसमैं, उत्तमउत्तरायनादिक कालमैं, उपासक सरीर तजै; तब उपासनाका फल होवै. औ ज्ञानीकूं मरनसमै सावधानतासैं, ज्ञेयकी स्मृतिकी अपेछा नहीं; उपासककूं मरनसमै ध्येयके स्वरूपकी स्मृतिकी अपेछा है. जिस ध्येयका पूर्व ध्यान किया है, ता ध्येयकी स्मृति मरनसमै होवै; तब उपासनाका फल होवै है. जैसैं ध्येयकी स्मृति चाहिये; तैसैं ध्येयब्रह्मकी प्राप्तिका जो मारग

पंचमतरंगमें कह्या है, ताकी बी स्मृति चाहिये. काहेतें, मार्गचिंतन बी उपासनाका अंग है, औ ज्ञाननिमित्त श्रवनमें देसकालआसनकी अपेछा नहीं. ध्यानमें उत्तमदेस, निरंतरकाल, सिद्धादिकआसनकी अपेछा है. यातें अदृष्टिकूं उत्तमदेस, गंगातीरमें स्थिति; औ मरनसमै बी योगसास्त्र रीतिसें देहपात कह्या.

## दोहा.

तर्कदृष्टि पुनि तीसरो, लहि गुरुमुखउपदेस;
अष्टादसप्रस्थान जिन, अवगाहन करि वेस. २०
जेती वानी वैखरी, ताको अलं पिछान;
हेतु मुक्तिको ज्ञान लखि, अद्वयनिश्चय ज्ञान. २१

टीकाः-तर्कदृष्टि नाम तीसरा, गुरुद्वारा उपदेसकूं श्रवनकरिके, सुनेअर्थमें अन्यसास्त्रनका विरोध दूरि करनेकूं-सर्वसास्त्रनका अभिप्राय विचारिके यह निश्चय कियाः-सकल सास्त्रनका परमप्रयोजन मोछ है. मोछका साधन ज्ञान है. सो ज्ञान अद्वयनिश्चयरूप है. भेदनिश्चय यथार्थज्ञान नहीं. सारेसास्त्र साछात अथवा परंपरातें ब्रह्मज्ञानका हेतुहै.

यद्यपि संस्कृतवैखरीवानीके अष्टादसप्रस्थान है; तिनमें कोई कर्मकूं प्रतिपादन करै है; कोई विषयसुखके उपायनकूं प्रतिपादन करै है; कोई ब्रह्मभिन्न देवनकी उपासनाकूं बोधन करै है. तैसें ज्ञाननिमित्त जो न्याय सांख्य आदिक सास्त्र है; सो बी भेदज्ञानकूंही यथार्थज्ञान कहै है; यातें सर्वकूं अद्वैतब्रह्मकी बोधकता बनै नहीं.

तथापि सकलसास्त्रनके कर्ता सर्वज्ञ हुयेहैं; औ कृपालु हुये हैं. यातैं तिनके किये मूलसूत्रनका तौ, वेदके अनुसारही अर्थ है. परंतु तिनके व्याख्यानकर्ता भ्रांत हुये हैं. मूलसूत्रकारनके अभिप्रायतैं विलछन अर्थ किया है. सो वेदसैं विरुद्ध तिन सूत्रनका अर्थ नहीं; किंतु सर्वसास्त्रनका वेदानुसारी अर्थ है. यह तर्कदृष्टिनैं उत्तमसंस्कारतैं निश्चै किया.

विद्याके अष्टादसप्रस्थान यह हैं:—चारिवेद, चारिउपवेद, षट् वेदके अंग, पुरान, न्याय, मीमांसा, धर्मसास्त्र; इसरीतिसैं वैखरीवानीरूप विद्याके अठारहभेद हैं. तिन्हकूं प्रस्थान कहे हैं.

रिग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद; ये च्यारिवेद हैं. तिनमैं कितनें वचन ज्ञेयब्रह्मकूं बोधन करै हैं; कितनें ध्येयकूं बोधन करै हैं; औ बाकी कर्मकूं बोधन करै हैं. जो कर्मके बोधक वेदवचन हैं; तिनका बी अंतःकरनसुद्धिद्वारा ज्ञानही प्रयोजन है. औ प्रवृत्तिमैं किसिवेदवचनका अभिप्राय नही, किंतु निषिद्धस्वाभाविकप्रवृत्तिसैं रोकनैमैं अभिप्राय है. यातैं अभिचारादि कर्मका प्रतिपादक जो अथर्वेद है; ताका बी निवृत्तिमैं तात्पर्य है. जो द्वेषतैं सत्रुमारनमैं प्रवृत्त होवै, तौ गरदानसैं अथवा अग्निदाहसैं सत्रुकूंनहीं मारै; इसवास्तैं अभिचारकर्म स्येनयागादिक कहे हैं. सत्रुमारनके निमित्त जो कर्म, सो अभिचारकहिये है. ऐसास्येन नाम यज्ञ है. स्येनयागका बोधक जो वेदवचन है, ताका यह अर्थ

नहीं:— सत्रुमारन कामनावाला स्येनयागमैं प्रवृत्त होवै; किंतु सत्रुमारनकी जाकूं कामना होवै, सो स्येनयागतैं भिन्न जो गरदानादिक सत्रुमारनके उपाय है, तिनमैंप्रवृत्त होवै नहीं. इसरीतिसैं द्वेषतैं प्राप्त जो गरदानादिक, तिनतैं निवृत्तिमैं स्येनयागबोधकवचनका अभिप्राय है, प्रवृत्तिमैं नहीं. काहेतैं, प्रवृत्ति द्वेषतैं प्राप्त है. जो अन्यतैंप्राप्त होवै; तामैं वाक्यका अभिप्राय होवै नहीं. इसरीतिसैं सारेअथर्ववेदका निवृत्तिमैं तात्पर्य है. और तीनिवेदनमैं कर्मबोधक वाक्यनका, अंतः-करनशुद्धिद्वारा ज्ञानमैं उपयोग स्पष्टहै. तैसैं

च्यारिउपवेद हैं:— आयुर्वेद १, धनुर्वेद २, गांधर्ववेद ३, अर्थवेद ४. तिनमैं आयुर्वेदके कर्ता ब्रह्मा, प्रजापति, अस्विनी-कुमार, धन्वंतरि आदिक हैं. चरक, वागभट्टादिक चिकित्सा-सास्त्र आयुर्वेद है. औ वात्सायनकृत कामसास्त्रवी आयुर्वेद-के अंतर्भूत है. काहेतैं, कामसास्त्रका विषय वाजीकरन स्तं-भनादिक वी, चरकादिकूंनै कथन किये है. तिस आयुर्वेद का वैराग्यमैंही अभिप्राय है. काहेतैं, आयुर्वेदकी रीतिसैं रोगादिकनकी निवृत्ति हुयेतैं वी, फेरी रोगादिक उत्पन्न होवै है. यातैं लौकिकउपाय तुछ है, इसअर्थमैं आयुर्वेदका अभिप्राय है. औ औषधदानादिकनतैं पुन्यहोयके अंतः-करनकी सुद्धिद्वारा वी ज्ञानमैं उपयोग है. तैसैं

विश्वामित्रकृत धनुर्वेदमैं आयुधनिरूपन किये है. आयु-ध च्यारिप्रकारके हैं:—मुक्त १, अमुक्त २, मुक्तामुक्त ३, जंत्रमुक्त ४. चक्रादिक हाथसैं फैंकिये, सो मुक्त कहिये है,

खड्गादिक अमुक्त कहिये है. बरछीआदिक मुक्तामुक्त कहिये है. सरगोलीआदिक जंत्रमुक्त कहिये है. इसरीतिसैं च्यारिप्रकारके आयुध है. तिनमैं मुक्तआयुधकूं अस्त्र कहै है. अमुक्तकूं सस्त्र कहै है. इन च्यारिप्रकारके आयुधनकूं, ब्रह्मा विष्णु पसुपति प्रजापति अग्नि वरुन आदिक देवता; मंत्र कहै है. छत्रिय कुमार अधिकारी कहे है. औ तिनके अनुसारी ब्राह्मनादिक बी अधिकारी कहे है. तिनके च्यारी-भेद कहै है:—पदाति १, रथारूढ २, अस्वारूढ ३, गजारूढ४. और युद्धमैं सकुन मंगल कहै है. इतना अर्थ धनुर्वेदके प्रथमपादमैं कह्या है. औ आचार्यका लछन तथा आचार्यतैं सस्त्रौंके ग्रहनकी रीति, धनुर्वेदके द्वितीयपादमैं कही है. औ गुरुसंप्रदायतैं प्राप्त हुये सस्त्रोंका अभ्यास, तथा मंत्रसिद्धि देवतासिद्धिका प्रकार तृतीयपादमैं कह्या है. सिद्ध हुये मंत्रनका प्रयोग चतुर्थपादमैं कह्या है, इतना अर्थ धनुर्वेदमैं है. सो ब्रह्मा प्रजापति आदिकनतैं विस्वामित्रकुं प्राप्त हुवा है, तानैं प्रगट किया है. औ विस्वामित्रतैं धनुर्वेद उत्पन्न नहीं हुवा. दुष्टचौरादिकनतैं प्रजापालन छत्रियका धर्मबोधक धनुर्वेद है. यातैं ताका बी अंतःकरनसुद्धि करिके, ज्ञानद्वारा मोछमैंही अभिप्राय है. तैसैं

गांधर्ववेद भरतनै प्रगट किया है. तामैं स्वर, ताल, मूर्छना सहित, गीत, नृत्य, वाद्यका निरूपन विस्तारसैं किया है. देवताका आराधन, निर्विकल्पसमाधिकी सिद्धि गांधर्व-

वेदका प्रयोजन कह्या है. यातें ताका वी अंतःकरनकी एकाग्रताकरिके; ज्ञानद्वारा मोक्षही प्रयोजन है. तैसें,

अर्थ वेद वी नानाप्रकारका है:— नीतिसास्त्र, अस्वसास्त्र, सिल्पिसास्त्र, सूपकारसास्त्रसें आदिलेके धनप्राप्तिके उपायबोधक सास्त्र अर्थवेद कहिये है. धनप्राप्तिके सकलउपायनमैं निपुनपुरुषकूं वी भाग्यविना धनकी प्राप्ति होवै नहीं; यातें अर्थवेदका वी वैराग्यमैंही तात्पर्य है. तैसें,

च्यारिवेदनके षट्अंग है:— सिक्षा १, कल्प २, व्याकरन ३, निरुक्त ४, ज्योतिष ५, पिंगल ६. ये छह वेदके उपयोगी होनेतें वेदके अंग कहिये है. तिनमैं,

सिछाका कर्त्ता पाणिनि है. वेदके सब्दनमैं अछरोंके स्थानका ज्ञान; औ उदात्त, अनुदात्त, स्वरितका ज्ञान, सिछातें होवै है. वेदनके व्याख्यानरूप जो अनेकप्रतिसाख्या नाम ग्रंथ है; सो वी सिछाके अंतर्भूत है.

तैसें वेदबोधितकर्मके अनुष्ठानकी रीति, कल्पसूत्रनतें जानी जावै है. यज्ञ करावनैवाले ब्राह्मन, ऋत्विक् कहिये है. तिनके भिन्नभिन्न करनैयोग्य जे कर्म; तिनके प्रकारके बोधक कल्पसूत्र है. तिन कल्पसूत्रके कर्त्ता कात्यायन आस्वलायनादिक मुनि है, यातें कल्पसूत्र वी वेदके उपयोगी होनेतें वेदके अंग है. तैसें,

व्याकरनतें वेदके सब्दनका सुद्धताका ज्ञान होवै है. सो व्याकरन सूत्ररूप अष्टअध्याय पाणिनि नाम मुनिनैं किया है. कात्यायन औ पतंजलिनैं तिन सूत्रनके व्याख्या-

नरूप वार्त्तिक औ भाष्य किये है. और जो व्याकरन है, तिनमैं वेदके सब्दनका विचार नहीं, यातैं पुरानादिकनमैं उपयोगी तौ है; परंतु बेदके उपयोगी नहीं. औ पाणिनिकृत व्याकरन, वेदके सब्दनकी बी सिद्धि करै है, यातैं वेदका अंग है. तैसैं यास्क नाम मुनिनैं त्रयोदसअध्यायरूप निरुक्त किया है. तहां वेदके मंत्रनमैं अप्रसिद्धपदनके अर्थबोधके निमित्त नाम निरूपन किये है. यातैं वैदिक, अप्रसिद्धपदनके अर्थ ज्ञानमैं उपयोगी होनैंतैं, निरुक्त बी वेदका अंग है. संज्ञाका बोधक जो पंचाध्यायरूप निघंटु नाम ग्रंथ यास्कनैं किया है; सो बी निरुक्तके अंतर्भूत है. और अमरसिंह, हेमादिकननै किये जो संज्ञाके बोधक कोस है, सो सारे निरुक्तके अंतर्भूत है. तैसैं,

पिंगलमुनिनैं सूत्र अष्टअध्यायतैं छंद निरूपन किये है; तिनतैं वैदिकगायत्रीआदिक छंदनका ज्ञान होवै है; यातैं पिंगलकृत सूत्र बी वेदके अंग है. तैसैं,

आदित्य गर्गादिकृत ज्योतिष बी वेदका अंग है. काहेतैं, वैदिककर्मके आरंभमैं कालका ज्ञान चाहिये. सो कालज्ञान ज्योतिषतैं होवै है; यातैं वेदका अंग है. यह षट् जो वेदके अंग है, तिनमैं वेदमैं उपयोगी जो अर्थ नहीं; ताका प्रसंगतैं निरूपन किया है, प्रधानतासैं नहीं. यातैं वेदका जो प्रयोजन है सोई षट्अंगनका प्रयोजन है; पृथक् नहीं.

पुरान अष्टादस है. व्यास नाम मुनिनैं किये है. तिनके ये नाम हैं:— ब्रह्म १, पद्म २, वैष्नव ३, शैव ४, भागवत ५,

नारदीय ६, मार्कंडेय ७, आग्नेय ८, भविष्य ९, ब्रह्मवैवर्त १०, लैंग ११, वाराह १२, स्कंद १३, वामन १४, कौर्म १५, मात्स्य १६, गारुड १७, ब्रह्मांड १८; ये अष्टादसपुरान व्यासनै किये है. तैसें कालीपुरानादिक और बहुत है. सो उपपुरान है. कोई उपपुरान वी अष्टादस कहे है, सोनियम नहीं. उपपुरान बहुत है. भागवत दो है:— एक तौ वैष्नवभागवत है, औ दूसरा भगवतीभागवत है, दोनूंकी समानसंख्या अष्टादससहस्र है औ दोनूंके द्वादस स्कंध है, परंतु तिनमैं एक पुरान है, दूसरा उपपुरान है. दोनूं व्यासकृत है. यातैं दोनूं प्रमान है, जैसें व्यासनै पुरान किये है; तैसें उपपुरान वी कोई व्यासनै किये है, कोई उपपुरान परासरआदिक अन्य सर्वज्ञमुनियोंनैं किये है, यातैं उपपुरान वी प्रमान है, जो उपनिषदनका अर्थ है, सोई उपपुरानसहित पुरानका अर्थ है, यह वार्ता आगे प्रतिपादन करैंगे, तैसें,

पंचअध्यायरूप न्यायसूत्र गौतमनैं किये है. तिनमैं जुक्ति प्रधान है जुक्तिचिंतनतैं पुरुषकी तीव्रबुद्धि होवै; तब मनन करनेविषेसमर्थ होवै है, यातैं जुक्तिप्रधान न्यायसूत्रनका वी, मननद्वारा वेदांतजन्य ज्ञानही फल है. औ कणाद नाम मुनिनैं दसअध्यायरूप वैसेसिकसूत्र किये है; तिनका वी न्यायमैं अंतर्भाव है. तसें,

मीमांसाके दो भेद है:— एक धर्ममीमांसा, दूसरी ब्रह्ममीमांसा. धर्ममीमांसाकूं पूर्वमीमांसा कहै है, ब्रह्ममीमां-

साकूं उत्तरमीमांसा कहै है, धर्ममीमांसाके द्वादसअध्याय है, जैमिनी नाम ताका कर्ता है. क्रर्मअनुंष्ठानकीरीति तामें प्रतिपादन करी है. यातें विधिसें कर्ममें प्रवृत्ति, धर्ममीमांसाका फल है. कर्ममें प्रवृत्तिसें अंतःकरनसुद्धि, तासें ज्ञान औ, ज्ञानतें मोछ. इस रीतिसें धर्म मीमांसाका मोछ फल है. औधर्ममीमांसाके द्वादसअध्यायनमें, आपसमें अर्थका भेद है सो कठिन है; यातें लिख्या नहीं. औ संकर्षनकांड पंचअध्यायरूप जैमिनिनें किया है, ताकेविषे उपासना कही है. ताका बी धर्ममीमांसाके अंतर्भाव है. तैसें,

ब्रह्ममीमांसाके च्यारीअध्याय है, ताका कर्त्ता व्यास है; एकएक अध्यायके चारिचारिपाद है. तहां प्रथमअध्यायमें यह अर्थ हैः—सारेउपनिषदवाक्य, ब्रह्मकूं प्रतिपादन करै है; अन्यकूं नहीं. औ उपनिषद्वाक्यनका मंदबुद्धिपुरुषकूं आपसमें विरोध प्रतीत होवै है;ताका परिहार द्वितीयअध्यायमें कह्या है. औ ज्ञान तथा उपासनाके साधनका विचार तृतीयअध्याइमें कह्या है. ज्ञानउपासनाका फल चतुर्थअध्यायमें कह्या है. यह ब्रह्ममीमांसारूप सारीरकसास्त्रही सर्वसास्त्रनमें प्रधान है. मुमुछुकूं येही उपादेय है. ताके व्याख्यानरूप ग्रंथ यद्यपि नाना है; तथापि श्रीसंकरकृतभाष्यरूप व्याख्यानही मुमुछुकूं श्रोतव्य है. ताका ज्ञानद्वारा मोछफल स्पष्टही है. तैसें,

मनु, याज्ञवल्क्य, विष्नु, यम, अंगिरा, वसिष्ठ, दछ, संवर्त्त, सातातप, परासर, गौतम, संखलिखित, हारी-

त, आपस्तंब, सुक्र, बृहस्पति, व्यास, कात्यायन, देवल, नारद, इत्यादिक सर्वज्ञ हुये है. तिनोंनैं वेदके अनुसार स्मृति नाम ग्रंथ किये है, सो धर्मसास्त्र कहिये है. तिनमैं वर्नआश्रमके कायिक वाचिक मानसिक धर्म कहे है. तिनका बी अंतःकरनसुद्धिद्वारा ज्ञान होयके मोछही प्रयोजन है. तैसैं व्यासनै महाभारत, औ वाल्मिकीनैं रामायन किया है; तिनका बी धर्मसास्त्रमैं अंतर्भाव है औ देवताआराधनके निमित्त जो मंत्रसास्त्र है, ताका बी धर्मसास्त्रमैं अंतर्भाव है. देवताआराधनका अंतःकरनसुद्धि प्रयोजन है. तैसैं सांख्यसास्त्र, योगसास्त्र, वैष्नवतंत्र, सैवतंत्रादिक बी, धर्मसास्त्रके अंतर्भूत है. काहेतें, इनमैं बी मानसधर्मका निरूपन है. तहां

सांख्यसास्त्र षटअध्यायरूप कपिलनै किया है. ताके प्रथमअध्यायमैं विषय निरूपन किये है. द्वितीयअध्यायमैं महत्तत्त्व अहंकारादिक प्रधानके कार्य कहे है. तृतीयअध्यायमैं विषयनतें वैराग्य कह्या है. चौथेअध्यायमैं विरक्तोंकी आख्यायिका कही है. पंचमैं अध्यायमैं परपछका खंडन कह्या है. छठेअध्यायमैं सारेअर्थका संछेपतैं संग्रह किया है. प्रकृतिपुरुषके विवेकतैं पुरुषका असंगज्ञान सांख्यसास्त्रका प्रयोजन है. ताका बी त्वंपदके लछ्यअर्थसोधनद्वारा महावाक्यजन्य ज्ञानमैं उपयोग होनैंतें, मोछही फल है. तैसैं,

योगसास्त्र चारिपादरूप है. पतंजलि ताका कर्ता है. सो पतंजलि सेषका अवतार है. एककृपि संध्याउपासन

करेथा, ताकी अंजलिमैं प्रगट होयके पृथिवीमैं पड्या है; यातैं पतंजलि नाम कहिये है, तानै सरीरका रोगरूपी मल दूरि करनै वास्ते चिकित्साग्रंथ किया है. औ असुद्धसब्द-का उच्चारनरूपी जो वानीका मल है, ताके नासकूं पाणि-नीव्याकरनका भाष्य किया है. तैसैं विछेपरूप अंतःकरन-का मल है; ताके नासकूं योगसूत्र किये है. तहां प्रथम-पादमैं चित्तवृत्तिका निरोधरूप समाधि, औ ताके साधन अभ्यासवैराग्यादिक कहे है. तैसैं विछिप्तचित्तकूं समाधिके साधन; यम, नियम, आसन, प्रानायाम, प्रत्याहार, धारना. ध्यान, समाधि; ये आठ समाधिके अंग द्वितीयपादमैं कहे हैं; तृतीयपादमैं योगकी विभूति कही है; चतुर्थपादमैं यो-गका फल मोछ कह्या है. इसरीतिसैं योगसास्त्र बी ज्ञानसा-धन, निदिध्यासनकूं संपादनद्वारा मोछका हेतु है. औ सा-रीरकसूत्रनमैं जो सांख्ययोगका खंडन किया है, सो तिनके व्याख्यान जो उपनिषदनसैं विरुद्ध किये है; तिनका खंडन किया है; सूत्रनका नहीं. तैसैं,

न्याय वैसेषिकका खंडन वी विरुद्धव्याख्यानका है. तैसैं नारदनैं पंचरात्र नाम तंत्र, किया है; तामैं वासुदेवमैं अंतःकरनं स्थापन कह्या है; ताका बी अंतःकरनकी स्थिर-तासैं ज्ञानद्वारा मोछही फल है. सारैवैष्नवपंथ पंचरात्रके अंतर्भूत है. सो पंचरात्र धर्मसास्त्रके अंतर्भूत है. तैसैं पासु-पततंत्रमैं पसुपतिका आराधन कह्या है; ताका कर्ता पसुप-

ति है. ताका बी अंतःकरनकी निश्चलताद्वारा मोछसाधन ज्ञान फल है. और

जो सैवग्रंथ है. सो सारे पसुपततंत्रके अंतर्भूत है. तैसें गनेस, सूर्य, देवीकी उपासनाबोधक ग्रंथनका; चित्तकी निश्चलताद्वारा ज्ञान फल है. औ सर्वका धर्मसास्त्रमैं अंतर्भाव है. परंतु,

देवीकी उपासनाके बोधक ग्रंथनमैं, दो संप्रदाय है:— एक दछिनसंप्रदाय, दूसरी उत्तरसंप्रदाय है. उत्तरसंप्रदायकूं वाममार्ग कहै है. तिनमैं दछिनसंप्रदायकी रीतिसैं जिन ग्रंथमैं देवीकी उपासना है, सो तौ धर्मसास्त्रके अंतर्भूत है. औ वाममार्ग जिन ग्रंथनमैं है, सो धर्मसास्त्रसैं विरुद्ध है, यातें अप्रमान है. यद्यपि वामतंत्र सिवनै किया है, तथापि सकलसास्त्र औ वेदसैं विरुद्ध है; यातें प्रमान नहीं. जैसें विष्नुके बुद्धअवतारनैं नास्तिकग्रंथ किये है; सो वेदविरुद्ध है; यातें प्रमान नहीं. तैसें सिवकृतवामतंत्र वी अत्यंतविरुद्ध मदिरादिक अत्यंतअसुद्धपदार्थनका तामैं ग्रहन लिख्या है. औ उत्तमपदार्थनके जो नाम है, सोई मलिनपदार्थनके नाम लोकवंचनके निमित्त कहे है. मदिराका नाम तीर्थ, मांसका नाम सुद्ध, मदिरापात्रका नाम पद्म, प्याजका नाम व्यास, लसुनका नाम सुकदेव, मदिराकारीकलालका नाम दीछित कहे है. तैसें वेस्यासेवी चर्मकारी आदिक चंडालीसेवीकूं प्रागसेवी कासीसेवी कहै है. औ भैरवीचक्रमैं स्थितजो चांडालादिक है; तिनकूं ब्राह्मन कहै है. औ अत्यंतव्यभिचा-

रिनीकूं योगिनी, औ व्यभिचारीकूं योगी कहै है. ऐसें अने-
कप्रकारसें निषिद्ध तिनका व्यवहार है. पूजनके समै अनेक
दोषवतीस्त्रीकूं उत्तमसक्ति कहै है. जातिकी चांडाली अ-
तिव्यभिचारिनी, रजस्वलास्त्रीकूं देवीबुद्धिसें पूजन करै है.
ताका उच्छिष्टमदिरापान करै है औ अधिकमदिरापानसें
जो वमन करि देवै, ताकूं पृथिवीमें नहीं गिरनै देवै है;
किंतु आचार्यसहित दूसरे सावधान भच्छन करै है. वमनकूं
भैरवी कहै है. औ स्त्रीकी योनिमें जिव्हा लगायके मंत्रनका
जप करै है. मदिरा १, मांस २, मत्स्य ३, मुद्रा ४, मंत्र
५; इन पंच मकारनकूं भोगमोछ निमित्त सेवन करै है. प्रथ-
मा द्वितीयादिक तिन मकारनके अप्रसिद्ध नामनतें व्यवहार
करै है. इसतें आदिलेके वामतंत्रका सकलव्यवहार, इस-
लोकतें औ परलोकतें भ्रष्ट करै है. इसी कारनतें, कर्नछेदी
योगी, औ अवधूतगुसांई, तैसें अनेक संन्यासी औ ब्राह्मना-
दिक वाममार्गकूं सेवन करै है. तौ बी लोकवेदनिंदित जा-
निके गुप्त राखै है. अधिक क्या कहै! वामतंत्रकी रीति
सुनिके, म्लेच्छके बी रोमांच होय जावै. ऐसा निंदित वामतं-
त्र है. सर्वंगी जो अभच्छन करै है; सो सारे निंदितमार्ग वाम-
तंत्रमें कहे है. अतिनीचव्यवहार लिखनैं योग्य नहीं; यातें वि-
सेसप्रकार लिख्या नहीं. सर्वथा वामतंत्र त्यागनै योग्य है. तैसें
नास्तिकमत बी त्यागनै योग्य है. नास्तिकनके
षटभेद है:— माध्यमिक १, योगाचार २, सौत्रांतिक ३,
वैभाषिक ४, चार्वाक ५, दिगंबर ६. ये छह वेदकूं प्रमान

नहीं मानै है. तिनका आपसमें विलछनसिद्धांत है. माध्यमिक सून्यवादी है. योगाचारके मतमैं सारै पदार्थ विज्ञानसैं भिन्न नहीं; विज्ञानहीं तत्त्व हैं; सो विज्ञान छनिक है. सौत्रांतिकमतमैं विज्ञानका आकार बाह्यपदार्थ विषयविना होवै नहीं; यातैं विज्ञानतैं बाह्यपदार्थनका अनुमान होवै है; इस रीतिसैं सौत्रांतिकमतमैं अनुमानप्रमानके विषय, बाह्यपदार्थ है, प्रत्यछ नहीं, और स्थिर नहीं; किंतु सारेपदार्थ छनिक है. औ वैभाषिकमतमैं बाह्यपदार्थ छनिक तौ है; परंतु प्रत्यछप्रमानके विषय है; इतना भेद है. ये चारीमत सुगतके है. चार्वाकमतमैं पदार्थ छनिक नहीं, परंतु तिसके मतमैं देह आत्मा है. औ दिगंबरमतमैं देह आत्मा नहीं; देहसैं आत्मा भिन्न है; परंतु जितना देहका परिमान होवै, उतना आत्माका परिमान है. इसरीतिसैं इनका आपसमैं मतका भेद है. और वी इनकी आपसमैं मतकी विलछनता बहुत है, परंतु सारे वेदके विरोधी हैं, यातैं नास्तिक है; इसी कारनतैं तिनके मतका उपपादन औ खंडन विसेष करिके लिख्या नहीं. इसरीतिसैं,

वाममार्ग औ नास्तिकमतनके ग्रंथ यद्यपि संस्कृतबानीरूप है, तथापि वेदबाह्य है, यातैं वेदके अनुसारी विद्याके प्रस्थान अष्टादसही है. और ममटआदिकनैं जो साहित्यग्रंथ किये है, तिनका वी कामसास्त्रमैं अंतर्भाव है. तैसैं सकलकाव्यनका वी किसीका कामसास्त्रमैं, किसीका धर्मसास्त्रमैं अंतर्भाव है. इसरीतिसैं अष्टादसविद्याके प्रस्थान,

सारे ब्रह्मज्ञानद्वारा मोक्षके हेतु है. कोई साक्षातज्ञानका हेतु है, कोई परंपरातैं, ज्ञानका हेतु है. यह तर्कदृष्टिनै सकलसास्त्रनका अभिप्राय निश्चय किया. यद्यपि उत्तरमीमांसाविना सारेसास्त्र जिज्ञासूकूं हेय है, यह सारीरकमैं सूत्रकार भाष्यकारनै प्रतिपादन किया है. यातैं अन्यसास्त्र बी मोक्षके उपयोगी है, यह कहना संभवै नहीं; तथापि सारग्राहीदृष्टिसैं तर्कदृष्टिनैं यह सार निश्चय किया.

## दोहा.

सुनि प्रसिद्ध विद्वान पुनि, मिल्यो आप तिहि जाय;
निश्चय अपनो तांहि तिहीं, दीनो सकल सुनाय २२

टीकाः—गुरुद्वारा सुनै अर्थमैं बुद्धिकी स्थिरताके निमित्त, सकलसास्त्रनका अभिप्राय विचाऱ्या; तौ बी फेरि संदेह हुवाः—जो सास्त्रनका अभिप्राय मैं निश्चय किया सोई है, अथवा अन्य अभिप्राय है! काहेतैं, तर्कदृष्टि कनिष्ठअधिकारी कह्या है; यातैं वारंवार कुतर्कतैं संदेह होवै है. ताकी निवृत्ति वास्तैं अन्यविद्वानकेनिश्चयतैं, अपनै निश्चयकी एकता करनैकुं गया.

## दोहा.

तर्कदृष्टिके वैन सुनि, सो बोल्यो बुधसंत;
जो मोसूं तैं यह कह्यो, सोइ मुख्यसिद्धांत. २३
संसय सकल नसाय यूं, लख्यो ब्रह्म अपरोक्ष;
जग्र जान्यो जिन सब असत, तैसैं बंध रु मोक्ष.

सेष रह्यो प्रारब्ध सूं, इच्छा उपजी येह;
चलितत्कालहि देखिये, जननि जनक जुत गेह २५

टीकाः— "ज्ञानीका सकलव्यवहार अज्ञानीकी न्याई प्रारब्धसैं होवै है;" यह पूर्व कही है; यातैं इच्छा संभवै है. औ कहूं सास्त्रमैं ऐसा लिख्या है:— ज्ञानीकूं इच्छा होवै नहीं, ताका यह अभिप्राय नहीं, ज्ञानीका अंतःकरन पदार्थकी इच्छारूप परिनामकूं प्राप्त होवै नहीं. काहेतैं,

अंतःकरनके इच्छादिक सहजधर्म है.औ अंतःकरन यद्यपि भूतनके सत्वगुनका कार्य कह्या है; तथापि रजोगुनतमोगुनसहित, सत्वगुनका कार्य है; केवल सत्वगुनका नहीं. केवल सत्वगुनका कार्य होवै, तौ चलस्वभाव अंतःकरनका नहीं हुवा चाहिये. तैसैं राजसीवृत्ति; काम, क्रोधादिक; औ मूढतादिक तामसीवृत्ति, किसी अंतःकरनकी नहीं हुई चांहिये. यातैं केवलसत्वगुनका अंतःकरन कार्य नहीं; किंतु अप्रधानरजोगुनतमोगुनसहित; प्रधानसत्वगुनवाले भूतनतैं अंतःकरन उपजै है. यातैं अंतःकरनमैं तीनूंगुन रहै है. सो तीनुंगुन बी पुरुषनके जितनैं अंतःकरन है, तिनमैं सम नहीं; किंतु न्यूनअधिक है. यातैं गुनोकी न्यूनता अधिकतासैं सर्वके विलछनस्वभाव है. इसरीतिसैं तीनूंगुणका कार्य अंतःकरन है.

जितनैं अंतःकरन रहै, उतनैं रजोगुनका परिनामरूप इच्छाका अभाव बनै नहीं: यातैं ज्ञानीकूं इच्छा होवै नहीं; ताका यह अभिप्राय है:—अज्ञानी औ ज्ञानी दोनंकूं इच्छा

तौ समान होवै है, परंतु अज्ञानी तौ इच्छादिक आत्माके धर्म जानै है; औ ज्ञानीकुं जिसकालमैं इच्छादिक होवै है, तिसकालमैं बी आत्माके धर्म इच्छादिकनकूं जानै नहीं. किंतु, काम, संकल्प, संदेह, राग, द्वेष, श्रद्धा, भय, लज्जा-इच्छादिक; अंतःकरनके परिनाम है; यातैं अंतःकरनके धर्म, जानै है. इसरीतिसैं इच्छादिक होवै बी है, आत्माके धर्म इच्छादिक ज्ञानीकूं प्रतीत होवै नहीं. यातैं ज्ञानीमैं इच्छा का अभाव कह्या है. तैसैं मन बानी तनसैं जो व्यवहार ज्ञानी करै, सो सारा ज्ञानीकूं आत्मामैं प्रतीत होवै नहीं. किंतु सारीक्रिया मन बानी तनमैं है. "औ आत्मा असंग है," यह ज्ञानीका निश्चय है. यातैं सर्वव्यवहार कर्त्ता बी ज्ञानी अकर्त्ता है. इसीकारनतैं श्रुतिमैं यह कह्या है:—"ज्ञानतैं उत्तर किये जो वर्तमानसरीरमैं सुभअसुभकर्म, तिनके फल पुण्यपापका संबंध होवै नहीं" प्रारब्धबलतैं अज्ञानीकी न्याई सर्वव्यहार. औ ताकी इच्छा संभवै है.

सुभसंतति नाम राजाकूं त्यागिके तीनूंपुत्र निकसे, तहां पुत्रकी कथा कही, अब पिताका प्रसंग कहै है:—

## दोहा.

पुत्र गये लखि गेहतैं, पितु चित उपज्यो खेद;
सूनो राज न तिनि तज्यो, नहिं यथार्थनिर्वेद. २६

टीकाः— पुत्र गहतैं निकसे, तब राजाकूं तीव्रवैराग्यके अभावतैं तिनके वियोगका दुख हुवा. तैसैं मंदवैराग्य हुवा

है; यातैंविषयभोगका सुख होवै नहीं. औ बाहरि निकसनैं-की इछा करी, सो पुत्रनके निकसनैंतैं सूनाराज छोडि सकै नहीं; यातैं बी दुख हुवा. जो तीव्रवैराग्य होता तो सूनाराज-बी त्यागि देता; सो वैराग्य तीव्र हुवा नहीं; किंतु मंद हुवा है; यातैं त्यागि सकै नहीं. औ भोगनमैं आसक्ति नहीं; यातैं उभयथा खेदही है. यथार्थनिर्वेद कहिये, तीव्रवैराग्य नहीं. मंदवैराग्यका फल उपास्यकी जिज्ञासा कहै हैः—

चौपाई.

सुभसंतति पितु सो वडभागा,
भयो प्रथम तिहिं मंदविरागा;
जिज्ञासा उपजी यह ताकूं,
देव ध्येय को ध्याउं जाकूं? २७
पंडित निरनो करन बुलाये,
यथायोग्य आसन बैठाये;
प्रश्न कियो यह सबके आगै,
अस को देव न सोवै जागै? २८
पुरुषारथ हित जन जिहि जाचै,
भक्तिमानके मनमैं राचै;
सुनि यह पृथिवीपतिकी वानी,
इक तिनमैं बोल्यो सुज्ञानी. २९
सुन राजा तुहि कहूं सु देवा,
सिव विरंचि लागे जिहि सेवा;

संख चक्र धारी हितकारी,
पद्म गदा धर परउपकारी. ३०
मंगलमूर्त्ती विष्णु कृपालू,
निज सेवक लखि करत निहालू;
सक्ति गनेस सूर सिव जे है,
सब आज्ञा ताकीमैं ते है. ३१
भारत सकलग्रंथ यह भाखै,
पद्मपुरान तापनी आखै;

टीकाः— तापनी कहीये नृसिंहतापनी, रामतापनी, गोपालतापनी, उपनिषद.

चौपाई.

विष्नुरूपतैं उपजत सबही,
परैं भीर जाचैं तिहि तबही. ३२
विविधवेषको धरि अवतारा,
सब देवनकुं देत सहारा;
यातैं ताकी कीजै पूजा,
विष्नुसमान सेव्य नहिं दूजा. ३३
विष्नुभक्त सिव उत्तम कहिये,
तथापि सेव्य स्वरूप न लहिये;
रूप अमंगल सिवको सब सम,
ध्यान करै नहिं ताको यूं हम. ३४

सब कहिये मुरदा, ताके सम अमंगल.

## चौपाई.

राख डमरु गजचर्म कपाला,
धरै आप किहीं करै निहाला;
ताको पूत गनेस हु तैसो,
रुप विलछन नरपसु जैसो. ३५
सठ हठतैं ध्यावत जो देवी,
तासमरूप धरत तिहिं सेवी;
तिय निंदित असुची न पवित्रा,
औगुन गिनै न जात विचित्रा. ३६
कपट कूटको आकर कहिये,
पराधीन निज तंत्र न लहिये;
ऐसो रूप जू चहिये जाकूं,
सो सेवहु नर खरतम ताकूं. ३७
भ्रमत फिरै निसदिन यहभानू,
रहत न निश्चल छनइक थानूं;
भ्रमतो फिरै उपासक ताको,
तिहिसमान सेवक जो जाको. ३८
आनदेव यातैं सबत्यागै,
सेवनिय इक हरि नित जागै;
पूजन ध्यान करन विधि जो है,
नारदपंचरात्रमैं सोहै. ३९

टीकाः— विष्णुकूं त्यागिके प्रसिद्ध जो च्यारिउपासना है; तिन एकएकका निषेध कियेतें बी, स्मार्त्तउपासनाका बी निषेध किया. काहेतें, पांचूदेवनकूं समबुद्धिकरिके उपासै, ताकूं स्मार्त्तउपासना कहै है. सिवआदिक च्यारिदेवनकूं विष्णुकी समता निषेधनैतें, स्मार्त्तउपासनाका निषेध बी अर्थसें किया है.

## चौपाई.

सिवसेवक मुनि सुनि तिहि बैना,
क्रोधसहित बोल्यो चल नैना;
सुन राजन बानी इक मोरी,
जामैं वचन प्रमान करोरी. ४०
सिवसमान आन को कहिये,
मांगे देत जाहि जो चहिये;
सब विभूति हरिकूं दै मागी,
धरत विभूति आप नितत्यागी. ४१
चर्म कपाल हेतु इहि धारै,
सम नहिं उत्तम अधम विचारै;
नग्न रहत उपदेसत येही,
नहीं विरागसम सुख व्है केहि. ४२

टीकाः— वैष्नवनैं चर्मकपालादिक निंदितवस्तुका धारन आक्षेप किया, ताका यह समाधान है:— महादेवकूं सर्व

पदार्थनमैं समबुद्धि है. द्वितीयपादका अन्वय यह है:— सम विचारै, उत्तम अधम नहीं विचारै.

चौपाई

सदावर्त ऐसो दे भारी,
कासीपुरी मरे नरनारी;
सो सायुज्यमुक्तिकूं जावै-
गर्भवास संकट नाहीं पावै. ४३
सिवसमान नरनारी ते सब,
लहत सु दिव्यभोग सगरे तब;
करत आप अद्वयउपदेसा,
तजत लिंग यूं ब्रह्मप्रवेसा. ४४
ऊंचनीच रंचहु नहिं देखै.
मुक्ति सनकूं दे इक लेखै;
सिवसमान राजनको दाता,
भक्त अभक्त सबनको त्राता, ४५
विष्नुसुभाव सुन्यो हम ऐसो,
जगमैं जन प्राकृत है तैसो;
त्राता भक्त अभक्त न त्राता,
यह प्रसिद्ध सबजगमैं नाता. ४६
हरिसेवक हर सेव्य बखांन्यो,
रामचंद्र रामेस्वर मान्यो;

स्कंदपुरान व्यास बहु भाख्यो,
हरिसेवक हर सेव्यहि राख्यो. ४७
कह्यो जु भारत पद्मपुराना,
सबदेवनतैं हरि अधिकाना;
भारततातपर्य नहिं देख्यो,
जो अप्पयदीछित बुध लेख्यो. ४८

टीकाः—वैष्नवनै यह कह्याः—"भारतादिक ग्रंथनमैं, विष्नु सर्व देवनका पूज्य कह्या है," सो बनै नहीं. काहेतैं, भारतग्रंथका तात्पर्य देखेतैं सिवकूंही ईस्वरता प्रतीत होवै है. यह अप्पयदीछित नाम विद्वाननै, सकलपुरान इतिहासका [illegible] लिख्या है: तहां भारतमैं यह प्रसंग है:— अस्वत्थामानै नारायनअस्त्र औ अग्नेयअस्त्रका प्रयोग किया, तब बहुत सैनाका तौ संहार बी हुवा, परंतु पंचपांडवोंमैं कोई मर्‍या नहीं, तब रथकूं त्यागिकें धनुर्वेद औ आचार्यकूं धिक्कार करता वनकूं चल्या, तहां व्यासभगवान ताकूं मिले, औ यह कह्याः—"हे ब्राह्मन ! तूं आचार्य औ वेदकूं धिक्कार मति कहूं, यह अर्जुनकृष्न दोनूं नरनारायनरूप है. इनूंनै सिवका पूजन बहुत किया है.यातैं इनकी भक्तिके आधीन हुवा त्रिसूली महादेव, इनकेरथके आगै रहै है. यातैं इन दोनूंके उपरि प्रयोग किये अनेकसस्त्रअस्त्रनकी सामर्थ्यकूं महादेव नास करी देवै है." इस भारतप्रसंगतैं, नारायनरूप कृष्नकी विभूति महादेवकी कृपातैं उपजी है; यह सिद्ध

होवै है. यातैं विष्नुचरित्रके प्रतिपादक जो ग्रंथ है, सो सिवकी अधिकताकूं प्रतिपादन करै है. काहेतैं, तिन ग्रंथ-नमैं विष्नु सेव्य कह्या है, सो विष्नु भारतप्रसंगतैं सिवका भक्त है. यातैं जिस सिवकीभक्तितैं विष्नु सेव्य होवै है; सो सिवही परमसेव्य है. इसरीतिसैं अप्पयदीछितनै सकलवैष्नवग्रंथनका प्रतिपाद्य सिव कह्या है.

चौपाई

सिव सबको प्रतिपाद्य बखान्यो,
भक्तनमैं उत्तम हरि गान्यो;
ईस देव पद सबमैं कहिये,
महतसहित इक सिवमैं लहिये. ४९

टीकाः— महादेव, महेस सिवकूं कहै है. औरनकूं देव ईस कहै है.

चौपाई.

सिवतैं भिन्न असिव जो कहिये,
तिहिं तजि सिव कल्यानहि लहिये;
जलसायी जिहि नाम बखान्यो,
सो जागै यह मिथ्या गान्यो. ५०

टीका :— कल्यानकूं सिव कहै है. तातैं भिन्न असिव है. ताका यह अर्थ सिद्ध हुवाः—सिवतैं भिन्न औरदेवता असिव कहिये अकल्यानरूप है. तिन अकल्यानरूप देवतानकूं त्यागिके कल्यानरूप सिवकूं उपासै.

चौपाई.

विख लख जब सबकूं उपज्यो डर,
निर्भय किये सकल गर धरि गर;
जाको पूत गनेस कहावै,
विघ्नजाल तत्काल नसावै. ५१
कारजमैं कारन गुन होवे,
यूं सिव विघ्न मूलतैं खोवै;
जन्ममरन दुःख विघ्न कहावै,
तिहिं समूल सिवध्यान नसावै. ५२
सेवनयोग्य सदाशिव एका,
जागै सहित समाधि विवेका;
तंत्र पासुपत रीति जु गावै,
त्यूं पूजनकरि ध्यान लगावै. ५३
नारदपंचरात्रमत झूठो;
यह परिमल परसंग अनूठो,
यातैं सिवसेवा चित लावै,
पुरषारथ जो चहै सु पावै. ५४

टीकाः— नारदपंचरात्रका मत सूत्रभाष्यमैं खंडन किया है. ताके अनुसारी रामानुजआदिक नवीनवैष्नवनका मत कल्पतरुकी टीका परिमलमैं खंडन किया है.

चौपाई.

सिवको पूत गनेस बतायो,

कारनगुन कारजमैं गायो;
सुनि गनेसको पूजक बोल्यो,
अस किय कोप सिंहासन डोल्यो.
राजन सुन दोनूं ये झूठे,
वचन सत्य सम कहत अनूठे;
सिवको पूत गनेस बतावै,
पराधीनता तामैं गावै.
कहुं प्रसंग सुनहु इक ऐसो,
लिख्यो व्यासभगवत मुनि जैसो;
चढे त्रिपुर मारनकुं सारे,
हरिहरसहित देव अधिकारे.
नहिं गनेसको पूजन कीनो,
त्रिपुर न रचहुं तिनतैं छीनो;
पुनि पछिताय मनाय गनेसा,
त्रिपुर विनास्यो रह्यो न लेसा.
भये समर्थ किये जिहि पूजा,
सेवनयोग्य सु इक नहिं दूजा;
रामपूत दशरथको जैसै,
विघ्नहरन सिवको सुत तैसै.
व्यास गनेशपुरान बनायो,
सबको हेतु गनेस बतायो;

## दोहा.

यह जकाज सब तब कियो, तर्कदृष्टि हुसियार;
गयो न रंचक रंग तिहि, लख्यो ब्रह्म निर्धार. १०८
सब भयोप्रारब्धको, पायो निश्चल गेह;
पढ आतम परमातम मिल्यो, देह खेहमैं छेह. १०९

टीका:—देहका खेह कहिये, राखमैं छेह; कहिये अंत आत्मा कहिये, कूटस्थसाक्षी; ताका परमात्मासैं अभेद. यद्यपि कूटस्थका परमात्मासैं सदा अभेद है; तथापि उ-कृत भेद है, उपाधिके लयतैं उपाधिकृतभेदका अभाव है. परमात्मासैं अभेद कह्या ताका यह अभिप्राय है:—विदेहमुक्तिमैं ईश्वरतैं अभेद होवै है, सुद्धचेतनब्रह्मसैं नहीं. यह वार्ता सारीरकभाष्यके चतुर्थअध्यायमैं प्रतिपादन करी है. तहां यह प्रसंग है:—विदेहमुक्तिमैं सत्यसंकल्पादिकरूप-प्राप्ति जैमिनिके मतसैं कही है. औडुलोमिके मतमैं सत्यसंकल्पादिकनका अभाव कह्या है. औ सिद्धांतमतमैं सत्यसंकल्पादिकनका भावअभाव दोनूं कहे है. ताका यह अभिप्राय है:— ईस्वरतैं अभेद होवै है. ईस्वरके सत्यसंकल्पादिक भक्तमैं, अन्य जीवोंकरि व्यवहार करिये है. सो ईस्वर दृष्टिसैं सुद्ध है. ताकेविषै कोई गुन है नहीं, किंतु है. यातैं सत्यसंकल्पादिकनका अभाव है. यद्यपि दसाविषै वी जीव परमार्थसैं निर्गुन है, सुद्ध है; तथापि संसारदसामैं, अविद्यासैं कर्तापना भोक्तापना प्रतीत

होवै है. ईस्वरकूं कदे बी आत्मामैं अथवा अन्यमैं सं
प्रतीत होवै नहीं. यातैं सदाअसंग निर्गुन सुद्ध है.
ईस्वरतैं जो अभेद है, सोई सुद्धसैं अभेद नहीं है, औ ईस्व
अभेदकूं सुद्धब्रह्मसैं अभेद नहीं मानैं, तौ ईस्वरकूं सुद्ध
ह्मकी प्राप्ति कदे बी होवै नहीं. काहेतैं, जीवकी न्याईं ई
रकूं उपदेसजन्य ज्ञान, औ विदेहमोछ भी कदे होवै
सदाप्राप्त जो ताकारूप सो सुद्ध नहीं; यातैं, जीवतैं बी
ईस्वर सदाबद्ध है, यह सिद्ध होवैगा. यातैं यह मान
योग्य है:—ईस्वरकूं आवर्न नहीं; यातैं उपदेसज्ञानकी अपेछ
नहीं आवर्नके अभावतैं भ्रांति नहीं; यातैं नित्यसर्वज्ञ है
नित्यमुक्त है. माया औ ताका कार्य आत्मामैं प्रतीत होवै
नहीं; यातैं सदाअसंग है; याहीतैं सुद्ध है. इसरीतिसैं ईस्व
रतैं अभेदही सुद्धचेतनसैं अभेद है. औ दृष्टांतसैं बी ईस्व
रतैंही अभेद सिद्ध होवै है. जैसैं मठमैं घटका अभाव होवै
तौ मठाकासमैं घटाकासका लय होवै है; महाकासमैं नहीं
तैसैं विद्वानका सरीर ईस्वरकृत ब्रह्मांडमैं नष्ट होवै है, औ
ब्रह्मांड सारा, ईस्वरसरीर मायाके अंतर्भूत है. विद्वानका
आत्मा विदेहमोछमैं ब्रह्मांडके बाहरि गमन करै नहीं, या
ईस्वरतैं अभेद होवै है. परंतु जैसैं मठाकाससैं घटाकासका
अभेद हुवा, सो मठाकास महाकासरूपही है. तैसैं ईस्व
अभेद होवै है, सो ईस्वर सुद्धब्रह्मही है; यातैं सुद्धब्रह्म
प्राप्ति होवै है.

दोहा.

यह विचारसागर कियो, जामैं रत्न अनेक;
गोप्य वेदसिद्धांततैं, प्रगट लहत सविवेक. ११०
सांख्य न्यायमैं श्रम कियो, पढि व्याकरन असेष;
पढै ग्रंथ अद्वैतके, रह्यो न एकहु सेष. १११
कठिन जु औरनिबंध है, जिनमैं मतके भेद;
श्रमतैं अवगाहन किये निश्चलदास सवेद. ११२
तिन यह भाषाग्रंथ किय, रंच न उपजी लाज;
तामैं यह इक हेतु है, दयाधर्म सिरताज. ११३
बिन व्याकरनं न पढि सकै, ग्रंथसंसकृत मंद;
पढै याहि अनयासही, लहै सु परमानंद. ११४
दिल्लितैं पश्चिम दिशा, कोस अठारह गाम;
तामैं यह पूरो भयो, किहडौली तिहि नाम. ११५
ज्ञानी मुक्ति विदेहमैं, जासौं होय अभेद;
दादू आदूरूप सो, जाहि वखानत वेद. ११६
नामरूप व्यभिचारिमैं, अनुगत एक अनुप;
दादूपदको लछ्य है, अस्तिभातिप्रियरूप. ११७

इति श्रीविचारसागरे जीवन्मुक्तिविदेहमुक्तिवर्ननं
नाम सप्तमस्तरंगः
समाप्तः ७
समाप्तोऽयं विचारसागरो ग्रंथः



